आठवां अध्याय

।। सारांश।।

।। वह पूर्णब्रह्म कौन है? ।।

अध्याय 8 के श्लोक 1 में अर्जुन ने पूछा कि जो आपने गीता अध्याय 7 श्लोक 29 में तत् ब्रह्म कहा है, वह तत्ब्रह्म कौन है? इसका उत्तर अध्याय 8 के श्लोक 3 में दिया है कि वह परम अक्षर ब्रह्म है अर्थात् पूर्णब्रह्म है।

ब्रह्म - ईश - क्षर पुरुष - काल

परब्रह्म - ईश्वर - अक्षर ब्रह्म - अक्षर पुरुष

पूर्णब्रह्म-सतपुरुष-परम अक्षर पुरुष - सर्वगतम् ब्रह्म - परमेश्वर

परम अक्षर ब्रह्म - परब्रह्म से भी परम अर्थात् पूर्णब्रह्म। इसलिए सिद्ध हुआ कि वह पूर्णब्रह्म सतपुरुष को कहा है। वही परम अक्षर ब्रह्म है।

अध्याय 8 के श्लोक 1,2 में अर्जुन ने पूछा कि हे भगवान (तत् ब्रह्म) वह ब्रह्म क्या है? अध्यातम-अधिभूत-अधिदेव किसे कहते हैं तथा अधियज्ञ कौन है? उसे अंत समय में कैसे जाना जाता है?

अध्याय 8 के श्लोक 3 में स्पष्ट है कि वह ब्रह्म क्या है का उत्तर देते हुए भगवान काल (ब्रह्म) कह रहा है परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पूर्ण ब्रह्म (सतपुरुष) है। क्योंकि तीन परमात्मा (ब्रह्म) हैं।

1 क्षर पुरुष - ब्रह्म,

2 अक्षर पुरुष - परब्रह्म और

3 परम अक्षर पुरुष - यह पूर्ण ब्रह्म है।

इसी का प्रमाण गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 16,17 में। जैसे क्षर पुरुष (नाशवान भगवान) तथा अक्षर पुरुष (अविनाशी भगवान) और वास्तव में अविनाशी (पूर्ण अविनाशी) तो उपरोक्त दोनों से अन्य ही भगवान है। जिसको पूर्ण अविनाशी परमात्मा कहा जाता है। वह परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष) है। वही तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण-पोषण करता है। अध्याय 8 के श्लोक 4 में भगवान कह रहा है कि इस देहधारियों से श्रेष्ठ अर्थात् मानव शरीर में नाशवान भाव वाले प्राणियों का स्वामी अर्थात् अधिभूत और पूर्ण परमात्मा परम अक्षर ब्रह्म ही अधीदेव और अधियज्ञ है अर्थात् सर्व यज्ञों में प्रतिष्ठित है। इसी प्रकार मैं भी इन प्राणियों में हूँ। जैसे गीता अध्याय 15 श्लोक 15 में कहा है कि मैं सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ। फिर गीता अध्याय 13 श्लोक 17 में कहा है कि वह पूर्ण ब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति माया से अति परे कहा जाता है वह तत्वज्ञान द्वारा जानने योग्य है और सर्व प्राणियों के हृदय में विशेष रूप से स्थित है। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 61 में है। कहा है कि ''शरीर रूपी यन्त्र में आरूढ़ हुए प्राणियों को परमेश्वर अपनी माया से भ्रमण कराता हुआ सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित है। फिर श्रद्धालुओं को भ्रमित करने के लिए अध्याय 9 का श्लोक 4-5 तथा अध्याय 7 के श्लोक 12 में प्रमाणित करता है कि ब्रह्म (काल) कह रहा है कि मैं प्राणियों में नहीं हूँ।

अध्याय 9 के श्लोक 4,5 प्रमाणित करते हैं कि ब्रह्म (काल) कह रहा है कि मैं प्राणियों में नहीं हूँ।

''गीता अध्याय 8 श्लोक 5 से 10 तक का सारांश''

।। काल का उपासक काल तथा पूर्णब्रह्म का उपासक पूर्णब्रह्म को प्राप्त होता है।।

गीता अध्याय 8 श्लोक 6 में कहा है कि यह नियम है कि जो अन्त समय में जिसका सुमरण करता है वह साधक उसी को प्राप्त होता है। अध्याय 8 के श्लोक 5 और 7 में काल भगवान कह रहा है जो अंत समय में मेरा ध्यान करता है वह मेरे (काल) को प्राप्त होता है। अंत समय में जो जिसका सुमरण करता है उसी को प्राप्त होता है। इसलिए मेरा (काल का) सुमरण कर और मेरे को ही प्राप्त होगा। अध्याय 8 के श्लोक 8 से 10 में कहा है कि हे अर्जुन! जो साधक पूर्ण मुक्ति चाहता है तो किसी और में चित्त न लगा कर केवल एक परम दिव्य पुरुष (पूर्ण परमात्मा-सतपुरुष) का सुमरण करता है। वह उसी को प्राप्त होता है। जो सनातन (आदि पुरुष) नियन्ता (सबको सम्भालने वाला) सुक्ष्म से अति सुक्ष्म सबका धारण पोषण करने वाला अचिन्त रूप (शांत पूर्ण ब्रह्म) सूर्य के समान प्रकाश रूप (स्वप्रकाशित) अज्ञान से अति परे, पूर्ण प्रभु सतपुरुष (कविम्) कविर्देव का स्मरण करता है, वह भक्ति युक्त अंत समय में भक्ति के बल (सच्चे नाम मंत्र की कमाई) से भृकुटि के मध्य में प्राण को अच्छी तरह स्थापित करके फिर निश्चल मन से सुमरण करता हुआ उस परम दिव्य पुरुष (पूर्णब्रह्म-सतपुरुष) को ही प्राप्त होता है। 8,9,10 इन तीनों श्लोकों में पूर्ण ब्रह्म परमात्मा (सतपुरुष) के बारे में ज्ञान दिया है। संकेत भी किया है कि उसका नाम (कविम्) कविर्देव है।

''गीता अध्याय 8 श्लोक 11 से 14 तक का भावार्थ''

गीता अध्याय 8 श्लोक 11-12 का सारांश :- इन श्लोकों में बताया है कि उपरोक्त श्लोकों में बताया है कि उपरोक्त श्लोकों 8 से 10 में जिस दिव्य रूप परम पुरूष अर्थात् पूर्ण परमात्मा की भक्ति करने वाला अन्तिम समय तक उसी के चिन्तन में शरीर त्याग कर जाता है। वह उसी को प्राप्त होता है। उस पूर्ण परमात्मा की भक्ति विधि के विषय में गीता ज्ञान दाता कह रहा है श्लोक 11-12 में।

अध्याय 8 श्लोक 11 में कहा है कि वेद के जानने वाले विद्वान अर्थात् तत्वदर्शी सन्त जिस परमात्मा को अविनाशी कहते हैं तथा जिस भक्ति विधि द्वारा उस अविनाशी परमात्मा के परम पद चाहने वाले ब्रह्मचर्य अर्थात् सयंम करते हैं। (ब्रह्मचर्य का अर्थ यहाँ संयम है जैसे अहार-विचार-विलास विकारों में सयंम रखना ब्रह्मचर्य कहा जाता है) उस भक्ति विधि (पद) को तेरे से संक्षेप में कहूँगा।

अध्याय 8 श्लोक 12 में बताया है कि पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति के लिए विधि यह है ''साधक मन को सर्व इन्द्रियों से हटा कर स्वांस के ऊपर स्थापित करके हृदय तथा मस्तिक में परमेश्वर की योगधारणा अर्थात् भक्ति में स्थित होता।

विशेष :-- पूर्ण परमात्मा की भक्ति साधना सत्यनाम द्वारा करने का संकेत है। जैसे सत्यनाम में दो मन्त्र होते हैं। एक ओं (ॐ) दूसरा तत् (जो सांकेतिक है केवल शिष्य को ही बताया जाता है।) ॐ (ओं) मन्त्र ब्रह्म का जाप है ब्रह्म का सहंस्र कमल चक्र मस्तिक के पीछे है तथा तत् मन्त्र परब्रह्म का जाप है। इस जाप को सार्थक करने के लिए हृदय में विशेष रूप से (जैसे सूर्य घड़े के जल में रहता है) रह रहे पूर्ण परमात्मा का ध्यान करना होता है। इसलिए स्वांस के साथ मन्त्र के जाप पर मन, सुरति व निरति एकाग्र करके स्वांस-उस्वांस द्वारा-सुमरण अर्थात् अजपा जाप किया जाता है। जब स्वांस मस्तिक में जाता है तो नाम के साथ ब्रह्म के संहस्र कमल की ओर ध्यान जाता है। जब हृदय की ओर स्वांस जाता है तो नाम के साथ पूर्ण परमात्मा व परब्रह्म का ध्यान किया जाता है यह विधि उस दिव्य परम पुरूष अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म को प्राप्त करने की है।

विचार करें :-- जिस समय मन, सुरति व निरति तथा स्वांस नाम के सुमरन में लीन हो जाता है तब अपने आप शरीर के सर्व द्वार निष्क्रिय हो जाते हैं। हठयोग करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उपरोक्त साधना को चलते-2 शारिरीक कार्य करते-2 खाते, पीते, जागते तथा सोते समय भी कर सकते हैं। सोते समय करने से अभिप्राय है कि जिस समय साधक का सुमरण का अभ्यास परिपक्व हो जाता है उस समय सोते समय रात्री में भी स्वपन में सुमरण स्वतः चलता रहता है। गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में भी इसी का संकेत है।

विवेचन :-- गीता के अन्य अनुवाद कर्ताओं ने अपने अनुवाद में लिखा है कि सर्व इन्द्रियों के द्वारों को रोककर तथा मन को हृदय में स्थित करके प्राण को (स्वांस को) मस्तक में स्थापित करके परमात्मा की योग धारण में लीन होवें।

विचार करें :-- मन द्वारा ही साधना व ध्यान किया जाता है। यदि मन हृदय में स्थित है तो स्वांस मस्तक में रूक नहीं सकता। क्योंकि मन ही स्वांस को रोक सकता है। मन एक समय में दो स्थानों पर कार्य नहीं कर सकता। स्वांस मन के सहयोग बिना चल तो सकता है परन्तु रूक नहीं सकता। इसलिए अन्य अनुवाद कर्ताओं का टीका न्याय संगत नहीं है। जो मुझ दास (रामपाल दास) द्वारा किया है वह उचित है।

गीता ज्ञान दाता प्रभु ने अपनी साधना के विषय में श्लोक 13 में कहा है जिस का सम्बन्ध गीता अध्याय 8 श्लोक 11-12 से है। जिनमें कहा है कि जो साधक उपरोक्त श्लोक 11 व 12 में बताए पूर्ण मोक्ष मार्ग के तीन मन्त्र का जाप बताया है जिसमें मुझ ब्रह्म का केवल एक ओं अक्षर है। इस प्रकार विधिवत् स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है परमगति अर्थात् पूर्ण मोक्ष को प्राप्त होता है।

गीता अध्याय 8 श्लोक 13-14 का भावार्थ :-- इन श्लोकों में कहा है कि ऊँ मन्त्र का जाप करने वाला भक्त वे भी अनन्य मन से अर्थात् एक ही इष्ट अर्थात् ब्रह्म में आस्था रखने वाला, अन्य देवी-देवताओं, माई-मसानी, हनुमान, गणेश, ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि में भी नहीं ध्यान रहे अर्थात् तीन गुणों से भी परे मुझ (ब्रह्म) को निरन्तर सुमरण करता है उसको मैं सुलभ हूँ अर्थात् मेरा लाभ आसानी से प्राप्त कर सकता है। {काल को प्राप्त (दर्शन तो) नहीं कर सकते। क्योंकि गीता जी के अध्याय 11 के श्लोक 47 और 48 में स्पष्ट कहा है कि मैं किसी प्रकार भी प्राप्य नहीं हूँ। हाँ, काल (ब्रह्म) का लाभ स्वर्ग-नरक-राजा और चौरासी लाख योनियों में चक्र लगाना ही है। इसलिए इस साधना को अध्याय 7 के श्लोक 18 में अनुत्तम (अश्रेष्ठ) गतिम (मुक्ति) स्थिति स्वयं भगवान ने कहा है।}

।। ब्रह्म (काल) प्राप्त साधक का सुख क्षणिक है।।

अध्याय 8 के श्लोक 15 में काल (ज्योति निरंजन) अपनी साधना से होने वाले तथा पूर्ण परमात्मा की साधना से होने वाले परिणामों की जानकारी देते हुए कह रहा है कि मुझे प्राप्त साधक का सुख तो क्षण भंगुर हैं अर्थात् उनका जन्म-मरण बना रहेगा। परम सिद्धि को (पूर्णब्रह्म को) प्राप्त महात्मा दुःखोंके घर रूप जन्म-मरण (पुर्नजन्म) को प्राप्त नहीं होते अर्थात् वे पूर्ण मुक्त हो जाते हैं।

।। महाप्रलय में ब्रह्मण्ड में बना ब्रह्मलोक भी नष्ट हो जाता है।।

अध्याय 8 के श्लोक 16 में स्पष्ट है कि हे अर्जुन! ब्रह्म लोक से लेकर सबलोक बारम्बार उत्पत्ति व नाश वाले हैं। जो यह नहीं जानते वे मुझे प्राप्त होकर भी जन्म-मृत्यु को ही प्राप्त होते है। पूर्ण मुक्त नहीं होते। अन्य अनुवाद कर्ताओं ने लिखा है कि मुझे प्राप्त करने का पुर्नजन्म नहीं होता। विचार करे यदि यह अनुवाद ठीक माना जाए तो गीता अध्याय 2 श्लोक 12, अध्याय 4 श्लोक 5-9,

अध्याय 10 श्लोक 2 का अर्थ-निर्थक हो जाता है। जिनमें गीता ज्ञान दाता कह रहा है कि अर्जुन तेरे तथा मेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं तू नहीं जानता में जानता हूँ। फिर अध्याय 18 श्लोक 62 तथा अध्याय 15 श्लोक 4 में कहा है कि पूर्ण मोक्ष के लिए पूर्ण परमात्मा की भक्ति कर।

विशेष :-- इसमें ब्रह्म (काल) कह रहा है कि ब्रह्म लोक तक सर्व लोक नाशवान हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा इनके लोकों के प्राणी भी नहीं रहेंगे। फिर उनके उपासक कहाँ रहेंगे? देवी-देवता भी नहीं रहेंगे। फिर पूजारी कहाँ रहेंगे? अर्थात् कोई प्राणी मुक्त नहीं। न ब्रह्मा लोक में पहुँचे हुए, न विष्णु लोक में पहुँचे हुए, न शिव व ब्रह्म लोक में पहुँचे हुए। फिर मुझे प्राप्त (अर्थात् काल ब्रह्म को प्राप्त) का भी पुर्नजन्म है। क्योंकि ब्रह्म लोक भी नष्ट होवेगा। इसलिए ब्रह्म तक के साधक कोई भी मुक्त नहीं। इति सिद्धं।

प्रलय की जानकारी

प्रलय का अर्थ है 'विनाश'। यह दो प्रकार की होती है - आंशिक प्रलय तथा महाप्रलय।

आंशिक प्रलय : यह दो प्रकार की होती है। एक तो चौथे युग (कलियुग) के अंत में पृथ्वी पर एक निःकलंक नामक दसवाँ अवतार आता है। वह उस समय (कलियुग) के सर्व भक्तिहीन मानव शरीर धारी प्राणियों को अपनी तलवार से मार कर समाप्त करेगा। उस समय मानव की उम्र 20 वर्ष की होगी तथा 5 वर्ष खण्ड (लैस) होगी अर्थात् 15 वर्ष में सब बालक-जवान-वृद्ध होकर मर जाया करेंगे। पाँच वर्षीय लड़की बच्चों को जन्म दिया करेगी। मानव कद लगभग डेढ़ या अढ़ाई फुट का होगा। उस समय इतने भूकंप आया करेंगे कि पृथ्वी पर चार फुट ऊँचें भवन भी नहीं बना पाया करेंगे। सर्व प्राणी धरती में बिल खोद कर रहा करेंगे। पृथ्वी उपजाऊँ नहीं रहेगी। तीन हाथ (लगभग साढे चार फुट) नीचे तक जमीन का उपजाऊ तत्त्व समाप्त हो जाएगा। कोई फलदार वृक्ष नहीं होगा तथा पीपल के पेड़ को पत्ते नहीं लगेंगे। सर्व मनुष्य (स्त्री व पुरुष)मांसाहारी होंगे। आपसी व्यवहार बहुत घटिया होगा। रीछों की अस्वारी किया करेंगे। रीछ उस समय का अच्छा वाहन होगा। पर्यावरण दूषित होने से वर्षा होनी बंद हो जाएंगी। जैसे ओस पड़ती है ऐसे वर्षा हुआ करेगी। गंगा-जमना आदि नदियाँ भी सूख जाएगी। यह कलियुग का अंत होगा। उस समय प्रलय (पृथ्वी पर पानी ही पानी होगा) होगी। एक दम इतनी वर्षा होगी की सारी पृथ्वी पर सैकड़ों फुट पानी हो जाएगा। अति उच्चे स्थानों पर कुछ मानव शेष रहेंगे। यह पानी सैंकड़ों वर्षों में सूखेगा। फिर सारी पृथ्वी पर जंगल उग जाएगा। पृथ्वी फिर से उपजाऊ हो जाएगी। जंगल (वृक्षों) की अधिकता से पर्यावरण फिर शुद्ध हो जाएगा। कुछ व्यक्ति जो भक्ति युक्त होंगे ऊँचे स्थानों पर बचे रह जाएंगे। उनके संतान होगी। वह बहुत बड़ी-2 ऊँचें कद की होगी। चूंकि वायुमण्डल में वातावरण की शुद्धता हो जाने से शरीर अधिक स्वस्थ हो जायेगा। मात-पिता छोटे कद के होंगे और बच्चे उँचे-2 कद (शरीर)के होगें। इस प्रकार यह सतयुग प्रारम्भ होगा। यह पृथ्वी पर आंशिक प्रलय ज्योति निरंजन (काल) द्वारा की जाती है।

दूसरी आंशिक प्रलय एक हजार चतुर्युग पश्चात् होती है। तब श्री ब्रह्मा जी का एक दिन समाप्त होता है। इतने ही चतुर्युग तक रात्री होती है। एक रात्री तक प्रलय रहती है {वास्तव में श्री ब्रह्मा जी का एक दिन 1008 चतुर्युग होता है, एक ब्रह्मा जी के दिन में चौदह इन्द्रों का शासन काल पूरा होता है। एक इन्द्र का शासन काल बहतर चौकड़ी युग का होता है। एक चौकड़ी (चतुर्युगी) में चार युग होते हैं 1. सतयुग जो 1728000 वर्षों का होता है 2.त्रेता युग जो 1296000 वर्षों का होता

है 3. द्वापर युग जो 864000 वर्षो का होता है 4. कलयुग जो 432000 वर्षो का होता है। इसी को सीधा एक हजार चतुर्युग कहते हैं} जब ब्रह्मा का दिन समाप्त होता है तो पृथ्वी, पाताल व स्वर्ग (इन्द्र) लोक के सर्व प्राणी नाश को प्राप्त होते हैं। प्रलय में विनाश हुए प्राणी ब्रह्म अर्थात् काल जो ब्रह्म लोक में रहता है तथा व्यक्त रूप से किसी को दर्शन नहीं देता जिसे अव्यक्त मान लिया गया है उस अव्यक्त (ब्रह्म) के लोक में अचेत करके गुप्त डाल दिए जाते हैं। फिर एक हजार चतुर्युग (वास्तव में 1008 चतुर्युग की होती है) की ब्रह्मा की रात्री समाप्त होने पर फिर इन तीनों लोकों (पाताल - पृथ्वी - स्वर्ग लोक) में उत्पत्ति कर्म प्रारम्भ हो जाता है। उस समय ब्रह्मा, विष्णु, शिव लोक के प्राणी और ब्रह्म लोक (महास्वर्ग) के प्राणी बचे रहते हैं। यह दूसरी प्रकार की आंशिक प्रलय हुई।

महाप्रलय : यह तीन प्रकार की होती है। एक तो काल (ज्योति निरंजन) करता है महाकल्प के अंत में जिस समय ब्रह्मा जी की मृत्यु होती है {ब्रह्मा की रात्री एक हजार चतुर्युग की होती है तथा इतना ही दिन होता है। तीस दिन-रात्री का एक महिना, 12 महिनों का एक वर्ष, सौ वर्ष का एक ब्रह्मा का जीवन। यह एक महाकल्प कहलाता है} दूसरी महा प्रलय :-- सात ब्रह्मा जी की मृत्यु के बाद एक विष्णु जी की मृत्यु होती है, सात विष्णु जी की मृत्यु के उपरान्त एक शिव की मृत्यु होती है। इसे दिव्य महाकल्प कहते हैं उसमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव सहित इनके लोकों के प्राणी तथा स्वर्ग लोक, पाताल लोक, मृत्यु लोक आदि में अन्य रचना तथा उनके प्राणी नष्ट हो जाते हैं। उस समय केवल ब्रह्मलोक बचता है जिसमें यह काल भगवान (ज्योति निरंजन) तथा दुर्गा तीन रूपों महाब्रह्मा-महासावित्री, महाविष्णु-महालक्ष्मी और महाशंकर-महादेवी (पार्वती) के रूप, में तीन लोक बना कर रहता है। इसी ब्रह्मलोक में एक महास्वर्ग बना है, उसमें चौथी मुक्ति प्राप्त प्राणी रहते हैं। {मार्कण्डेय, रूमी ऋषि जैसी आत्मा जो चौथी मुक्ति प्राप्त हैं जिन्हें ब्रह्म लीन कहा जाता है वे यहाँ के तीनों लोकों के साधकों की दिव्य दृष्टी की क्षमता (रेंज) से बाहर होते हैं। स्वर्ग, मृत्यु व पाताल लोकों के ऋषि उन्हें देख नहीं पाते। इसलिए ब्रह्म लीन मान लेते हैं। परन्तु वे ब्रह्मलोक में बने महास्वर्ग में चले जाते हैं।} फिर दिव्य महाकल्प के आरम्भ में काल (ज्योति निरंजन) भगवान ब्रह्म लोक से नीचे की सृष्टि फिर से रचता है। काल भगवान अपनी प्रकृति (माया-आदि भवानी) महासावित्री, महालक्ष्मी व महादेवी (गौरी)के साथ रति कर्म से अपने तीन पुत्रों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव) को उत्पन्न करता है। यह काल भगवान उन्हें अपनी शक्ति से अचेत अवस्था में कर देता है। फिर तीनों को भिन्न-2 स्थानों पर जैसे ब्रह्मा जी को कमल के फूल पर, विष्णु जी को समुद्र में शेष नाग की शैय्या पर, शिव जी को कैलाश पर्वत पर रखता है। तीनों को बारी-बारी सचेत कर देता है। उन्हें प्रकृति (दुर्गा) के माध्यम से सागर मंथन का आदेश होता है। तब यह महामाया (मूल प्रकृति/शेराँवाली) अपने तीन रूप बना कर सागर में छुप जाती है। तीन लड़कियों (जवान देवियों) के रूप में प्रकट हो जाती है। तीनों बच्चे (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) इन्हीं तीनों देवियों से विवाह करते हैं। अपने तीनों पुत्रों को तीन विभाग - उत्पत्ति का कार्य ब्रह्मा जी को व स्थिति (पालन-पोषण) का कार्य विष्णु जी को तथा संहार (मारने) का कार्य शिव जी को देता है जिससे काल (ब्रह्म) की सृष्टि फिर से शुरु हो जाती है। जिसका वर्णन पवित्र पुराणों में भी है जैसे शिव महापुराण, ब्रह्म महापुराण, विष्णु महापुराण, महाभारत, सुख सागर, देवी भागवद् महापुराण में विस्तृत वर्णन किया गया है और गीता जी के चौदहवें अध्याय के श्लोक 3 से 5 में संक्षिप्त रूप से कहा गया है। तीसरी महाप्रलय :- एक ब्रह्मण्ड में 70000 वार त्रिलोकिय शिव (काल के तमोगुण

पुत्र) की मृत्यु हो जाती है तब एक ब्रह्मण्ड की प्रलय होती है तथा ब्रह्मलोक में तीन स्थानों पर रहने वाला काल (महाशिव) अपना महाशिव वाला शरीर भी त्याग देता है। इस प्रकार यह एक ब्रह्मण्ड की प्रलय अर्थात् तीसरी महाप्रलय हुई तथा उस समय एक ब्रह्मलोकिय शिव (काल) की मृत्यु हुई तथा 70000 (सतर हजार) त्रिलोकिय शिव (काल के पुत्र) की मृत्यु हुई अर्थात् एक ब्रह्मण्ड में बने ब्रह्म लोक सहित सर्व लोकों के प्राणी विनाश में आते हैं। इस समय को परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरूष का एक युग कहते हैं। इस प्रकार गीता अध्याय 8 श्लोक 16 का भावार्थ समझना चाहिए।

''इस प्रकार तीन दिव्य महा प्रलय होती हैं'' :--

''प्रथम दिव्य महाप्रलय''

:-- जब सौ (100) ब्रह्मलोकिय शिव (काल-ब्रह्म) की मृत्यु हो जाती है तब चारों महाब्रह्मण्डों में बने 20 ब्रह्मण्डों के प्राणियों का विनाश हो जाता है।

तब चारों महाब्रह्मण्डों के शुभ कर्मी प्राणियों (हंसात्माओं) को इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में बने नकली सत्यलोक आदि लोकों में रख देता है तथा उसी लोक में निर्मित अन्य चार गुप्त स्थानों पर अन्य प्राणियों को अचेत करके डाल देता है तथा तब उसी नकली सत्यलोक से प्राणियों को खाकर अपनी भूख मिटाता है तथा जो प्रतिदिन खाए प्राणियों को उसी इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में बने चार गुप्त मुकामों में अचेत करके डालता रहता है तथा वहाँ पर भी ज्योति निरंजन अपने तीन रूप (महाब्रह्मा, महाविष्णु तथा महाशिव) धारण कर लेता है तथा वहाँ पर बने शिव रूप में अपनी जन्म-मृत्यु की लीला करता रहता है, जिससे समय निश्चित रखता है तथा सौ बार मृत्यु को प्राप्त होता है, जिस कारण परब्रह्म के सौ युग का समय इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में पूरा हो जाता है। तत् पश्चात् चारों महाब्रह्मण्डों के अन्दर सृष्टि रचना का कार्य प्रारम्भ करता है। {जिस एक सृष्टि में सौ ब्रह्मलोकिय शिव (काल) की आयु अर्थात् परब्रह्म के सौ युग तक सृष्टि रहती है तथा इतनी ही समय प्रलय रहती है अर्थात् परब्रह्म के दो सौ युग (क्योंकि परब्रह्म के एक युग में एक ब्रह्मलोकिय शिव अर्थात् काल की मृत्यु होती है) में एक दिव्य महाप्रलय जो काल द्वारा की जाती है का क्रम पूरा होता है} यह काल अर्थात् ब्रह्म प्रथम अव्यक्त कहलाता है (गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में)। दूसरा अव्यक्त परब्रह्म तथा इससे भी परे दूसरा सनातन अव्यक्त जो पूर्ण ब्रह्म है, गीता अध्याय 8 श्लोक 20 का भाव समझें।

''दूसरी दिव्य महाप्रलय'' :--

इस महाप्रलय के पाँच बार हो जाने के पश्चात् द्वितीय दिव्य महाप्रलय होती है। दूसरी दिव्य महाप्रलय परब्रह्म (अविगत पुरुष/अक्षर पुरुष) करता है। उसमें काल अर्थात् ब्रह्म (क्षर पुरूष) सहित सर्व 21 ब्रह्मण्डों का विनाश हो जाता है। जिसमें तीनों लोक (स्वर्गलोक-मृत्युलोक-पाताल लोक), ब्रह्मा, विष्णु, शिव व काल (ज्योति निरंजन-ओंकार निरंजन) तथा इनके लोकों (ब्रह्म लोक) अर्थात् सर्व अन्य 21 ब्रह्मण्डों के प्राणी नष्ट हो जाते हैं।

विशेष :- सात त्रिलोकिय ब्रह्मा की मृत्यु के बाद एक त्रिलोकिय विष्णु जी की मृत्यु होती है तथा सात विष्णु की मृत्यु के बाद एक त्रिलोकिय शिव की मृत्यु होती है। 70000 (सतर हजार) त्रिलोकिय शिव की मृत्यु के बाद एक ब्रह्मलोकिय शिव अर्थात् काल (ब्रह्म) की मृत्यु परब्रह्म के एक युग के बाद होती है। ऐसे एक हजार युग का परब्रह्म (अक्षर पुरूष) का एक दिन तथा इतनी ही रात्री होती है। तब प्रकृति (दुर्गा) सहित काल (ज्योति निरंजन) अर्थात् ब्रह्म तथा इसके इक्कीस ब्रह्मण्डों के प्राणी विनाश में आते हैं। तब परब्रह्म (दूसरे अव्यक्त) का एक हजार युग का दिन

समाप्त होता है। इतनी ही रात्री व्यतीत होने के उपरान्त ब्रह्म को फिर पूर्ण ब्रह्म प्रकट करता है। गीता अ. 8 श्लोक 17 का भाव ऐसे समझें। परन्तु ब्रह्मण्डों व महाब्रह्मण्डों व इनमें बने लोकों की सीमा (गोलाकार दिवार समझो) समाप्त नहीं होती। फिर इतने ही समय के बाद यह काल तथा माया (प्रकृति देवी) को पूर्ण ब्रह्म (सत्यपुरूष) अपने द्वारा पूर्व निर्धारित सृष्टि कर्म के आधार पर पुनः उत्पन्न करता है तथा सर्व प्राणी जो काल के कैदी (बन्दी) हैं, को उनके कर्माधार पर शरीरों में सृष्टि कर्म नियम से रचता है तथा लगता है कि परब्रह्म रच रहा है {यहाँ पर गीता अ. 15 का श्लोक 17 याद रखना चाहिए जिसमें कहा है कि उत्तम प्रभु तो कोई और ही है जो वास्तव में अविनाशी ईश्वर है। जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण–पोषण करता है तथा गीता अ. 18 के श्लोक 61 में कहा है कि अन्तर्यामी ईश्वर सर्व प्राणियों को यन्त्र (मशीन) के सदृश कर्माधार पर घुमाता है तथा प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्थित है।

गीता के पाठकों को फिर भ्रम होगा कि गीता अ. 15 के श्लोक 15 में काल (ब्रह्म) कहता है कि मैं सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ तथा सर्व ज्ञान अपोहन व वेदों को प्रदान करने वाला हूँ।

हृदय कमल में काल भगवान महापार्वती (दुर्गा) सहित महाशिव रूप में रहता है तथा पूर्ण परमात्मा भी जीवात्मा के साथ अभेद रूप से रहता है जेसे वायु रहती है गंध के साथ। दोनों का अभेद सम्बन्ध है परन्तु कुछ गुणों का अन्तर है। गीता अ. 2 के श्लोक 17 से 21 में भी विस्तृत विवरण है। इस प्रकार पूर्ण ब्रह्म भी प्रत्येक प्राणी के हृदय में जीवात्मा के साथ रहता है जैसे सूर्य दूर स्थान पर होते हुए भी उसकी ऊष्णता व प्रकाश का प्रभाव प्रत्येक प्राणी से अभेद है तथा जीवात्मा का स्थान भी हृदय ही है।

विशेष :– एक महाब्रह्माण्ड का विनाश परब्रह्म के 100 वर्षों के उपरान्त होता है। इतने ही वर्षों तक एक महाब्रह्मण्ड में प्रलय रहती है।

काल अर्थात् ब्रह्म (ज्योति निरंजन) को तो ऐसा जानों जैसे गर्मियों के मौसम में राजस्थान–हरियाणा आदि क्षेत्रों में वायु का एक स्तम्भ जैसा (मिट्टी युक्त वायु) आसमान में बहुत ऊँचे तक दिखाई देता है तथा चक्र लगाता हुआ चलता है। जो अस्थाई होता है। परन्तु गंध तो वायु के साथ अभेद रूप में है। इसी प्रकार जीवात्मा तथा परमात्मा का सुक्ष्म सम्बन्ध समझे। ऐसे ही सर्व प्रलय तथा महाप्रलय के क्रम को पूर्ण परमात्मा (सत्यपुरूष, कविर्देव) से ही होना निश्चित समझे। एक हजार युग जो परब्रह्म की रात्री है उसके समाप्त होने पर काल (ज्योति निरंजन) सृष्टि फिर से सत्यपुरूष कविर्देव की शब्द शक्ति से बनाए समय के विद्यान अनुसार प्रारम्भ होती है। अक्षर पुरुष(परब्रह्म) पूर्ण ब्रह्म (सतपुरूष) के आदेश से काल (ज्योति निरंजन) व माया (प्रकृति अर्थात् दुर्गा) को सर्व प्राणियों सहित काल के इक्कीस ब्रह्मण्ड में भेज देता है तथा पूर्ण ब्रह्म के बनाए विद्यान अनुसार सर्व ब्रह्मण्डों में अन्य रचना प्रभु कबीर जी की कृपा से हो जाती है। माया (प्रकृति) तथा काल (ज्योति निरंजन) के सूक्ष्म शरीर पर नूरी शरीर भी पूर्ण परमात्मा ही रचता है तथा शेष उत्पत्ति ब्रह्म(काल) अपनी पत्नी दुर्गा (प्रकृति) के संयोग से करता है। शेष स्थान निरंजन पाँच तत्त्व के आधार से रचता है। फिर काल (ज्योति निरंजन अर्थात् ब्रह्म) की सृष्टि प्रारम्भ होती है। इस प्रकार यह परब्रह्म दूसरा अव्यक्त कहलाता है।}

''तीसरी दिव्य महा प्रलय'' :--

जैसा कि पूर्वोक्त विवरण में पढ़ा कि सत्तर हजार काल (ब्रह्म) के शिव रूपी पात्रों की मृत्यु के पश्चात् एक ब्रह्म (महाशिव) की मृत्यु होती है वह समय परब्रह्म का एक युग होता है। इसी के विषय में गीता अध्याय 2 श्लोक 12 अध्याय 4 श्लोक 5 तथा 9 में अध्याय 10 श्लोक 2 में गीता ज्ञान दाता प्रभु कह रहा है कि मेरी भी जन्म मृत्यु होती है। बहुत से जन्म हो चुके हैं। जिनको देवता लोग

(ब्रह्मा,विष्णु तथा शिव सहित) व महर्षि जन भी नहीं जानते क्योंकि वे सर्व मुझ से ही उत्पन्न हुए हैं। गीता अध्याय 4 श्लोक 9 में कहा है कि मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं। परब्रह्म के एक युग में काल भगवान सदा शिव वाला शरीर त्यागता है तथा पुनः अन्य ब्रह्मण्ड में अन्य तीन रूपों में विराजमान हो जाता है। यह लीला स्वयं करता है। परब्रह्म का एक दिन एक हजार युग का होता है इतनी ही रात्री होती है। तीस दिन-रात का एक महिना, बारह महिनों का एक वर्ष तथा सौ वर्ष की परब्रह्म (द्वितीय अव्यक्त) की आयु होती है। उस समय परब्रह्म की मृत्यु होती है। यह तीसरी दिव्य महाप्रलय कहलाती है।

तीसरी दिव्य महा प्रलय में सर्व ब्रह्मण्ड तथा अण्ड जिसमें ब्रह्म (काल) के इक्कीस ब्रह्मण्ड तथा परब्रह्म के सात संख ब्रह्मण्ड व अन्य असंख्यों ब्रह्मण्ड नाश में आवेंगे। धूंधूकार का शंख बजेगा। सर्व अण्ड व ब्रह्मण्ड नाश में आवेंगे परंतु वह तीसरी दिव्य महा प्रलय बहुत समय प्रयान्त होवेगी। वह तीसरी (दिव्य) महा प्रलय सतपुरुष का पुत्र अचिंत अपने पिता पूर्ण ब्रह्म (सतपुरूष) की आज्ञा से सृष्टि कर्म नियम से जो पूर्णब्रह्म ने निर्धारित किया हुआ है करेगा और फिर सृष्टि रचना होगी। परंतु सतलोक में गए हंस दोबारा जन्म-मरण में नहीं आऐंगे। इस प्रकार न तो अक्षर पुरुष (परब्रह्म) अमर है, न काल निरंजन (ब्रह्म) अमर है, न ब्रह्मा (रजगुण)-विष्णु (सतगुण)-शिव (तमगुण) अमर हैं। फिर इनके पूजारी (उपासक) कैसे पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं? अर्थात् कभी नहीं। इसलिए पूर्णब्रह्म की साधना करनी चाहिए जिसकी उपासना से जीव सतलोक (अमरलोक) में चला जाता है। फिर वह कभी नहीं मरता, पूर्ण मुक्त हो जाता है। वह पूर्ण ब्रह्म (कविर्देव) तीसरा सनातन अव्यक्त है। जो गीता अ. 8 के श्लोक 20,21 में वर्णन है।

"अमर करुं सतलोक पठाऊं, तातैं बन्दी छोड़ कहांउ"

उसी पूर्ण परमात्मा का प्रमाण गीता जी के अध्याय 2 के श्लोक 17 में, अध्याय 3 के श्लोक 14,15 में, अध्याय 7 के श्लोक 13 और 19 में, अध्याय 8 के श्लोक 3, 4, 8, 9, 10, 20, 21, 22 में, अध्याय 13 श्लोक 12 से 17 तथा 22 से 24,27 से 28,30-31 व 34 तथा अध्याय 4 श्लोक 31-32 अध्याय 6 श्लोक 7-19-20, 25 से 27 में तथा अध्याय 18 श्लोक 46, 61, 62 में भी विशेष रूप से प्रमाण दिया गया है कि उस पूर्ण परमात्मा की शरण में जा कर जीव फिर कभी जन्म मरण में नहीं आता है।

{विशेष :– यह काल कला समझने के लिए यह विवरण ध्यान रखें कि त्रिलोक में एक शिव जी है। जो इस काल का पुत्र है जो 7 त्रिलोकिय विष्णु जी की मृत्यु तथा 49 त्रिलोकिय ब्रह्मा जी की मृत्यु के उपरान्त मृत्यु को प्राप्त होता है। ऐसे ही काल भगवान एक ब्रह्मण्ड में बने ब्रह्मलोक में महाशिव रूप में भी रहता है। परमेश्वर द्वारा बनाए समय के विद्यान अनुसार सृष्टि क्रम का समय बनाए रखने के लिए यह ब्रह्मलोक वाला महाशिव (काल) भी मृत्यु को प्राप्त होता है। जब त्रिलोकिय 70000 (सतर हजार) ब्रह्म काल के पुत्र शिव मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं तब एक ब्रह्मलोकिय शिव (ब्रह्म/क्षर पुरुष) पूर्ण परमात्मा द्वारा बनाए समय के विद्यान अनुसार परवश हुआ मरता तथा जन्मता है। यह ब्रह्मलोकिय शिव (ब्रह्म/काल) की मृत्यु का समय परब्रह्म (अक्षर पुरूष) का एक युग होता है। इसीलिए गीता जी के अ. 2 के श्लोक 12 से 27, गीता अ. 4 श्लोक 5, गीता अ. 10 श्लोक 2 में कहा है कि मेरे तथा तेरे बहुत जन्म हो चुके हैं। मैं जानता हूँ तू नहीं जानता। मेरे जन्म अलौकिक (अद्भुत) होते हैं।}

अद्भुत उदाहरण :- आदरणीय गरीबदास साहेब जी सन् 1717 (संवत् 1774) में श्री बलराम जी के घर पर माता रानी जी के गर्भ से जन्म लेकर 61 वर्ष तक शरीर में गांव छुड़ानी जिला झज्जर

में रहे तथा सन् 1778 (विक्रमी संवत् 1835) में शरीर त्याग गए। आज भी उनकी स्मृति में एक यादगार बनी है जहाँ पर शरीर को जमीन में सादर दबाया गया था। छः महीने के उपरान्त वैसा ही शरीर धारण करके आदरणीय गरीबदास साहेब जी 35 वर्ष तक अपने पूर्व शरीर के शिष्य श्री भक्त भूमड़ सैनी जी के पास शहर सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) में रह कर शरीर त्याग गए। वहाँ भी आज उनकी स्मृति में यादगार बनी है। स्थान है :- चिलकाना रोड़ से कलसिया रोड़ निकलता है, कलसिया रोड़ पर आधा किलोमीटर चल कर बाएँ तरफ यह अद्बितीय पवित्र यादगार विद्यमान है तथा उस पर एक शिलालेख भी लिखा है, जो प्रत्यक्ष साक्षी है। उसी के साथ में बाबा लालदास जी का बाड़ा भी बना है।

''सर्व प्रभुओं की आयु''

अध्याय 8 का श्लोक 17

सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्त्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।१७।

सहस्त्रयुगपर्यन्तम्, अहः,यत्,ब्रह्मणः, विदुः,रात्रिम्,
युगसहस्त्रान्ताम्, ते, अहोरात्रविदः, जनाः ।।17।।

अनुवाद : (ब्रह्मणः) परब्रह्म का (यत्) जो (अहः) एक दिन है उसको (सहस्त्रयुगपर्यन्तम्) एक हजार युग की अवधिवाला और (रात्रिम्) रात्रिको भी (युगसहस्त्रान्ताम्) एक हजार युगतकको अवधिवाली (विदुः) तत्वसे जानते हैं (ते) वे (जनाः) तत्वदर्शी संत (अहोरात्रविदः) दिन–रात्री के तत्वको जाननेवाले हैं। (17)

केवल हिन्दी अनुवाद : परब्रह्म का जो एक दिन है उसको एक हजार युग की अवधिवाला और रात्रिको भी एक हजार युगतकको अवधिवाली तत्वसे जानते हैं वे तत्वदर्शी संत दिन-रात्री के तत्वको जाननेवाले हैं। (17)

नोट :- गीता अध्याय 8 श्लोक 17 के अनुवाद में गीता जी के अन्य अनुवाद कर्ताओं ने ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चतुर्युग का लिखा है जो उचित नहीं है। क्योंकि मूल संस्कृत में सहंसर युग लिखा है न की चतुर्युग। तथा ब्रह्मणः लिखा है न कि ब्रह्मा। इस श्लोक 17 में परब्रह्म के विषय में कहा है न कि ब्रह्मा के विषय में तत्वज्ञान के अभाव से अर्थो का अनर्थ किया है।

विशेषः- सात त्रिलोकिय ब्रह्मा (काल के रजगुण पुत्र) की मृत्यु के बाद एक त्रिलोकिय विष्णु जी की मृत्यु होती है तथा सात त्रिलोकिय विष्णु (काल के सतगुण पुत्र) की मृत्यु के बाद एक त्रिलोकिय शिव (ब्रह्म-काल के तमोगुण पुत्र) की मृत्यु होती है। ऐसे 70000 (सतर हजार अर्थात् 0.7 लाख) त्रिलोकिय शिव की मृत्यु के उपरान्त एक ब्रह्मलोकिय महा शिव (सदाशिव अर्थात् काल) की मृत्यु होती है। एक ब्रह्मलोकिय महाशिव की आयु जितना एक युग परब्रह्म (अक्षर पुरूष) का हुआ। ऐसे एक हजार युग अर्थात् एक हजार ब्रह्मलोकिय शिव (ब्रह्मलोक में स्वयं काल ही महाशिव रूप में रहता है) की मृत्यु के बाद काल के इक्कीस ब्रह्मण्डों का विनाश हो जाता है। इसलिए यहाँ पर परब्रह्म के एक दिन जो एक हजार युग का होता है तथा इतनी ही रात्री होती है। लिखा है।

(1) रजगुण ब्रह्मा की आयुः-ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चतुर्युग का है तथा इतनी ही रात्री है। एक चतुर्युग में 43,20,000 मनुष्यों वाले वर्ष होते हैं) एक महिना तीस दिन रात का है, एक वर्ष बारह महिनों का है तथा सौ वर्ष की ब्रह्मा जी की आयु है। जो सात करोड़ बीस लाख चतुर्युग की है।

(2) सतगुण विष्णु की आयुः-श्री ब्रह्मा जी की आयु से सात गुणा अधिक श्री विष्णु जी की आयु है अर्थात् पचास करोड़ चालीस लाख चतुर्युग की श्री विष्णु जी की आयु है।

(3) तमगुण शिव की आयुः-श्री विष्णु जी की आयु से श्री शिव जी की आयु सात गुणा अधिक है अर्थात् तीन अरब बावन करोड़ अस्सी लाख चतुर्युग की श्री शिव की आयु है।

(4) काल ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरूष की आयुः-सात त्रिलोकिय ब्रह्मा (काल के रजगुण पुत्र) की मृत्यु के बाद एक त्रिलोकिय विष्णु जी की मृत्यु होती है तथा सात त्रिलोकिय विष्णु (काल के सतगुण पुत्र) की मृत्यु के बाद एक त्रिलोकिय शिव (ब्रह्म/काल के तमोगुण पुत्र) की मृत्यु होती है। ऐसे 70000 (सतर हजार अर्थात् 0.7 लाख) त्रिलोकिय शिव की मृत्यु के उपरान्त एक ब्रह्मलोकिय महा शिव (सदाशिव अर्थात् काल) की मृत्यु होती है। एक ब्रह्मलोकिय महाशिव की आयु जितना एक युग परब्रह्म (अक्षर पुरूष) का हुआ। ऐसे एक हजार युग का परब्रह्म का एक दिन होता है। परब्रह्म के एक दिन के समापन के पश्चात् काल ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्मण्डों का विनाश हो जाता है तथा काल व प्रकृति देवी(दुर्गा) की मृत्यु होती है। परब्रह्म की रात्री (जो एक हजार युग की होती है) के समाप्त होने पर दिन के प्रारम्भ में काल व दुर्गा का पुनर् जन्म होता है फिर ये एक ब्रह्मण्ड में पहले की भांति सृष्टि प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकार परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरूष का एक दिन एक हजार युग का होता है तथा इतनी ही रात्री है।

अक्षर पुरूष अर्थात् परब्रह्म की आयु :- परब्रह्म का एक युग ब्रह्मलोकीय शिव अर्थात् महाशिव (काल ब्रह्म) की आयु के समान होता है। परब्रह्म का एक दिन एक हजार युग का तथा इतनी ही रात्री होती है। इस प्रकार परब्रह्म का एक दिन–रात दो हजार युग का हुआ। एक महिना 30 दिन का एक वर्ष 12 महिनों का तथा परब्रह्म की आयु सौ वर्ष की है। इस से सिद्ध है कि परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरूष भी नाश्वान है। इसलिए गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 तथा अध्याय 8 श्लोक 20 से 22 में किसी अन्य पूर्ण परमात्मा के विषय में कहा है जो वास्तव में अविनाशी है।

अध्याय 8 के श्लोक 18-19 में वर्णन है कि सब प्राणी दिन के आरम्भ में अव्यक्त अर्थात् अदृश परब्रह्म से उत्पन्न होते हैं तथा रात्री के समय उसी परब्रह्म अव्यक्त (अदृश) में ही लीन हो जाते हैं।

।। परब्रह्म (अक्षर पुरूष) से भी दूसरा सनातन अव्यक्त सतपुरुष (पूर्णब्रह्म) है।।

अध्याय 8 के श्लोक 20 में स्पष्ट है कि उस अव्यक्त (अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म) से परे दूसरा जो सनातन (आदि/सदा का अविनाशी) अव्यक्त अर्थात् अदृश पूर्णब्रह्म है वह सब भूतों (प्राणियों) के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता।

''तीन प्रभुओं का प्रमाण''

तीन प्रभु है :- (1) ब्रह्म इसे क्षर पुरूष भी कहते हैं। यह प्रथम अव्यक्त है।

गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में गीता ज्ञान दाता प्रभु अपने विषय में कह रहा है कि यह मूर्ख प्राणी समुदाय मुझ अव्यक्त को व्यक्त अर्थात् श्री कृष्ण रूप में प्रकट हुआ मान रहा है। मैं अपनी योग माया से छुपा रहता हूँ। इसलिए किसी समक्ष प्रत्यक्ष नहीं होता।

(2) परब्रह्म इसे अक्षर पुरूष भी कहते हैं। यह दूसरा अव्यक्त है।

गीता अध्याय 8 श्लोक 18-19 में परब्रह्म का वर्णन है कि सर्व प्राणी दिन के आरम्भ में अव्यक्त से प्रकट होते हैं तथा रात्री के आरम्भ में उसी अव्यक्त में लीन हो जाते हैं।

(3) पूर्ण ब्रह्म इसे परम अक्षर पुरूष भी कहते हैं। यह तीसरा अव्यक्त है।

गीता अध्याय 8 श्लोक 26 में कहा है कि श्लोक 18-19 में कहे अव्यक्त से भी परे दूसरा

सनातन अव्यक्त भाव है। वह परम दिव्य पुरूष सब प्राणियों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता। यह तीसरा अव्यक्त हुआ।

यही प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में लिखा है ''क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष ये दो प्रभु इस लोक में जाने जाते हैं। परन्तु वास्तव में अविनाशी सर्वश्रेष्ठ परमात्मा तो इन दोनों से अन्य (दूसरा) है। जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण पोषण करता है अविनाशी परमेश्वर कहा जाता है। यही प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 में कहा है कि इस संसार रूपी वृक्ष की मूल तो परम दिव्य पुरूष हैं नीचे को तीनों गुण रूपी (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव रूपी) शाखाऐं हैं। तत्व ज्ञानी सन्त द्वारा ही सर्व स्थिती बताई जाती है उस तत्वज्ञान द्वार समझ कर उस पूर्ण परमात्मा की खोज करनी चाहिए। जहाँ जाने के पश्चात् पुनः संसार में नहीं आते। उसी की पूजा करों में भी उसी की शरण हूँ। इस अध्याय 15 श्लोक 1 में संसार की मूल पूर्ण परमात्मा कहा है। जड़ों से ही वृक्ष को आहार प्राप्त होता है। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा तीसरा अव्यक्त सर्व लोकों का पालन कर्ता है। उपरोक्त विवरण से तीन परमात्मा सिद्ध हुए।

।। ब्रह्म (काल) का परम धाम भी सतलोक।।

विशेष :- पवित्र गीता अध्याय 8 श्लोक 21 का भावार्थ है कि काल (ज्योति निरंजन) सतलोक से निष्कासित है। इसलिए कह रहा है कि मेरा भी परम धाम वही सत्यलोक स्थान है अर्थात् मैं (ब्रह्म-काल) भी उसी अमर धाम से आया हुआ हूँ। जैसे कोई व्यक्ति गाँव वाली सर्व सम्पति बेच कर किसी शहर में रह रहा हो। कभी उसी गाँव का व्यक्ति मिले तो चलती बात पर वह शहर वाला व्यक्ति कहता है कि मैं भी उसी गाँव का रहने वाला हूँ अर्थात् मेरा भी वही गाँव है। वास्तव में उस व्यक्ति का उस गाँव की सम्पति में भी अधिकार नहीं है। इसी प्रकार ब्रह्म अर्थात् गीता बोलने वाला काल भगवान कह रहा है कि मेरा भी परम धाम वही सत्यलोक है।

अध्याय 8 के श्लोक 21 में वर्णन है कि अविनाशी अदृश इस प्रकार कहा है कि उसको परम गति (पूर्ण मुक्ति) कहते हैं जिसको प्राप्त होकर फिर जन्म-मरण में नहीं आते अर्थात् वह पूर्णब्रह्म (सतपुरुष परमात्मा) अदृश है। उस परमगति को प्राप्त अर्थात् जन्म-मरण से रहित पूर्ण मुक्त होते हैं वह सतलोक मेरे लोक से श्रेष्ठ है तथा मेरा (काल ब्रह्म का) परम धाम है। चूंकि काल (ब्रह्म-ज्योति-निरंजन) भी वहीं (सतलोक) से आया है। इसलिए कहता है कि मेरा भी यह परम धाम है अर्थात् वास्तविक ठिकाना भी वही सतलोक है।

।। पूर्ण परमात्मा को अनन्य भक्ति से प्राप्त किया जा सकता है।।

अध्याय 8 के श्लोक 22 में कहा है कि हे पार्थ! जिस परमात्मा के अन्तर्गत सर्व प्राणी आते हैं जिस परमात्मा से यह समस्त जगत् परिपूर्ण है। वह परम पुरुष (पूर्ण परमात्मा-सतपुरुष) तो अनन्य {किसी और देवी-देवताओं या हनुमान माई मसानी आदि की भक्ति न कर के एक उसी उपास्य इष्ट पूर्णब्रह्म में अटूट श्रद्धा रखते हुए नाम जाप साधना करने वाले को अनन्य भक्त कहते हैं} भक्ति से ही प्राप्त होने योग्य है। कहने का अभिप्राय है कि पूर्ण परमात्मा की उपासना का लाभ एक परमेश्वर में आस्था करके शास्त्रानुकूल साधना से प्राप्त होता है।

अध्याय 8 के श्लोक 23 में कहा है कि जिस मूहूर्त (समय) में शरीर त्यागने वाले योगी (भक्त) पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते तथा जिसमें मरने वाले पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं उसको कहता हूँ।

अध्याय 8 के श्लोक 24 से 26 में वर्णन है कि अग्नि तत्व के गुण प्रकाश से दिन बनता है जिसे

शुक्ल पक्ष (प्रकाश के कारण) दिन कहा है। यह छः महीने का है। इसी प्रकार दूसरा कृष्ण पक्ष है वह भी छः महीने का है। जो शुक्ल पक्ष में मरता है वह भक्त (योगी) पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता। वह कुछ समय तक काल लोक (ब्रह्म लोक) में चला जाता है। फिर काफी समय के उपरांत जब प्रलय होती है। तब प्राणी रूप में आ जाते हैं। दूसरे जो भक्त कृष्ण पक्ष (छः महीने का) में मरते हैं (शरीर छोड़ते हैं) वे स्वर्ग में कुछ समय अपनी पुण्य कमाई को समाप्त करके जल्दी वापिस आ जाते हैं। परंतु हैं दोनों ही मार्ग अश्रेष्ठ।

अध्याय 8 के श्लोक 27,28 में कहा है कि जो पूर्ण ज्ञानी है वे इन दोनों ही मार्गों (जो वेदों में वर्णित विधि अनुसार साधना) को मुझ सनातन काल में त्याग कर उस आदि नाम (सतनाम) का आश्रय लेकर {जो पुरातन (कभी का) मार्ग है} प्रथम बार ही परम स्थान (सतलोक) में चले जाते हैं अर्थात् जो साधक तत्वदर्शी संत से तीन मंत्र का उपदेश (जिसमें एक मंत्र ओ३म तथा तत्-सत् सांकेतिक) प्राप्त करके काल के सर्व भक्ति के धार्मिक कर्मो अर्थात् ओ३म नाम के जाप तथा पाँचों यज्ञों की कमाई को काल को ही त्याग कर सत्यलोक चला जाता है।

विशेष :- गीता अध्याय 8 श्लोक 27-28 का भावार्थ है कि जो दो प्रभुओं (ब्रह्म तथा पूर्ण ब्रह्म) के विषय में पूर्वोक्त श्लोक 1 से 26 में ज्ञान कहा है। उन दोनों प्रभुओं से होने वाले मोक्ष लाभ से परिचित होकर बुद्धिमान व्यक्ति मोहित नहीं होता अर्थात् काल उपासना करके धोखा नहीं खाता। इसलिए कहा है कि उस पूर्ण परमात्मा की भक्ति करने का मन बना।

तत्वज्ञान को समझ कर उपरोक्त ज्ञान के रहस्य को जानकर साधक पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति का ही प्रयत्न करता है तथा वेदों में वर्णित साधना से होने वाले लाभ पर ही आश्रित नहीं रहता वह चारों वेदों (ऋग्वेद, सामवेद, यर्जुवेद तथा अथर्ववेद) से आगे का लाभ (जो स्वसम वेद में वर्णित है) प्राप्त करता है। उस के लिए वेदों वाली साधना से {दान, तप (तप गीता अध्याय 17 श्लोक 14 से 16 में तीन प्रकार का कहा है)तथा यज्ञ द्वारा} जो पुण्य होता है उस से होने वाला संसारिक लाभ प्राप्त न करके पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति के लिए इसे ब्रह्म में त्याग कर पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। क्योंकि वेदों में वर्णित विधि से पुण्य के आधार से स्वर्ग प्राप्ति होती है। पुण्य क्षीण होने के पश्चात् पुनः पाप के आधार के कष्ट भोगने पड़ते हैं।

गीता अध्याय 9 श्लोक 20-21 में वेदों में वर्णित साधना से भी जन्म-मृत्यु तथा स्वर्ग-नरक का चक्र समाप्त नहीं होता। गीता अध्याय 11 श्लोक 48 व 53 में कहा है कि वेदों में वर्णित साधना से मेरी प्राप्ति नहीं है। अध्याय 11 श्लोक 54 में कहा कि मेरे में प्रवेश होने के लिए ही कहा है मोक्ष-मुक्ति के लिए नहीं जैसे गीता ज्ञान दाता प्रतिदिन एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों को काल रूप में खाता है।

जैसा विवरण अध्याय 11 श्लोक 21 में अर्जुन आँखों देखा बता रहा है कि जो ऋषियों वे देवताओं का समूह आप का वेद मन्त्र द्वारा गुणगान कर रहा है आप उन्हें भी खा रहे हो। वे सर्व आप में प्रवेश कर रहे हैं। कोई आपकी दाड़ों में लटक रहे हैं इसी के विषय में श्लोक 54 में कहा है। श्लोक 55 का भी यह भावार्थ है कि मेरे साधक मेरे को प्राप्त होते है। मेरे ही जाल में रह जाते हैं। उसके लिए गीता अध्याय 8 श्लोक 28 में कहा है कि पूर्ण सन्त (तत्वदर्शी सन्त) के बताए भक्ति मार्ग से साधक वेदों में वर्णित साधना का फल स्वर्ग आदि में जाकर नष्ट नहीं करता अपितु पूर्ण परमात्मा को पाने के लिए प्रयुक्त करता है। उस वेदों वाली कमाई (ओं नाम का जाप पाँचों यज्ञों का फल) को ब्रह्म में त्यागकर पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करता है जिस कारण से पूर्ण मोक्ष प्राप्त

करता है। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में है कहा है कि हे अर्जुन मेरे सतर की सर्व धाार्मिक पूजाऐं मेरे में त्याग कर तू उस एक (अद्वितीय) सर्वशक्तिमान परमश्ेवर की शरण में (व्रज) जा। फिर मैं तूझे सर्व पापों से मुक्त कर दूंगा। क्योंकि जिन पापों को भोगना था उस के प्रतिफल में सर्व पूण्य व नाम जाप की कमाई छोड़ देने से काल का ऋण समाप्त हो जाता है। इसलिए काल जाल से मुक्ति मिलती है।

इसी का विवरण पवित्र गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में है कि अर्जुन मेरी सर्व धार्मिक पूजाओं को मुझ में त्याग कर तू केवल एक उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर की शरण में जा फिर मैं तुझे ऋण मुक्त कर दूंगा अर्थात् पापों से मुक्त कर दूंगा।

❑❑❑

।।आठवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथाष्टमोऽध्यायः

अध्याय 8 का श्लोक 1

(अर्जुन उवाच)

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते।१।

किम्, तत्, ब्रह्म, किम्, अध्यात्मम्, किम्, कर्म, पुरुषोत्तम,
अधिभूतम्, च, किम्, प्रोक्तम्, अधिदैवम्, किम्, उच्यते।।1।।

अनुवाद : (पुरुषोत्तम) हे पुरुषोत्तम! (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म (किम्) क्या है (अध्यात्मम्) अध्यात्म (किम्) क्या है? (कर्म) कर्म (किम्) क्या है? (अधिभूतम्) अधिभूत नामसे (किम्) क्या (प्रोक्तम्) कहा गया है (च) और (अधिदैवम्) अधिदैव (किम्) किसको (उच्यते) कहते हैं?(1)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे पुरुषोत्तम! वह ब्रह्म क्या है अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत नामसे क्या कहा गया है और अधिदैव किसको कहते हैं?(1)

अध्याय 8 का श्लोक 2

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः।२।

अधियज्ञः, कथम्, कः, अत्र, देहे, अस्मिन्, मधुसूदन,
प्रयाणकाले, च, कथम्, ज्ञेयः, असि, नियतात्मभिः।।2।।

अनुवाद : (मधुसूदन) हे मधुसूदन! (अत्र) यहाँ (अधियज्ञः) अधियज्ञ (कः) कौन है और वह (अस्मिन्) इस (देहे) शरीरमें (कथम्) कैसे है? (च) तथा (नियतात्मभिः) युक्त चितवाले पुरुषोंद्वारा (प्रयाणकाले) अन्त समयमें (कथम्) किस प्रकार (ज्ञेयः) जाननेमें आते (असि) हैं। (2)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे मधुसूदन! यहाँ अधियज्ञ कौन है और वह इस शरीरमें कैसे है? तथा युक्त चितवाले पुरुषोंद्वारा अन्त समयमें किस प्रकार जाननेमें आते हैं। (2)

(श्री भगवान उवाच)

अध्याय 8 का श्लोक 3

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसञ्ज्ञितः।३।

अक्षरम्, ब्रह्म, परमम्, स्वभावः, अध्यात्मम्, उच्यते,
भूतभावोद्भवकरः, विसर्गः, कर्मसञ्ज्ञितः।। 3।।

अनुवाद : ब्रह्म भगवान ने उत्तर दिया वह (परमम्) परम (अक्षरम्) अक्षर (ब्रह्म) 'ब्रह्म' है जो जीवात्मा के साथ सदा रहने वाला है (स्वभावः) उसीका स्वरूप अर्थात् परमात्मा जैसे गुणों वाली जीवात्मा (अध्यात्मम्) 'अध्यात्म' नामसे (उच्यते) कहा जाता है तथा (भूतभावोद्भवकरः) जीव भावको उत्पन्न करनेवाला जो (विसर्गः) त्याग है वह (कर्मसजितः) 'कर्म' नामसे कहा गया है। (3)

केवल हिन्दी अनुवाद : गीता ज्ञान दाता ब्रह्म भगवान ने उत्तर दिया वह परम अक्षर 'ब्रह्म' है जो जीवात्मा के साथ सदा रहने वाला है उसीका स्वरूप अर्थात् परमात्मा जैसे गुणों वाली जीवात्मा 'अध्यात्म' नामसे कहा जाता है तथा जीव भावको उत्पन्न करनेवाला जो त्याग है वह 'कर्म' नामसे कहा गया है। (3)

अध्याय 8 का श्लोक 4

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर।४।

अधिभूतम्, क्षरः, भावः, पुरुषः, च, अधिदैवतम्,
अधियज्ञः, अहम्, एव, अत्र, देहे, देहभृताम्, वर ।।4।।

अनुवाद : (अत्र) इस (देहभृताम् वर) देह धारियों में श्रेष्ठ अर्थात् मानव (देहे) शरीर में (क्षरः भावः) नाश्वान स्वभाव वाले (अधिभूतम्) अधिभूत जीव का स्वामी (च) और (अधिदैवतम्) अधिदैव दैवी शक्ति का स्वामी (अधियज्ञः) यज्ञ का स्वामी अर्थात् यज्ञ में प्रतिष्ठित अधियज्ञ (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा है(एव) इसी प्रकार इस मानव शरीर में (अहम्) मैं हूँ। (4)

केवल हिन्दी अनुवाद : इस देह धारियों में श्रेष्ठ अर्थात् मानव शरीर में नाश्वान स्वभाव वाले अधिभूत जीव का स्वामी और अधिदैव दैवी शक्ति का स्वामी यज्ञ का स्वामी अर्थात् यज्ञ में प्रतिष्ठित अधियज्ञ पूर्ण परमात्मा है इसी प्रकार इस मानव शरीर में मैं हूँ। (4)

भावार्थ :- सर्व देहधारी प्राणियों में श्रेष्ठ शरीर मानव शरीर है। इस मानव शरीर में सर्व प्रभुओं का वास है। जैसे गीता अध्याय 15 श्लोक 15 में गीता ज्ञान दाता प्रभु कह रहा है कि मैं सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ। गीता अध्याय 13 श्लोक 17 में कहा है कि वह पूर्ण ब्रह्म ज्योतियों का ज्योति माया से अति परे कहा जाता है। वह तत्वज्ञान से जानने योग्य है और सब के हृदय में विशेष रूप से स्थित है। इसी प्रकार गीता अध्याय 18 श्लोक 61 में कहा है शरीर रूपी यन्त्र में अर्न्तयामी परमेश्वर अपनी माया से भ्रमण कराता हुआ (सर्वभूतानाम्) सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित है। {इससे सिद्ध हुआ कि शरीर में दोनों प्रभुओं (ब्रह्म तथा पूर्ण ब्रह्म) का वास है}

नोट :- गीता अ. 3 के श्लोक 14,15 में स्पष्ट है कि सर्वव्यापक परमात्मा पूर्णब्रह्म ही यज्ञों में प्रतिष्ठित है अर्थात् अधियज्ञ है।

अध्याय 8 का श्लोक 5

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ।५।

अन्तकाले, च, माम्, एव, स्मरन्, मुक्त्वा, कलेवरम्,
यः, प्रयाति, सः, मद्भावम्, याति, न, अस्ति, अत्र, संशयः ।।5।।

अनुवाद : (यः) जो (अन्तकाले,च) अन्तकालमें भी (माम्) मुझको (एव) ही (स्मरन्) सुमरण करता हुआ (कलेवरम्) शरीरको (मुक्त्वा) त्यागकर (प्रयाति) जाता है (सः) वह (मद्भावम्) शास्त्रानुकूल भक्ति ब्रह्म तक की साधना के भाव को अर्थात् स्वभाव को (याति) प्राप्त होता है (अत्र) इसमें कुछ भी (संशयः) संश्य (न) नहीं (अस्ति) है। (5)

केवल हिन्दी अनुवाद : जो अन्तकालमें भी मुझको ही सुमरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है वह शास्त्रानुकूल भक्ति ब्रह्म तक की साधना के भाव को अर्थात् स्वभाव को प्राप्त होता है इसमें कुछ भी संश्य नहीं है। (5)

अध्याय 8 का श्लोक 6

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।६।

यम्, यम्, वा, अपि, स्मरन्, भावम्, त्यजति, अन्ते, कलेवरम्,
तम्, तम्, एव, एति, कौन्तेय, सदा, तद्भावभावितः।।6।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य (अन्ते) अन्तकालमें (यम् यम्) जिस–जिस (वा, अपि) भी (भावम्) भावको (स्मरन्) सुमरण करता हुआ अर्थात् जिस भी देव की उपासना करता हुआ (कलेवरम्) शरीरका (त्यजति) त्याग करता है (तम् तम्) उस–उसको (एव) ही (एति) प्राप्त होता है क्योंकि वह (सदा) सदा (तद्भावभावितः) उसी भक्ति भाव को अर्थात् स्वभाव को प्राप्त होता है। (6)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको सुमरण करता हुआ अर्थात् जिस भी देव की उपासना करता हुआ शरीरका त्याग करता है उस-उसको ही प्राप्त होता है क्योंकि वह सदा उसी भक्ति भाव को अर्थात् स्वभाव को प्राप्त होता है। (6)

(श्लोक 7 में गीता ज्ञान दाता ने अपनी भक्ति करने को कहा है)

अध्याय 8 का श्लोक 7

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।७।

तस्मात्, सर्वेषु, कालेषु, माम्, अनुस्मर, युध्य, च,
मयि, अर्पितमनोबुद्धिः, माम्, एव, एष्यसि, असंशयम्।।7।।

अनुवाद : (तस्मात्) इसलिये हे अर्जुन! तू (सर्वेषु) सब (कालेषु) समयमें निरन्तर (माम्) मेरा (अनुस्मर) सुमरण कर (च) और (युध्य) युद्ध भी कर इस प्रकार (मयि) मुझमें (अर्पितमनोबुद्धिः) अर्पण किये हुए मन–बुद्धिसे युक्त होकर तू (असंशयम्) निःसन्देह (माम्) मुझको (एव) ही (एष्यसि) प्राप्त होगा अर्थात् जब कभी तेरा मनुष्य का जन्म होगा मेरी साधना पर लगेगा तथा मेरे पास ही रहेगा। (7)

केवल हिन्दी अनुवाद : इसलिये हे अर्जुन! तू सब समयमें निरन्तर मेरा सुमरण कर और युद्ध भी कर इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा अर्थात् जब कभी तेरा मनुष्य का जन्म होगा मेरी साधना पर लगेगा तथा मेरे पास ही रहेगा। (7)

(निम्न 8,9,10 श्लोकों में गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य पूर्ण परमात्मा के विषय में कहा है)

अध्याय 8 का श्लोक 8

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्।८।

अभ्यासयोगयुक्तेन, चेतसा, नान्यगामिना।
परमम्, पुरुषम्, दिव्यम्, याति, पार्थ, अनुचिन्तयन्।।8।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (अभ्यासयोगयुक्तेन) परमेश्वरके नाम जाप के अभ्यासरूप योगसे युक्त अर्थात् उस पूर्ण परमात्मा की पूजा में लीन (नान्यगामिना) दूसरी ओर न जानेवाले (चेतसा) चित्तसे (अनुचिन्तयन्) निरन्तर चिन्तन करता हुआ भक्त (परमम्) परम (दिव्यम्) दिव्य (पुरुषम्) परमात्माको अर्थात् परमेश्वरको ही (याति) प्राप्त होता है। (8)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे पार्थ! परमेश्वरके नाम जाप के अभ्यासरूप योगसे युक्त अर्थात् उस पूर्ण परमात्मा की पूजा में लीन दूसरी ओर न जानेवाले चित्तसे निरन्तर चिन्तन करता हुआ भक्त परम दिव्य परमात्माको अर्थात् परमेश्वरको ही प्राप्त होता है। (8)

अध्याय 8 का श्लोक 9

कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।९।

कविम्, पुराणम् अनुशासितारम्, अणोः, अणीयांसम्, अनुस्मरेत्,
यः, सर्वस्य, धातारम्, अचिन्त्यरूपम्, आदित्यवर्णम्, तमसः, परस्तात्।।9।।

अनुवाद : (कविम्) कविर्देव, अर्थात् कबीर परमेश्वर जो कवि रूप में प्रसिद्ध होता है वह (पुराणम्) अनादि, (अनुशासितारम्) सबके नियन्ता (अणोः, अणीयांसम्) सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, (सर्वस्य) सबके (धातारम्) धारण–पोषण करने वाला (अचिन्त्यरूपम्) अचिन्त्य–स्वरूप (आदित्यवर्णम्) सूर्यके सदृश नित्य प्रकाशमान है (यः) जो साधक (तमसः) उस अज्ञानरूप अंधकारसे (परस्तात्) अति परे सच्चिदानन्दघन परमेश्वरका (अनुस्मरेत्) सुमरण करता है। (9)

केवल हिन्दी अनुवाद : कविर्देव, अर्थात् कबीर परमेश्वर जो कवि रूप से प्रसिद्ध होता है वह अनादि, सबके नियन्ता सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करनेवाले अचिन्त्य-स्वरूप सूर्यके सदृश नित्य प्रकाशमान है। जो उस अज्ञानरूप अंधकारसे अति परे सच्चिदानन्दघन परमेश्वरका सुमरण करता है। (9)

अध्याय 8 का श्लोक 10

प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्-
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।१०।

प्रयाणकाले, मनसा, अचलेन, भक्त्या, युक्तः, योगबलेन, च, एव, भ्रुवोः,
मध्ये, प्राणम्, आवेश्य, सम्यक्, सः, तम्, परम् पुरुषम्, उपैति, दिव्यम्।।10।।

अनुवाद : (सः) वह (भक्त्या, युक्तः) भक्तियुक्त साधक (प्रयाणकाले) अन्तकालमें (योगबलेन) नाम के जाप की भक्ति के प्रभावसे (भ्रुवोः) भृकुटी के (मध्ये) मध्यमें (प्राणम्) प्राणको (सम्यक) अच्छी प्रकार (आवेश्य) स्थापित करके (च) फिर (अचलेन) निश्चल (मनसा) मनसे (तम्) अज्ञात (दिव्यम्) दिव्यरूप (परम्) परम (पुरुषम्) भगवानको (एव) ही (उपैति) प्राप्त होता है। (10)

केवल हिन्दी अनुवाद : वह भक्तियुक्त साधक अन्तकालमें नाम के जाप की भक्ति के प्रभावसे भृकुटीके मध्यमें प्राणको अच्छी प्रकार स्थापित करके फिर निश्चल मनसे अज्ञात दिव्यरूप परम भगवानको ही प्राप्त होता है। (10)

अध्याय 8 का श्लोक 11

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये।११।

यत्, अक्षरम्, वेदविदः, वदन्ति, विशन्ति, यत्, यतयः, वीतरागाः,
यत्, इच्छन्तः, ब्रह्मचर्यम्, चरन्ति, तत्, ते, पदम्, सङ्ग्रहेण, प्रवक्ष्ये।।11।।

अनुवाद : उपरोक्त श्लोक 8 से 10 में वर्णित (यत्) जिस सच्चिदानन्द घन परमेश्वर को (वेदविदः) वेद के जानने वाले अर्थात् तत्वदर्शी सन्त (अक्षरम्) वास्तव में अविनाशी (वदन्ति) कहते हैं। (यत्) जिसमें (यतयः) यत्नशील (वितरागाः) रागरहित साधक जन (विशन्ति) प्रवेश करते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं (यत्) जिसे (इच्छन्तः) चाहने वाले (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य का (चरन्ति) आचरण करते हैं अर्थात् ब्रह्मचारी रह कर भी उस परमात्मा को प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। (तत्) उस (पदम्) पद अर्थात् पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करने वाले भक्ति पद्धती को उस पूजा विधि को (ते) तेरे लिए (सङ्ग्रेहण) संक्षेप से अर्थात् सांकेतिक रूप से (प्रवक्ष्ये) कहूँगा। (11)

केवल हिन्दी अनुवादः उपरोक्त श्लोक 8 से 10 में वर्णित जिस सच्चिदानन्द घन परमेश्वर को वेद के जानने वाले अर्थात् तत्वदर्शी सन्त वास्तव में अविनाशी कहते हैं। जिसमें यत्नशील रागरहित साधक जन प्रवेश करते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं जिसे चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं अर्थात् ब्रह्मचारी रह कर भी उस परमात्मा को प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। उस पद अर्थात् पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करने वाले भक्ति पद्धती को उस पूजा विधि को तेरे लिए संक्षेप में अर्थात् सांकेतिक रूप से कहूँगा।

भावार्थ : इस अध्याय में गीता ज्ञान दाता भिन्न-2 साधना का ज्ञान करते हुए कह रहा है कि जो तत्वदर्शी संत नाम (मन्त्र) जाप के लिए बताता है जिससे मोक्ष प्राप्त करते हैं। वह मार्ग बताऊँगा जिसका वर्णन गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में किया है कि पूर्ण परमात्मा की साधना का तो केवल ओम्-तत्-सत् यह तीन अक्षर का मन्त्र है, अन्य नहीं।

अध्याय 8 का श्लोक 12

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।१२।

सर्वद्वाराणि, संयम्य, मनः, हृदि, निरुध्य, च,
मूर्ध्नि, आधाय, आत्मनः, प्राणम्, आस्थितः, योगधारणाम्।।12।।

अनुवाद : जो भक्ति पद अर्थात् पद्यति बताने जा रहा हूँ उस में साधक (सर्वद्धाराणि) सर्व इन्द्रियों के द्वारों को (संयम्य) नियमित करके (मनः) मन को (हृदय) हृदय देश में (च) तथा (प्राणम्) स्वासों को (मूर्ध्नि) मस्तिक में (निरुध्य) स्थिर करके (आत्मनः) परमात्मा के ध्यान में (अधाय) स्थापित करके (योग धारणाम्) योग धारण अर्थात् साधना में (आस्थितः) स्थित होता है। (12)

केवल हिन्दी अनुवाद :--जो भक्ति पद अर्थात् पद्यति बताने जा रहा हूँ उस में साधक सर्व इन्द्रियों के द्वारों को नियमित करके मन को हृदय देश में तथा स्वासों को मस्तिक में स्थिर करके परमात्मा के ध्यान में स्थापित करके योग धारण अर्थात् साधना में स्थित होता है।

भावार्थ : गीता ज्ञान दाता काल भगवान केवल संक्षेप में संकेत द्वारा कह रहा है कि पूर्ण

परमात्मा को प्राप्त करने वाली भक्ति पद्धती में साधक स्वासों द्वारा साधना करता है। गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में ओं-तत्-सत् जो तीन मन्त्र का जाप है उसका मन-पवन अर्थात् स्वासों व सुरति व निरति को सम करके मस्तिक तथा हृदय में अभ्यास करता है। जैसे सतनाम के जाप को स्वासों द्वारा किया जाता है। सत्यनाम में दो अक्षर होते हैं एक अक्षर ओं (ॐ) तथा दूसरा तत् जो गुप्त है। ओं (ॐ) नाम ब्रह्म का जाप है। ब्रह्म का स्थान संहस्त्र कमल है जो मस्तिक के पीछे है तथा पूर्ण परमात्मा विशेष रूप से हृदय में (जल में सूर्य की तरह) निवास करता है। इसलिए सत्यनाम के सुमरण में स्वांस पर ध्यान एकाग्र करके मस्तिक व हृदय में स्वांस के साथ ध्यान से नामों का जाप किया जाता है। काल भगवान को पूर्ण भक्ति विधि का ज्ञान नहीं है। अगले श्लोक 13 में केवल अपनी साधना की विधि बताई है।

अध्याय 8 का श्लोक 13

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।१३।

ओम्, इति, एकाक्षरम्, ब्रह्म, व्याहरन्, माम्, अनुस्मरन्,
यः, प्रयाति, त्यजन्, देहम्, सः, याति, परमाम्, गतिम्।।13।।

अनुवाद : गीता ज्ञान दाता ब्रह्म कह रहा है कि उपरोक्त श्लोक 11-12 में जिस गीता अध्याय 17 के श्लोक 23 में जो मन्त्र को पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति का कहा है उस पूर्ण मोक्ष मार्ग के नाम में तीन अक्षर का जाप ओं–तत–सत् है उस में (माम् ब्रह्म) मुझ ब्रह्म का तो (इति) यह (ओम्) ओम्/ऊँ (एकाक्षरम) एक अक्षर है (व्यवाहरन्) उच्चारण करते हुए (अनुस्मरन्) स्मरन करने अर्थात् साधना करने का (यः) जो (त्यजन् देहम्) शरीर त्याग कर जाता हुआ स्मरण करता है अर्थात् अंतिम समय में (प्रयाति) साधना स्मरण करता हुआ मर जाता है (सः) वह (परमाम् गतिम्) परम गति पूर्ण मोक्ष को (याति) प्राप्त होता है। अपनी गति को तो गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अनुत्तम कहा है। इसलिए यहाँ पर पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति अर्थात् पूर्ण मोक्ष रूपी परम गति का वर्णन है(13)

केवल हिन्दी अनुवाद : गीता ज्ञान दाता ब्रह्म कह रहा है कि उपरोक्त श्लोक 11-12 में जिस पूर्ण मोक्ष मार्ग के नाम जाप में तीन अक्षर का जाप कहा है उस में मुझ ब्रह्म का तो यह ओं/ऊँ एक अक्षर है उच्चारण करते हुए स्मरन करने अर्थात् साधना करने का जो शरीर त्याग कर जाता हुआ स्मरण करता है अर्थात् अंतिम समय में स्मरण करता हुआ मर जाता है वह परम गति पूर्ण मोक्ष को प्राप्त होता है। {अपनी गति को तो गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अनुत्तम कहा है। इसलिए यहाँ पर पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति अर्थात् पूर्ण मोक्ष रूपी परम गति का वर्णन है (13)}

भावार्थ : काल भगवान कह रहा है कि उस तीन अक्षरों (ओं,तत्,सत्) वाले मन्त्र में मुझ ब्रह्म का केवल एक ओम/ऊँ (ओं) अक्षर है। उच्चारण करके स्मरण करने का जो साधक अंतिम स्वांस तक स्मरण साधना करता हुआ शरीर त्याग जाता है वह परम गति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होता है। {अपनी गति को अध्याय 7 श्लोक 18 में (अनुतमाम्) अति अश्रेष्ठ कहा है।}

अध्याय 8 का श्लोक 14

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।१४।

अनन्यचेताः, सततम्, यः, माम्, स्मरति, नित्यशः,
तस्य, अहम्, सुलभः, पार्थ, नित्ययुक्तस्य, योगिनः।।14।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (यः) जो (अनन्यचेताः) अनन्यचित होकर (नित्यशः) सदा ही (सततम्) निरन्तर (माम्) मुझको (स्मरति) सुमरण करता है (तस्य) उस (नित्ययुक्तस्य) नित्य निरन्तर युक्त हुए (योगिनः) योगीके लिये (अहम्) मैं (सुलभः) सुलभ हूँ। (14)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे अर्जुन! जो अनन्यचित होकर सदा ही निरन्तर मुझको सुमरण करता है उस नित्य निरन्तर युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ। (14)

अध्याय 8 का श्लोक 15

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः। १५।

माम्, उपेत्य, पुनर्जन्म, दुःखालयम्, अशाश्वतम्,
न, आप्नुवन्ति, महात्मानः, संसिद्धिम्, परमाम्, गताः ।।15।।

अनुवाद : (माम्) मुझको (उपेत्य) प्राप्त साधकतो(अशाश्वतम्) क्षणभंगुर (दुःखालयम्) दुःख के घर (पुनर्जन्म) बार–बार जन्म–मरण में हैं (परमाम्) परम अर्थात् पूर्ण परमात्मा की साधना से होने वाली (संसिद्धिम) सिद्धिको (गताः) प्राप्त (महात्मानः) महात्माजन (न) नहीं (आप्नुवन्ति) प्राप्त होते। यही प्रमाण गीता अध्याय 2 श्लोक 12 , अध्याय 4 श्लोक 5 व 9 तथा गीता अध्याय 15 श्लोक 4 अध्याय 18 श्लोक 62 में है जिनमें कहा है कि मेरे तथा तेरे अनेकों जन्म व मृत्यु हो चुके हैं परन्तु उस परमेश्वर को प्राप्त करके ही साधक सदा के लिए जन्म मरण से मुक्त हो जाता है वह फिर लौट कर इस क्षण भंगुर लोक में नहीं आता(15)

केवल हिन्दी अनुवाद : मुझको प्राप्त साधकतो क्षणभंगुर दुःख के घर बार-बार जन्म-मरण में हैं परम अर्थात् पूर्ण परमात्मा की साधना से होने वाली सिद्धिको प्राप्त महात्माजन नहीं प्राप्त होते। यही प्रमाण गीता अध्याय 2 श्लोक 12 , अध्याय 4 श्लोक 5 व 9 तथा गीता अध्याय 15 श्लोक 4 अध्याय 18 श्लोक 62 में है जिनमें कहा है कि मेरे तथा तेरे अनेकों जन्म व मृत्यु हो चुके हैं परन्तु उस परमेश्वर को प्राप्त करके ही साधक सदा के लिए जन्म मरण से मुक्त हो जाता है वह फिर लौट कर इस क्षण भंगुर लोक में नहीं आता(15)

अध्याय 8 का श्लोक 16

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते। १६।

आब्रह्मभुवनात्, लोकाः, पुनरावर्तिनः, अर्जुन,
माम्, उपेत्य, तु, कौन्तेय, पुनर्जन्म, न, विद्यते ।।16।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (आब्रह्मभुवनात्) ब्रह्मलोक से लेकर (लोकाः) सब लोक (पुनरावर्तिनः) बारम्बार उत्पत्ति नाश वाले हैं (तु) परन्तु (कौन्तेय) हे कुन्ती पुत्र (न, विद्यते) जो यह नहीं जानते वे (माम्) मुझे (उपेत्य) प्राप्त होकर भी (पुनः) फिर (जन्मः) जन्मते हैं। (16)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे अर्जुन! ब्रह्मलोक से लेकर सब लोक बारम्बार उत्पत्ति नाश वाले हैं परन्तु हे कुन्ती पुत्र जो यह नहीं जानते वे मुझे प्राप्त होकर भी फिर जन्मते हैं। (16)

विशेष :- गीताप्रैस गोरखपुर से प्रकाशित गीता अध्याय 10 श्लोक 17 में विद्याम का अर्थ जानूँ किया है, गीता अध्याय 6 श्लोक 23 तथा अध्याय 14 श्लोक 11 में विद्यात का अर्थ जानना चाहिए किया है तथा गीता अध्याय 15 श्लोक 15 में तथा गीता अध्याय 9 श्लोक 17 में वेद्यः तथा वेद्यम् का

अर्थ जानने योग्य तथा जानना चाहिए किया है। इसलिए विद्यते का अर्थ 'जानते' सही है।

यदि इन श्लोकों 15-16 का अर्थ अन्य अनुवाद कर्ताओं वाला सही माना जाए कि ब्रह्म (गीता ज्ञान दाता को) को प्राप्त होने के पश्चात् पुर्नजन्म नहीं होता तो गीता अध्याय 2 श्लोक 12, अध्याय 4 श्लोक 5 व 9 तथा अध्याय 15 श्लोक 4 तथा अध्याय 18 श्लोक 62 का अर्थ सही नहीं लगेगा। इसलिए यही उपरोक्त अनुवाद जो मुझ दास(संत रामपाल जी महाराज) द्वारा किया गया है वह उचित है।

अध्याय 8 का श्लोक 17

सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्त्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।१७।

सहस्त्रयुगपर्यन्तम्, अहः,यत्,ब्रह्मणः, विदुः,रात्रिम्,
युगसहस्त्रान्ताम्, ते, अहोरात्रविदः, जनाः।।17।।

अनुवाद : (ब्रह्मणः) परब्रह्म का (यत्) जो (अहः) एक दिन है उसको (सहस्त्रयुगपर्यन्तम्) एक हजार युग की अवधिवाला और (रात्रिम्) रात्रिको भी (युगसहस्त्रान्ताम्) एक हजार युगतकको अवधिवाली (विदुः) तत्वसे जानते हैं (ते) वे (जनाः) तत्वदर्शी संत (अहोरात्रविदः) दिन–रात्री के तत्वको जाननेवाले हैं। (17)

केवल हिन्दी अनुवाद : परब्रह्म का जो एक दिन है उसको एक हजार युग की अवधिवाला और रात्रिको भी एक हजार युगतकको अवधिवाली तत्वसे जानते हैं वे तत्वदर्शी संत दिन-रात्री के तत्वको जाननेवाले हैं। (17)

विशेषः- सात त्रिलोकिय ब्रह्मा (काल के रजगुण पुत्र) की मृत्यु के बाद एक त्रिलोकिय विष्णु जी की मृत्यु होती है तथा सात त्रिलोकिय विष्णु (काल के सतगुण पुत्र) की मृत्यु के बाद एक त्रिलोकिय शिव (ब्रह्म-काल के तमोगुण पुत्र) की मृत्यु होती है। ऐसे 70000 (सतर हजार अर्थात् 0.7 लाख) त्रिलोकिय शिव की मृत्यु के उपरान्त एक ब्रह्मलोकिय महा शिव (सदाशिव अर्थात् काल) की मृत्यु होती है। एक ब्रह्मलोकिय महाशिव की आयु जितना एक युग परब्रह्म (अक्षर पुरूष) का हुआ। ऐसे एक हजार युग अर्थात् एक हजार ब्रह्मलोकिय शिव (ब्रह्मलोक में स्वयं काल ही महाशिव रूप में रहता है) की मृत्यु के बाद काल के इक्कीस ब्रह्मण्डों का विनाश हो जाता है। इसलिए यहाँ पर परब्रह्म के एक दिन जो एक हजार युग का होता है तथा इतनी ही रात्री होती है। लिखा है।

''सर्व प्रभुओं की आयु''

(1) रजगुण ब्रह्मा की आयुः–ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चतुर्युग का है तथा इतनी ही रात्री है। (एक चतुर्युग में 43,20,000 मनुष्यों वाले वर्ष होते हैं) एक महिना तीस दिन रात का है, एक वर्ष बारह महिनों का है तथा सौ वर्ष की ब्रह्मा जी की आयु है। जो सात करोड़ बीस लाख चतुर्युग की है।

(2) सतगुण विष्णु की आयुः–श्री ब्रह्मा जी की आयु से सात गुणा अधिक श्री विष्णु जी की आयु है अर्थात् पचास करोड़ चालीस लाख चतुर्युग की श्री विष्णु जी की आयु है।

(3) तमगुण शिव की आयुः–श्री विष्णु जी की आयु से श्री शिव जी की आयु सात गुणा अधिक है अर्थात् तीन अरब बावन करोड़ अस्सी लाख चतुर्युग की श्री शिव की आयु है।

(4) काल ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरूष की आयुः–सात त्रिलोकिय ब्रह्मा (काल के रजगुण पुत्र) की

मृत्यु के बाद एक त्रिलोकिय विष्णु जी की मृत्यु होती है तथा सात त्रिलोकिय विष्णु (काल के सतगुण पुत्र) की मृत्यु के बाद एक त्रिलोकिय शिव (ब्रह्म/काल के तमोगुण पुत्र) की मृत्यु होती है। ऐसे 70000 (सतर हजार अर्थात् 0.7 लाख) त्रिलोकिय शिव की मृत्यु के उपरान्त एक ब्रह्मलोकिय महा शिव (सदाशिव अर्थात् काल) की मृत्यु होती है। एक ब्रह्मलोकिय महाशिव की आयु जितना एक युग परब्रह्म (अक्षर पुरूष) का हुआ। ऐसे एक हजार युग का परब्रह्म का एक दिन होता है। परब्रह्म के एक दिन के समापन के पश्चात् काल ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्मण्डों का विनाश हो जाता है तथा काल व प्रकृति देवी(दुर्गा) की मृत्यु होती है। परब्रह्म की रात्री (जो एक हजार युग की होती है) के समाप्त होने पर दिन के प्रारम्भ में काल व दुर्गा का पुनर् जन्म होता है फिर ये एक ब्रह्मण्ड में पहले की भांति सृष्टि प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकार परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरूष का एक दिन एक हजार युग का होता है तथा इतनी ही रात्री है।

अक्षर पुरूष अर्थात् परब्रह्म की आयु :— परब्रह्म का एक युग ब्रह्मलोकीय शिव अर्थात् महाशिव (काल ब्रह्म) की आयु के समान होता है। परब्रह्म का एक दिन एक हजार युग का तथा इतनी ही रात्री होती है। इस प्रकार परब्रह्म का एक दिन—रात दो हजार युग का हुआ। एक महिना 30 दिन का एक वर्ष 12 महिनों का तथा परब्रह्म की आयु सौ वर्ष की है। इस से सिद्ध है कि परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरूष भी नाश्वान है। इसलिए गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 तथा अध्याय 8 श्लोक 20 से 22 में किसी अन्य पूर्ण परमात्मा के विषय में कहा है जो वास्तव में अविनाशी है।

नोट :- गीता जी के अन्य अनुवाद कर्ताओं ने ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चतुर्युग का लिखा है जो उचित नहीं है। क्योंकि मूल संस्कृत में सहंसर युग लिखा है न की चतुर्युग। तथा ब्रह्मणः लिखा है न कि ब्रह्मा। तत्वज्ञान के अभाव से अर्थों का अनर्थ किया है।

अध्याय 8 का श्लोक 18

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसञ्ज्ञके।१८।

अव्यक्तात्, व्यक्तयः, सर्वाः, प्रभवन्ति, अहरागमे,
रात्र्यागमे, प्रलीयन्ते, तत्र, एव, अव्यक्तसञ्ज्ञके।। 18।।

अनुवाद : (सर्वाः) सम्पूर्ण (व्यक्तयः) प्रत्यक्ष आकार में आया संसार (अहरागमे) परब्रह्म के दिनके प्रवेशकालमें (अव्यक्तात्) अव्यक्तसे अर्थात् अदृश परब्रह्म से (प्रभवन्ति) उत्पन्न होते हैं और (रात्र्यागमे) रात्रि आने पर (तत्र) उस (अव्यक्तसञ्ज्ञके) अदृश अर्थात् परोक्ष परब्रह्म में (एव) ही (प्रलीयन्ते) लीन हो जाते हैं। (18)

केवल हिन्द अनुवाद : सम्पूर्ण प्रत्यक्ष आकार में आया संसार परब्रह्म के दिन के प्रवेशकालमें अव्यक्तसे अर्थात् अदृश परब्रह्म से उत्पन्न होते हैं और रात्रि आने पर उस अदृश अर्थात् परोक्ष परब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं। (18)

अध्याय 8 का श्लोक 19

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे।१९।

भूतग्रामः, सः, एव, अयम्, भूत्वा, भूत्वा, प्रलीयते,
रात्र्यागमे, अवशः, पार्थ, प्रभवति, अहरागमे।।19।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (सः,एव) वही (अयम्) यह (भूतग्रामः) प्राणी समुदाय (भूत्वा, भूत्वा) उत्पन्न हो होकर (अवशः) संस्कार वश होकर (रात्र्यागमे) रात्रिके प्रवेशकालमें (प्रलीयते) लीन होता है और

(अहरागमे) दिनके प्रवेशकालमें फिर (प्रभवति) उत्पन्न होता है। (19)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे पार्थ! वही यह प्राणी समुदाय उत्पन्न हो होकर संस्कार वश होकर रात्रिके प्रवेशकालमें लीन होता है और दिन के प्रवेशकालमें फिर उत्पन्न होता है। (19)

अध्याय 8 का श्लोक 20

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति।२०।

परः, तस्मात्, तु, भावः, अन्यः, अव्यक्तः,, अव्यक्तात्, सनातनः।
यः सः, सर्वेषु, भूतेषु, नश्यत्सु, न, विनश्यति।।20।।

अनुवाद : (तु) परंतु (तस्मात्) उस (अव्यक्तात्) अव्यक्त अर्थात् गुप्त परब्रह्म से भी अति (परः) परे (अन्यः) दूसरा (यः) जो (सनातनः) आदि (अव्यक्तः) अव्यक्त अर्थात् परोक्ष (भावः) भाव है (सः) वह परम दिव्य पुरुष (सर्वेषु) सब (भूतेषु) प्राणियों के (नश्यत्सु) नष्ट होने पर भी (न, विनश्यति) नष्ट नहीं होता। (20)

केवल हिन्दी अनुवाद : परंतु उस अव्यक्त अर्थात् गुप्त परब्रह्म से भी अति परे दूसरा जो आदि अव्यक्त अर्थात् परोक्ष भाव है वह परम दिव्य पुरुष सब प्राणियों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता। (20)

अध्याय 8 का श्लोक 21

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।२१।

अव्यक्तः, अक्षरः, इति, उक्तः, तम्, आहुः, परमाम्, गतिम्।
यम्, प्राप्य, न, निवर्तन्ते, तत् धाम, परमम्, मम्।।21।।

अनुवाद : (अव्यक्तः) अदृश अर्थात् परोक्ष (अक्षरः) अविनाशी (इति) इस नामसे (उक्तः) कहा गया है (तम्) अज्ञान के अंधकार में छुपे गुप्त स्थान को (परमाम्, गतिम्) परमगति (आहुः) कहते हैं (यम्) जिसे (प्राप्य) प्राप्त होकर मनुष्य (न, निवर्तन्ते) वापस नहीं आते (तत् धाम) वह लोक (परमम् मम्) मुझ से व मेरे लोक से श्रेष्ठ है। (21)

केवल हिन्दी अनुवाद : अदृश अर्थात् परोक्ष अविनाशी इस नामसे कहा गया है अज्ञान के अंधकार में छुपे गुप्त स्थान को परमगति कहते हैं जिसे प्राप्त होकर मनुष्य वापस नहीं आते वह लोक मुझ से व मेरे लोक से श्रेष्ठ है। (21)

क्योंकि काल (ब्रह्म) सत्यलोक से निष्कासित है, इसलिए कह रहा है कि मेरा भी वास्तविक स्थान सत्यलोक है। मैं भी पहले वहीं रहता था तथा मेरे लोक से श्रेष्ठ है। जहाँ जाने के पश्चात् वापिस जन्म–मृत्यु में नहीं आते अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करते हैं।

गीता अध्याय 8 श्लोक 18,20,21,22 अध्याय 8 के श्लोकों में दो परमात्माओं का वर्णन है। श्लोक 18 में कहा है कि सर्व प्राणी इस अव्यक्त परमात्मा अर्थात् परब्रह्म में प्रलय समय लीन हो जाते है। फिर उत्पत्ति समय उत्पन्न हो जाते हैं। श्लोक 20-21 में कहा है कि उस अव्यक्त अर्थात् परब्रह्म से दूसरा अव्यक्त परमात्मा अर्थात् पूर्ण ब्रह्म है जहाँ जाने के पश्चात् प्राणी फिर लौट कर संसार में नहीं आते। अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करते हैं। एक अव्यक्त गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में है। इस प्रकार तीन परमात्मा सिद्ध हुए। यही प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 तथा 16 व 17 में है।

अध्याय 8 का श्लोक 22

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।२२।

पुरुषः, सः, परः, पार्थ, भक्त्या, लभ्यः, तु, अनन्यया।
यस्य, अन्तःस्थानि, भूतानि, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्।।22।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (यस्य) जिस परमात्माके (अन्तःस्थानि) अन्तर्गत (भूतानि) सर्वप्राणी हैं और (येन) जिस सच्चिदानन्दघन परमात्मासे (इदम्) यह (सर्वम्) समस्त जगत् (ततम्) परिपूर्ण है जिस के विषय में उपरोक्त श्लोक 20,21 में तथा गीता अध्याय 15 श्लोक 1-4 तथा 17 में व अध्याय 18 श्लोक 46,61,62, तथा 65,66 में कहा है। (सः) वह (परः) परम (पुरुषः) परमात्मा (तु) तो (अनन्यया) अनन्य (भक्त्या) भक्तिसे ही (लभ्यः) प्राप्त होने योग्य है। (22)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे पार्थ! जिस परमात्माके अन्तर्गत सर्वप्राणी हैं और जिस सच्चिदानन्दघन परमात्मासे यह समस्त जगत् परिपूर्ण है जिस के विषय में उपरोक्त श्लोक 20,21 में तथा गीता अध्याय 15 श्लोक 1-4 तथा 17 में व अध्याय 18 श्लोक 46,61,62, तथा 65,66 में कहा है। वह श्रेष्ठ परमात्मा तो अनन्य भक्तिसे ही प्राप्त होने योग्य है। (22)

अध्याय 8 का श्लोक 23

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ।२३।

यत्र, काले, तु, अनावृत्तिम्, आवृत्तिम्, च, एव, योगिनः,
प्रयाताः यान्ति, तम्, कालम्, वक्ष्यामि, भरतर्षभ।।23।।

अनुवाद : (भरतर्षभ) हे अर्जुन! (यत्र) जिस (काले) कालमें (प्रयाताः) शरीर त्यागकर गये हुए (योगिनः) योगीजन (तु) तो (अनावृत्तिम्) वापस न लौटने वाली गतिको (च) और जिस कालमें गये हुए (आवृत्तिम्) वापस लौटनेवाली गतिको (एव) ही (यान्ति) प्राप्त होते हैं (तम्) उस गुप्त (कालम्) कालको अर्थात् दोनों मार्गोंको (वक्ष्यामि) कहूँगा। (23)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे अर्जुन! जिस कालमें शरीर त्यागकर गये हुए योगीजन तो वापस न लौटने वाली गतिको और जिस कालमें गये हुए वापस लौटनेवाली गतिको ही प्राप्त होते हैं उस गुप्त कालको अर्थात् दोनों मार्गोंको कहूँगा। (23)

अध्याय 8 का श्लोक 24

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः।२४।

अग्निः, ज्योतिः, अहः, शुक्लः, षण्मासाः, उत्तरायणम्,
तत्र, प्रयाताः, गच्छन्ति, ब्रह्म, ब्रह्मविदः, जनाः।।24।।

अनुवाद : (ज्योतिः) प्रकाश (अग्निः) अग्नि है (अहः) दिन का कर्ता है (शुक्लः) शुक्लपक्ष कहा है और (उत्तरायणम्) उतरायणके (षण्मासाः) छः महीनोंका अभिमानी देवता है (तत्र) उस मार्गमें (प्रयाताः) मरकर गये हुए (ब्रह्मविदः) परमात्मा को तत्व से जानने वाले (जनाः) योगीजन (ब्रह्म) परमात्मा को (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं। (24)

केवल हिन्दी अनुवाद : प्रकाश अग्नि दिनका कर्ता है शुक्लपक्ष कहा है और उतरायणके छः महीनोंका है उस मार्गमें मरकर गये हुए परमात्मा को तत्व से जानने वाले योगीजन परमात्मा को प्राप्त होते हैं। (24)

अध्याय 8 का श्लोक 25

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते।२५।

धूमः, रात्रिः, तथा, कृष्णः, षण्मासाः, दक्षिणायनम्,
तत्र, चान्द्रमसम्, ज्योतिः, योगी, प्राप्य, निवर्तते।।25।।

अनुवाद : (धूमः) अन्धकार (रात्रिः) रात्रि–का कर्ता है (तथा) तथा (कृष्णः) कृष्णपक्ष (दक्षिणायनम्) दक्षिणायनके (षण्मासाः) छः महीनोंका है (तत्र) उस मार्गमें मरकर गया हुआ (योगी) योगी (चान्द्रमसम्) चन्द्रमाकी (ज्योतिः) ज्योतिको (प्राप्य) प्राप्त होकर स्वर्ग में अपने शुभ कर्मोंका फल भोगकर (निवर्तते) वापस आता है। (25)

केवल हिन्दी अनुवाद : अन्धकार रात्रि–का कर्ता है तथा कृष्णपक्ष है और दक्षिणायनके छः महीनोंका है उस मार्गमें मरकर गया हुआ योगी चन्द्रमाकी ज्योतिको प्राप्त होकर स्वर्ग में अपने शुभ कर्मोंका फल भोगकर वापस आता है। (25)

विशेषः– उपरोक्त दोनों श्लोकों का भावार्थ परमेश्वर कबीर बन्दी छोड़ जी ने अपनी अमृतवाणी स्वसम वेद में कहा है कि तारा मण्डल बैठ कर चाँद बड़ाई खाय। उदय हुआ जब सूरज का स्यों तारों छिप जाय''

वाणी का अर्थः– जैसे रात्री के समय चन्द्रमा तारों की रोशनी से अधिक चमकदार होता है। परन्तु सूर्य के प्रकाश के समक्ष उस का प्रकाश समाप्त हो जाता है। यहाँ चांद तो ब्रह्म तथा परब्रह्म तथा तारे ब्रह्मा–विष्णु व शिव जाने तथा सूर्य पूर्ण परमात्मा का लाभ जाने।

अध्याय 8 का श्लोक 26

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः।२६।

शुक्लकृष्णे, गती, हि, एते, जगतः, शाश्वते, मते,
एकया,याति,अनावृत्तिम्,अन्यया,आवर्तते,पुनः।।26।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (जगतः) जगत्के (एते) ये दो प्रकारके (शुक्लकृष्णे) शुक्ल और कृष्ण (गती) मोक्ष मार्ग (शाश्वते) सनातन (मते) माने गये हैं इनमें (एकया) एकके द्वारा गया हुआ (अनावृत्तिम्) जिससे वापस नहीं लौटना पड़ता उस परमगतिको (याति) प्राप्त होता है और (अन्यया) दूसरे मार्ग द्वारा गया हुआ (पुनः) फिर (आवर्तते) वापस आता है अर्थात् जन्म–मरणको प्राप्त होता है। (26)

केवल हिन्दी अनुवाद : क्योंकि जगत्के ये दो प्रकारके शुक्ल और कृष्ण मोक्ष मार्ग सनातन माने गये हैं इनमें एकके द्वारा गया हुआ जिससे वापस नहीं लौटना पड़ता उस परमगतिको प्राप्त होता है और दूसरे मार्ग द्वारा गया हुआ फिर वापस आता है अर्थात् जन्म–मरणको प्राप्त होता है। (26)

विशेष :- गीता अध्याय 8 श्लोक 27-28 का भावार्थ है कि जिन प्रभुओं (ब्रह्म–परब्रह्म तथा पूर्ण ब्रह्म) के विषय में पूर्वोक्त श्लोक 1 से 26 में ज्ञान कहा है। उन दोनों प्रभुओं से होने वाले मोक्ष लाभ से परिचित होकर बुद्धिमान व्यक्ति मोहित नहीं होता अर्थात् काल उपासना करके धोखा नहीं खाता। इसलिए कहा है कि उस पूर्ण परमात्मा की भक्ति करने का मन बना।

तत्वज्ञान को समझ कर उपरोक्त ज्ञान के रहस्य को जानकर साधक पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति का ही प्रयत्न करता है तथा वेदों में वर्णित साधना से होने वाले लाभ पर ही आश्रित नहीं रहता वह चारों वेदों (ऋग्वेद, सामवेद, यर्जुवेद तथा अथर्ववेद) से आगे का लाभ (जो स्वसम वेद में वर्णित है) प्राप्त करता है।

उस के लिए वेदों वाली साधना से {दान, तप (तप गीता अध्याय 17 श्लोक 14 से 16 में तीन प्रकार का कहा है)तथा यज्ञ द्वारा} जो पुण्य होता है उस से होने वाला संसारिक लाभ प्राप्त न करके पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति के लिए इसे ब्रह्म में त्याग कर पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। क्योंकि वेदों में वर्णित विधि से पुण्य के आधार से स्वर्ग प्राप्ति होती है। पुण्य क्षीण होने के पश्चात् पुनः पाप के आधार के कष्ट भोगने पड़ते हैं।

गीता अध्याय 9 श्लोक 20-21 में वेदों में वर्णित साधना से भी जन्म–मृत्यु तथा स्वर्ग–नरक का चक्र समाप्त नहीं होता। गीता अध्याय 11 श्लोक 48 व 53 में कहा है कि वेदों में वर्णित साधना से मेरी प्राप्ति नहीं है। अध्याय 11 श्लोक 54 में कहा कि मेरे में प्रवेश होने के लिए ही कहा है मोक्ष–मुक्ति के लिए नहीं जैसे गीता ज्ञान दाता प्रतिदिन एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों को काल रूप में खाता है।

जैसा विवरण अध्याय 11 श्लोक 21 में अर्जुन आँखों देखा बता रहा है कि जो ऋषियों वे देवताओं का समूह आप का वेद मन्त्र द्वारा गुणगान कर रहा है आप उन्हें भी खा रहे हो। वे सर्व आप में प्रवेश कर रहे हैं। कोई आपकी दाड़ों में लटक रहे हैं इसी के विषय में श्लोक 54 में कहा है। श्लोक 55 का भी यह भावार्थ है कि मेरे साधक मेरे को प्राप्त होते है। मेरे ही जाल में रह जाते हैं। उसके लिए गीता अध्याय 8 श्लोक 28 में कहा है कि पूर्ण सन्त (तत्वदर्शी सन्त) के बताए भक्ति मार्ग से साधक वेदों में वर्णित साधना का फल स्वर्ग आदि में जाकर नष्ट नहीं करता अपितु पूर्ण परमात्मा को पाने के लिए प्रयुक्त करता है। उस वेदों वाली कमाई (ओं नाम का जाप पाँचों यज्ञों का फल) को ब्रह्म में त्यागकर पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करता है जिस कारण से पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में है कहा है कि हे अर्जुन मेरे सत्र की सर्व धाार्मिक पूजाऐं मेरे में त्याग कर तू उस एक (अद्वितीय) सर्वशक्तिमान परमेश्वर की शरण में (व्रज) जा। फिर मैं तूझे सर्व पापों से मुक्त कर दूंगा। क्योंकि जिन पापों को भोगना था उस के प्रतिफल में सर्व पूण्य व नाम जाप की कमाई छोड़ देने से काल का ऋण समाप्त हो जाता है। इसलिए काल जाल से मुक्ति मिलती है।

अध्याय 8 का श्लोक 27

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन। २७।

न,एते,सृती, पार्थ, जानन्,योगी, मुह्यति,कश्चन,
तस्मात्,सर्वेषु, कालेषु, योगयुक्तः, भव, अर्जुन।।27।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! इस प्रकार (एते) इन दोनों (सृती) मार्गों की भिन्नता को (जानन्) तत्वसे जानकर (कश्चन) कोई भी (योगी) योगी (न, मुह्यति) मोहित नहीं होता (तस्मात्) इस कारण (अर्जुन) हे अर्जुन! तू (सर्वेषु) सब (कालेषु) कालमें (योगयुक्तः) समबुद्धिरूप योगसे युक्त (भव) हो अर्थात् निरन्तर पूर्ण परमात्मा प्राप्तिके लिये साधन करनेवाला हो। (27)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे पार्थ! इस प्रकार इन दोनों मार्गों की भिन्नता को तत्वसे जानकर कोई भी योगी मोहित नहीं होता इस कारण हे अर्जुन! तू सब कालमें समबुद्धिरूप योगसे युक्त हो अर्थात् निरन्तर पूर्ण परमात्मा प्राप्तिके लिये साधन करनेवाला हो। (27)

अध्याय 8 का श्लोक 28

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्। २८।

वेदेषु, यज्ञेषु, तपःसु, च, एव, दानेषु, यत्, पुण्यफलम्, प्रदिष्टम्, अत्येति,
तत्, सर्वम्, इदम्, विदित्वा, योगी, परम्, स्थानम्, उपैति, च, आद्यम्।।28।।

अनुवाद : (योगी) साधक (इदम्) इस पूर्वोक्त रहस्य को (विदित्वा) तत्वसे जानकर (वेदेषु) वेदोंके पढ़नेमें (च) तथा (यज्ञेषु) यज्ञ (तपःसु) तप और (दानेषु) दानादिके करनेमें (यत्) जो (पुण्यफलम्) पुण्यफल (प्रदिष्टम्) कहा है (तत्) उस (सर्वम्) सबको (एव) निःसन्देह मुझ में (अत्येति) त्याग कर वेदों से आगे वाला ज्ञान जानकर शस्त्र विधि अनुसार साधना करता है (च) तथा (आद्यम्) अन्त समय में पूर्ण परमात्मा के (परम्,स्थानम्) उत्तम लोक–सतलोक को (उपैति) प्राप्त होता है। (28)

केवल हिन्दी अनुवाद : साधक इस पूर्वोक्त रहस्य को तत्वसे जानकर वेदोंके पढ़नेमें तथा यज्ञ तप और दानादिके करनेमें जो पुण्यफल कहा है उस सबको निःसन्देह मुझ में त्याग कर वेदों से आगे वाला ज्ञान जानकर शास्त्र विधि अनुसार साधना करता है तथा अन्त समय में पूर्ण परमात्मा के उत्तम लोक–सतलोक को प्राप्त होता है। (28)

(इति अध्याय आठवाँ)

❑❑❑

❋ नौवां अध्याय ❋

।। सारांश।।

अध्याय 9 के श्लोक 1, 2 में कहा है कि सब ज्ञानों का रहस्य युक्त ज्ञान तुझे कहता हूँ कि जिसे जान कर इनसान अशुभ कर्म त्याग देता है अर्थात् अशुभ कर्मों से मुक्त हो जाता है।

।। पूर्ण परमात्मा ही सर्व जीवों का आधार।।

अध्याय 9 के श्लोक 3 से 6 में कहा है कि जो नियम है यदि उसके आधार पर साधक साधना नहीं करता वह जन्म-मरण के चक्र में रहता है। फिर कहा है कि ये सर्व प्राणी उस परमात्मा के आधार हैं परंतु मैं इनसे न्यारा (काल लोक में) हूँ क्योंकि काल इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में अलग से रहता है तथा ब्रह्म लोक में भी महाब्रह्मा-महाविष्णु तथा महाशिव रूप में भी गुप्त तथा भिन्न रहता है तथा वास्तव में यहाँ सर्व प्राणियों को वह पूर्ण परमात्मा माया द्वारा व्यवस्थित रखता है। मैं (काल) प्राणियों में नहीं हूँ। जैसे वायु आकाश में ठहराई है वैसे ही जीव उस परमात्मा में अपने कर्माधार पर उसी की (शक्ति) माया द्वारा व्यवस्थित हैं। गीता अध्याय 13 श्लोक 17 तथा अध्याय 18 श्लोक 61 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि पूर्ण परमात्मा सर्व प्राणियों के हृदय में विशेष रूप से स्थित है। वही सर्व प्राणियों को कर्माधार से यन्त्र की तरह भ्रमण कराता है।

।। ब्रह्म (काल) उपासक का जन्म-मरण निश्चित है।।

अध्याय 9 के श्लोक 7 में स्पष्ट है पहले तो काल भगवान कह रहा है कि मेरे उपासक का जन्म-मरण नहीं होता। अब श्लोक 7 में कहता है कि अर्जुन कल्पों के अंत में सर्व प्राणी मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं। (अर्थात नष्ट हो जाते हैं)। कल्पों के प्रारम्भ में उनको फिर रचता हूँ। इससे स्वसिद्ध है कि कोई भी प्राणी मुक्त नहीं। अध्याय 8 के श्लोक 16 में प्रमाण है कि ब्रह्मलोक से लेकर सब (ब्रह्मा-शिव-तथा अन्य लोक) लोक नाशवान हैं तथा पूर्व अनुवाद कर्त्ताओं ने लिखा है कि मुझे प्राप्त होकर पुर्नजन्म नहीं होता और काल प्राप्त हो नहीं सकता। (चूंकि अध्याय 11 के श्लोक 47 और 48 में प्रत्यक्ष है कि किसी भी साधना से मुझे प्राप्त नहीं हो सकता) इसलिए सर्व प्राणियों की मुक्ति असम्भव। इसलिए अध्याय 7 के श्लोक 18 में अनुत्तमम् गतिम् घटिया से घटिया मुक्ति कही है।

।। प्रकृति व ब्रह्म (काल) से प्राणियों की उत्पत्ति।।

अध्याय 9 के श्लोक 8 में कहा है कि अपनी प्रकृति को अंगीकार (सहवास) करके स्वभाव बल (मन द्वारा वासनाओं) से परतन्त्र (वश) हुए इन सम्पूर्ण प्राणियों को बार-बार रचता हूँ। अध्याय 9 के श्लोक 9 में कहा है कि मैं (ब्रह्म) कर्मों के वश नहीं हूँ। (चूंकि कर्म ब्रह्म से उत्पन्न हैं। अध्याय 3 के श्लोक 14,15 में।) अध्याय 9 के श्लोक 10 में कहा है - हे अर्जुन! मेरे आधीन (पत्नी रूप में) प्रकृति चराचर सहित जगत् को उत्पन्न करती है। इस प्रकार यह जन्म-मरण चक्र चलता रहता है।

।। ब्रह्म (काल) कभी स्थूल शरीर में आकार में नहीं आता।।

अध्याय 9 के श्लोक 11 में कहा है कि जो मूर्ख लोग पूर्ण परमात्मा तथा मेरे परम भाव को

{काल का परम भाव अध्याय 7 के श्लोक 24 में है कि मेरे घटिया (काल) भाव तथा मैं कभी आकार में नहीं आता। यह मेरा अविनाशी (अटल) नियम (भाव) है कि मैं कभी आकार में शरीर धारण करके नहीं आता} नहीं जानते। मुझे मनुष्य शरीर धारण करने वाला तुच्छ समझते हैं अर्थात् मैं स्थूल शरीर धारी श्री कृष्ण नहीं हूँ।

भावार्थ :- तत्वज्ञान के अभाव से मूर्ख प्राणी मुझे सर्व प्राणियों का प्रभु मानते हैं। मैं महेश्वर नहीं हूँ, महेश्वर तो पूर्ण परमात्मा है। जो गीता अध्याय 15 श्लोक 4 व 16, 17, गीता अध्याय 18 श्लोक 3,8,9,10 में वर्णन है तथा मुझे शरीर धारण करने वाला अवतार रूप में श्री कृष्ण समझ रहा है, मैं श्री कृष्ण नहीं हूँ। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में तथा गीता अध्याय 8 श्लोक 20 से 22 में दोनों (ब्रह्म तथा पूर्ण ब्रह्म) को अव्यक्त बताया है तथा विस्तृत वर्णन है। उपरोक्त मूर्खों का विवरण निम्न श्लोक में भी दिया है कि वे कहने से भी नहीं मानते, अपनी जिद्द के कारण मुझे सर्वेश्वर-महेश्वर व श्री कृष्ण ही मानते रहते हैं। यदि कोई तत्वदर्शी संत समझाएगा की पूर्ण परमात्मा कोई और है तथा श्री कृष्ण जी ने गीता जी नहीं बोला तथा यह (काल) महेश्वर नहीं है। वे मूर्ख नहीं मानते।

विशेष :-- गीता 9 श्लोक 11 का अनुवाद अन्य अनुवाद कर्ता ने किया है उस में प्रथम पंक्ति के दूसरे अक्षर ''माम्'' को द्वितिय पंक्ति के ''भूत महेश्वरम्'' से जोड़ा हो जो व्याकरण दृष्टिकोण से न्याय संगत नहीं है क्योंकि ''भूत महेश्वरम्'' के साथ ''मम्'' शब्द लिखा है अन्य अनुवाद कर्ताओं ने गीता ज्ञान दाता को सम्पूर्ण प्राणियों का महान् ईश्वर किया है। यदि ऐसा ही माना जाए तो पाठक जन कृप्या इसका भावार्थ यह जाने की ब्रह्म कह रहा है कि मैं अपने इक्कीस ब्रह्मण्डों के सर्व प्राणियों का महान ईश्वर अर्थात् प्रमुख हूँ। वास्तव में उपरोक्त अनुवाद जो मुझ दास द्वारा किया है। वह यथार्थ है।

।। ब्रह्म (काल) के उपासक उसी का आहार ।।

अध्याय 9 के श्लोक 12 में कहा है कि आसुरी स्वभाव (वृत्ति) वाले व्यर्थ कामों (तास खेलना, शराब पीना, व्यर्थ की बातें करना, हुक्का पीना, मांस खाना, निन्दा करना, सिनेमा देखना, चोरी-जारी करना आदि) में तथा व्यर्थ आशाओं में व्यर्थ ज्ञान वाले मूर्ख राक्षसी स्वभाव वश रहते हैं।

अध्याय 9 के श्लोक 13 में वर्णन है कि जो भक्त आत्मा हैं वे मुझे प्राणियों का मालिक अविनाशी (जैसा अध्याय 15 के श्लोक 18 में कहा है कि मैं केवल स्थूल शरीर के प्राणियों तथा जीवात्मा से उत्तम हूँ। इसलिए लोक व वेदों में पुरुषोत्तम प्रसिद्ध हूँ परंतु वास्तव में अविनाशी तो कोई और ही है। गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 16 से 18 में) जान कर अनन्य मन (आन उपासना त्याग कर शास्त्रानुकूल साधना और तीनों गुणों से ऊपर उठ कर केवल एक अक्षर ''ॐ'' का जाप करते हुए) से मेरा भजन करते हैं। अध्याय 9 के श्लोक 14 में बताया है कि ऐसे सुचारू भक्त (दृढ़ नियमों वाले) निरन्तर मेरे गुणों व नाम का कीर्तन करते हुए तथा मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करते हैं और मुझको प्रणाम करते हैं। सदा मेरे ध्यान में लगे हुए भिन्न-2 प्रकार से मेरी उपासना करते हैं। अध्याय 9 के श्लोक 17 में कहा है कि मैं सब जगत का धारण कर्त्ता, माता-पिता-दादा, वेदों में जानने योग्य पवित्र ॐ (ओंकार) मन्त्र, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद मैं ही हूँ अर्थात् ब्रह्म ज्ञान व उपासना ही तीनों वेदों में है। चौथा अथर्ववेद है जो सृष्टि रचना की जानकारी देता है। अध्याय 9 के श्लोक 18 में कहा है कि मेरे इक्कीस ब्रह्मण्डों में मैं ही स्वामी, स्थिति धारण कर्त्ता, साक्षी निवास स्थान, शरण योग्य परोपकारी, उत्पत्ति व विनाश कर्त्ता यह

अविनाशी विधान का कारण भी मैं ही हूँ। अध्याय 9 के श्लोक 19 में कहा है कि मैं ही गर्मी - वर्षा, आकर्षण व बरसात, मैं ही अमृत और मृत्यु सत-असत् हूँ। अध्याय 9 के श्लोक 15 से 19 तक भगवान काल (ब्रह्म) कह रहा है ज्ञानी जन अपनी ज्ञान विधि से पूजते हैं और भी बहुत प्रकार से मुझ विराट रूप को पूजते हैं। मैं ही यज्ञ, स्वधा, औषधि, मन्त्र, घृत, अग्नि, हवन, क्रिया सब कुछ मैं (काल ने ही लगा रखी है परंतु मिलु नहीं) ही हूँ।

सार :- भावार्थ :-- अध्याय 9 श्लोक सं. 11-12 में तो उन श्रद्धालुओं का वर्णन है जो पूर्ण परमात्मा तथा ब्रह्म को तत्व से नहीं जानते वे तो अन्य देवताओं की साधना स्वभाव वश करते हैं। अध्याय 9 श्लोक सं. 13 (जिसका सम्बन्ध अध्याय 7 श्लोक 17-18 से है कि ज्ञानी मुझे अच्छा है ज्ञानी को मैं अच्छा लगता हूँ परन्तु वे मेरी अनुत्तम गति में ही आश्रित हैं) में कहा है कि जो मुझे तथा उस पूर्ण परमात्मा को जानते हैं वे फिर मुझे भजते हैं क्योंकि गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा को प्राप्ति का तीन मन्त्र का स्मरण कहा है। ओम्-तत्-सत् ओम् जाप ब्रह्म का है। इस अध्याय 9 श्लोक 13 में उसी भाव से कहा है कि पूर्ण परमात्मा और मुझे (ब्रह्म को) तत्व से जानकर महात्मा जन मुझे भजते हैं। उनको अन्य मन्त्रों (तत् व सत्) का ज्ञान नहीं होता। इसलिए अपने आप निकाले निष्कर्ष से (दृढव्रता:) दृढता के साथ कोई ज्ञान यज्ञ अर्थात् स्तूति आदि (कीर्तन) करके कोई विराट रूप (सर्व संसार परमात्मा ही है) जानकर साधना करते हैं। उनके लिए सर्वसवा मैं ही हूँ। अध्याय 9 श्लोक 20 से 24 में अध्याय 9 श्लोक 11 से 19 का निष्कर्ष दिया है कि वे दोनों प्रकार के साधक (अन्य देवताओं को भजने वाले तथा मुझे वेदों के आधार से भजने वाले जिनको वास्तविक मन्त्र प्राप्त नहीं हुआ) वे दोनों ही विनाश को प्राप्त होते हैं। मोक्ष प्राप्त नहीं करते।

भगवान काल कह रहा है कि जो भी उपासक वेदों के ज्ञान आधार से शास्त्र अनुकूल साधना करता है उनके लिए उपास्य मैं (काल) ही हूँ। परंतु अंत में सर्व को खाऊँगा। किसी को नहीं छोडूं। फिर कर्माधार पर स्वर्ग-नरक, काल द्वारा व्यस्थित विधान अनुसार चारों मुक्ति फिर चौरासी लाख जूनियों में डालूँगा। प्रमाण के लिए देखें गीता जी के अध्याय 11 के श्लोक 21 में जिसमें अर्जुन आँखों देखा हाल कह रहा है। जब काल भगवान ने अपना वास्तविक विराट रूप दिखाया। उसमें अर्जुन देख रहा है तथा कह रहा है कि भगवन आप तो देवताओं के समूह (झुण्ड के झुण्ड) को भी खा रहे हो। कुछ भयभीत हो कर हाथ जोड़ कर आपके नाम व गुणों का कीर्तन कर रहे हैं। महर्षि व सिद्ध समुदाय कल्याण हो! (बख्शदो-2) कल्याण हो! कहकर वेदों के उत्तम-2 स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं, आप उन्हें भी खा रहे हैं। फिर गीता जी के अध्याय 11 के श्लोक 32 में काल भगवान कह रहा है कि मैं सबको खाने के लिए प्रकट हुआ हूँ तथा बढ़ा हुआ काल हूँ, किसी को नहीं छोडूँ।

।। पवित्र वेदों अनुसार साधना का परिणाम केवल स्वर्ग-महास्वर्ग प्राप्ति, मुक्ति नहीं ।।

पवित्र गीता अध्याय 9 के श्लोक 20,21 में कहा है कि जो मनोकामना (सकाम) सिद्धि के लिए मेरी पूजा तीनों वेदों में वर्णित साधना शास्त्र अनुकूल करते हैं वे अपने कर्मों के आधार पर स्वर्ग में आनन्द मना कर फिर जन्म-मरण में आ जाते हैं अर्थात् यज्ञ चाहे शास्त्रानुकूल भी हो उनका एक मात्र लाभ सांसारिक भोग, स्वर्ग, और फिर नरक व चौरासी लाख जूनियाँ। जब तक तीनों मंत्र (ओ३म तथा तत् व सत् सांकेतिक) पूर्ण संत से प्राप्त नहीं होते। अध्याय 9 के श्लोक 22 में कहा है

कि जो निष्काम भाव से मेरा चिन्तन करते हुए उस पूर्ण परमात्मा की शास्त्रानुकूल पूजा करते हैं, उनकी पूजा की रक्षा मैं ही करता हूँ।

।। वेदों अनुसार साधना न करने वाले पूर्ण मुक्त नहीं।।

पवित्र गीता अध्याय 9 के श्लोक 23,24 में कहा है कि जो व्यक्ति अन्य देवी-देवताओं को पूजते हैं वे भी मेरी पूजा ही कर रहे हैं। परंतु उनकी यह पूजा अविधिपूर्वक है (अर्थात् देवी-देवताओं को नहीं पूजना चाहिए) क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता व स्वामी मैं ही हूँ। वे भक्त मुझे अच्छी तरह नहीं जानते। इसलिए पतन को प्राप्त होते हैं जिससे नरक व चौरासी लाख जूनियों का कष्ट। सदा बना रहता है जैसे गीता अध्याय 3 श्लोक 14 - 15 में कहा है कि सर्व यज्ञों में प्रतिष्ठित अर्थात् सम्मानित, जिसको यज्ञ समर्पण की जाती है वह परमात्मा (सर्व गतम् ब्रह्म) पूर्ण ब्रह्म है। वही कर्माधार बना कर सर्व प्राणियों को प्रदान करता है। परन्तु पूर्ण सन्त न मिलने तक सर्व यज्ञों का भोग (आनन्द) काल (मन रूप में) ही भोगता है, इसलिए कह रहा है कि मैं सर्व यज्ञों का भोक्ता व स्वामी हूँ।

।। श्राद्ध निकालने (पितर पूजने) वाले पितर बनेंगे, मुक्ति नही।।

गीता अध्याय 9 के श्लोक 25 में कहा है कि देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं, भूतों को पूजने (पिण्ड दान करने) वाले भूतों को प्राप्त होते हैं अर्थात् भूत बन जाते हैं, शास्त्रानुकूल (पवित्र वेदों व गीता अनुसार) पूजा करने वाले मुझको ही प्राप्त होते हैं अर्थात् काल द्वारा निर्मित स्वर्ग व महास्वर्ग आदि में कुछ ज्यादा समय मौज कर लेते हैं।

विशेष :- जैसे कोई तहसीलदार की नौकरी (सेवा-पूजा) करता है तो वह तहसीलदार नहीं बन सकता। हाँ उससे प्राप्त धन से रोजी-रोटी चलेगी अर्थात् उसके आधीन ही रहेगा। ठीक इसी प्रकार जो जिस देव (श्री ब्रह्मा देव, श्री विष्णु देव तथा श्री शिव देव अर्थात् त्रिदेव) की पूजा (नौकरी) करता है तो उन्हीं से मिलने वाला लाभ ही प्राप्त करता है। त्रिगुणमई माया अर्थात् तीनों गुण (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी) की पूजा का निषेध पवित्र गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तथा 20 से 23 तक में भी है। इसी प्रकार कोई पितरों की पूजा (नौकरी-सेवा) करता है तो पितरों के पास छोटा पितर बन कर उन्हीं के पास कष्ट उठाएगा। इसी प्रकार कोई भूतों (प्रेतों) की पूजा (सेवा) करता है तो भूत बनेगा क्योंकि सारा जीवन जिसमें आशक्तता बनी है अन्त में उन्हीं में मन फंसा रहता है। जिस कारण से उन्हीं के पास चला जाता है। कुछेक का कहना है कि पितर-भूत-देव पूजाऐं भी करते रहेंगे, आप से उपदेश लेकर साधना भी करते रहेंगे। ऐसा नहीं चलेगा। जो साधना पवित्र गीता जी में व पवित्र चारों वेदों में मना है वह करना शास्त्र विरुद्ध हुआ। जिसको पवित्र गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में मना किया है कि जो शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण (पूजा) करते हैं वे न तो सुख को प्राप्त करते हैं न परमगति को तथा न ही कोई कार्य सिद्ध करने वाली सिद्धि को ही प्राप्त करते हैं अर्थात् जीवन व्यर्थ कर जाते हैं। इसलिए अर्जुन तेरे लिए कर्तव्य (जो साधना के कर्म करने योग्य हैं) तथा अकर्तव्य (जो साधना के कर्म नहीं करने योग्य हैं) की व्यवस्था (नियम में) में शास्त्र ही प्रमाण हैं। अन्य साधना वर्जित हैं।

इसी का प्रमाण मार्कण्डे पुराण (गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित पृष्ठ 237 पर है, जिसमें मार्कण्डे पुराण तथा ब्रह्म पुराणांक इक्ट्ठा ही जिल्द किया है) में भी है कि एक रूची नाम का

साधक ब्रह्मचारी रह कर वेदों अनुसार साधना कर रहा था। जब वह 40 (चालीस) वर्ष का हुआ तब उस को अपने चार पूर्वज जो शास्त्र विरुद्ध साधना करके पितर बने हुए थे तथा कष्ट भोग रहे थे, दिखाई दिए। पितरों ने कहा कि बेटा रूची शादी करवा कर हमारे श्राद्ध निकाल, हम तो दुःखी हो रहे हैं। रूची ऋषि ने कहा पित्रमहो वेद में कर्म काण्ड मार्ग(श्राद्ध, पिण्ड भरवाना आदि) को मूर्खों की साधना कहा है। फिर आप मुझे क्यों उस गलत (शास्त्र विधि रहित) साधना पर लगा रहे हो। पितर बोले बेटा यह बात तो तेरी सत्य है कि वेद में पितर पूजा, भूत पूजा, देवी-देवताओं की पूजा (कर्म काण्ड) को अविद्या ही कहा है इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है। इसी उपरोक्त मार्कण्डे पुराण में इसी लेख में पितरों ने कहा कि फिर पितर कुछ तो लाभ देते हैं।

विशेष :- यह अपनी अटकलें पितरों ने लगाई है, वह हमने नहीं पालन करना, क्योंकि पुराणों में आदेश किसी ऋषि विशेष का है जो पितर पूजने, भूत या अन्य देव पूजने को कहा है। परन्तु प्रभु का आदेश नहीं है। इसलिए किसी संत या ऋषि के कहने से प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन करने से सजा के भागी होंगे।

एक समय एक व्यक्ति की दोस्ती एक पुलिस थानेदार से हो गई। उस व्यक्ति ने अपने दोस्त थानेदार से कहा कि मेरा पड़ौसी मुझे बहुत परेशान करता है। थानेदार (S.H.O.) ने कहा कि मार लट्ठ, मैं आप निपट लूंगा। थानेदार दोस्त की आज्ञा का पालन करके उस व्यक्ति ने अपने पड़ौसी को लट्ठ मारा, सिर में चोट लगने के कारण पड़ौसी की मृत्यु हो गई। उसी क्षेत्र का अधिकारी होने के कारण वह थाना प्रभारी अपने दोस्त को पकड़ कर लाया, कैद में डाल दिया तथा उस व्यक्ति को मृत्यु दण्ड मिला। उसका दोस्त थानेदार कुछ मदद नहीं कर सका। क्योंकि राजा का संविधान है कि यदि कोई किसी की हत्या करेगा तो उसे मृत्यु दण्ड प्राप्त होगा। उस नादान व्यक्ति ने अपने दोस्त दरोगा की आज्ञा मान कर राजा का संविधान भंग कर दिया। जिससे जीवन से हाथ धो बैठा। ठीक इसी प्रकार पवित्र गीता जी व पवित्र वेद यह प्रभु का संविधान है। जिसमें केवल एक पूर्ण परमात्मा की पूजा का ही विधान है, अन्य देवताओं - पितरों - भूतों की पूजा करना मना है। पुराणों में ऋषियों (थानेदारों) का आदेश है। जिनकी आज्ञा पालन करने से प्रभु का संविधान भंग होने के कारण कष्ट पर कष्ट उठाना पड़ेगा। इसलिए आन उपासना पूर्ण मोक्ष में बाधक है।

मेरे पूज्य गुरुदेव स्वामी रामदेवानन्द जी लगभग सोलह वर्ष की आयु में पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति के लिए अचानक घर त्याग कर निकल गए। प्रतिदिन पहनने वाले वस्त्रों को अपने ही खेतों के निकट घने जंगल में किसी मृत पशु की अस्थियों के पास डाल गए। शाम को घर न पहुँचने के कारण घर वालों ने जंगल में तलाश की। रात्री का समय था। कपड़े पहचान कर दुःखी मन से पशु की अस्थियों को बच्चे की अस्थियाँ जान कर उठा लाए तथा यह सोचा कि बच्चा जंगल में चला गया, किसी हिंसक जानवर ने खा लिया। अन्तिम संस्कार कर दिया। सर्व क्रियाऐं की, तेरहवीं - बरसी आदि की तथा श्राद्ध भी निकालते रहे। लगभग 104 वर्ष की आयु प्राप्त होने के उपरान्त स्वामी जी अचानक अपने गाँव बड़ा पैंतावास जिला भिवानी, त. चरखीदादरी, हरयाणा में पहुँच गए। स्वामी जी का बचपन का नाम श्री हरिद्वारी जी था तथा पवित्र ब्राह्मण कुल में जन्म था। मुझ दास को पता चला तो मैं भी दर्शनार्थ पहुँच गया। स्वामी जी की भाभी जी जो लगभग 92 वर्ष की आयु की थी। मैंने उस वृद्धा से पूछा कि हमारे गुरु जी के घर त्याग जाने के उपरान्त क्या महसूस किया? उस वृद्धा ने बताया कि मेरा विवाह हुआ तब मुझे बताया गया कि इनका एक भाई हरिद्वारी था जो किसी हिंसक जानवर ने जंगल में खा लिया था। उसके श्राद्ध निकाले जा रहे हैं। मुझे भी

इनके श्राद्ध निकालने को कहा गया। वृद्धा ने बताया कि 70 श्राद्ध तो मैं अपने हाथों निकाल चुकी हूँ। जब कभी फसल अच्छी नहीं होती या कोई घर का सदस्य बिमार हो जाता तो अपने पुरोहित (गुरु जी) से कारण पूछते तो वह कहा करता कि हरद्वारी पितर बना है, वह तुम्हें दुःखी कर रहा है। श्राद्धों के निकालने में कोई अशुद्धि रही है। अब की बार सर्व क्रिया मैं स्वयं अपने हाथों से करूंगा। पहले मुझे समय नहीं मिला था, क्योंकि एक ही दिन में कई जगह श्राद्ध क्रियाऐं करने जाना पड़ा। इसलिए बच्चे को भेजा था। तब तक कुछ भेंट चढ़ाओ ताकि उसे शान्त किया जाए। तब उसे 21 या 51 जो भी कहता था डरते भेंट करते थे, फिर श्राद्धों के समय गुरु जी स्वयं श्राद्ध करते थे। तब मैंने कहा माता जी अब तो छोड़ दो इस गीता जी विरुद्ध साधना को, नहीं तो आप भी प्रेत बनोगी। गीता अध्याय 9 श्लोक 25 सुनाया। तब वह वृद्धा कहने लगी गीता मैं भी पढती हूँ। दास ने कहा आपने पढा है, समझा नहीं। आगे से तो बन्द कर दो इस नादान साधना को। वृद्धा ने उत्तर दिया न भाई, कैसे छोड़ दें श्राद्ध निकालना, यह तो सदियों पुरानी (लाग) परम्परा है। यह दोष भोली आत्माओं का नहीं है। यह दोष मुर्ख गुरुओं (नीम हकीमों) का है, जिन्होंने अपने पवित्र शास्त्रों को समझे बिना मनमाना आचरण (पूजा का मार्ग) बता दिया। जिस कारण न तो कोई कार्य सिद्ध होता है, न परमगति तथा न कोई सुख ही प्राप्त होता है। प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24।

अब दास की प्रार्थना है कि शिक्षित वर्ग अवश्य ध्यान दें तथा शास्त्र विधि अनुसार साधना करके पूर्ण परमात्मा के सनातन परमधाम (शाश्वतम् स्थानम्) अर्थात् सत्यलोक को प्राप्त करें, जिससे पूर्ण मोक्ष तथा परम शान्ति प्राप्त होती है। (गीता अध्याय 18 श्लोक 62) इसके लिए तत्वदर्शी संत की तलाश करो। गीता अध्याय 4 श्लोक 34।

एक श्रद्धालु ने कहा कि मैं आप से उपदेश लेकर आप द्वारा बताई साधना भी करता रहूँगा तथा श्राद्ध भी निकालता रहूँगा तथा अपने घरेलू देवी-देवताओं को भी उपरले मन से पूजता रहूँगा। इसमें क्या दोष है।

दास की प्रार्थना :- संविधान की किसी भी धारा का उल्लंघन कर देने पर सजा अवश्य मिलेगी। इसलिए पवित्र गीता जी व पवित्र चारों वेदों में वर्णित व वर्जित विधि के विपरित साधना करना व्यर्थ है (प्रमाण पवित्र गीता जी अध्याय 16 श्लोक 23-24 में)। यदि कोई कहे कि मैं कार में पैंचर उपरले मन से कर दूंगा। नहीं, राम नाम की गाड़ी में पैंचर करना मना है। ठीक इसी प्रकार शास्त्र विरुद्ध साधना हानिकारक ही है।

एक श्रद्धालु ने कहा कि मैं और कोई विकार (मदिरा-मास आदि सेवन) नहीं करता। केवल तम्बाखु (बीड़ी-सिगरेट-हुक्का) सेवन करता हूँ। आपके द्वारा बताई पूजा व ज्ञान अतिउत्तम है। मैंने गुरु जी भी बनाया है, परन्तु यह ज्ञान आज तक किसी संत के पास नहीं है, मैं 25 वर्ष से घूम रहा हूँ तथा तीन गुरुदेव बदल चुका हूँ। कृप्या मुझे तम्बाखु सेवन की छूट दे दो, शेष सर्व शर्ते मंजूर हैं। तम्बाखु से भक्ति में क्या बाधा आती है?

दास की प्रार्थना :- दास ने प्रार्थना की कि अपने शरीर को ऑक्सीजन की आवश्यकता है। तम्बाखु का धुआँ कार्बन-डाई-ऑक्साइड है जो फेफड़ों को कमजोर व रक्त दूषित करता है। मानव शरीर प्रभु प्राप्ति व आत्म कल्याण के लिए ही प्राप्त हुआ है। इसमें परमात्मा पाने का रस्ता सुष्मना नाड़ी से प्रारम्भ होता है। जो नाक के दोनों छिद्र हैं उन्हें दायें को ईड़ा तथा बाएं को पिंगुला कहते हैं। इन दोनों के मध्य में सुष्मणा नाड़ी है जिसमें एक छोटी सुई (Needel) में धागा पिरोने वाले छिद्र

के समान द्वार होता है, जो तम्बाखु के धुऐं से बंध हो जाता है। जिससे प्रभु प्राप्ति के मार्ग में अवरोध हो जाता है। यदि प्रभु पाने का रस्ता ही बन्द हो गया तो मानव शरीर व्यर्थ हुआ। इसलिए प्रभु भक्ति करने वाले साधक को प्रत्येक नशीले व अखाद्य (मांस आदि) पदार्थों का सर्वदा निषेध है।

एक श्रद्धालु ने कहा कि मैं तम्बाखु प्रयोग नहीं करता। मांस व मदिरा सेवन जरूर करता हूँ। इससे भक्ति में क्या बाधा है? यह तो खाने - पीने के लिए ही बनाई है तथा पेड़-पौधों में भी तो जीव है, वह खाना भी तो मांस भक्षण तुल्य ही है।

दास की प्रार्थना :- यदि कोई हमारे माता-पिता-भाई-बहन व बच्चों आदि को मार कर खाए तो कैसा लगे? ''जैसा दर्द आपने होवै, वैसा जान बिराने। कहै कबीर वे जाऐं नरक में, जो काटें शिश खुरांनें'' जो व्यक्ति पशुओं को मारते समय खुरों तथा शीश को बेरहमी से काट कर मांस खाते हैं वे नरक के भागी होंगे। जैसा दुःख अपने बच्चों व सम्बन्धियों की हत्या का होता है ऐसा ही दूसरे को जानना चाहिए। रही बात पेड़-पौधों को खाने की। इनको खाने का प्रभु का आदेश है तथा ये जड़ जूनी के हैं। अन्य चेतन प्राणियों का वध प्रभु आदेश विरुद्ध है, इसलिए अपराध (पाप) है।

मदिरा सेवन भी प्रभु आदेश नहीं है, परन्तु स्पष्ट मना है तथा मानव मात्र को बर्बाद करने का है। शराब पान किया हुआ व्यक्ति कुछ भी गलती कर सकता है। मदिरा धन - तन व पारिवारिक शान्ति की महा शत्रु है। प्यारे बच्चों के भावी चरित्र पर कुप्रभाव पड़ता है। मदिरा पान करने वाला व्यक्ति कितना ही नेक हो परन्तु उसकी न तो इज्जत रहती है तथा न ही विश्वास।

एक समय यह दास एक गाँव में सतसंग करने गया हुआ था। उस दिन नशा निषेध पर सतसंग किया। सतसंग के उपरान्त एक ग्यारह वर्षीय कन्या फूट-फूट कर रोने लगी। पूछने पर उस बेटी ने बताया कि महाराज जी मेरे पिता जी पालम हवाई अड्डे पर बढ़िया नौकरी करते हैं। परन्तु सर्व पैसे की शराब पी जाते हैं। मेरी मम्मी के मना करने पर इतना पीटते हैं कि शरीर पर नीले दाग बन जाते हैं। एक दिन मेरे पापा जी मेरी मम्मी को पीटने लगे। मैं अपनी मम्मी के ऊपर गिर कर बचाव करने लगी तो मुझे भी पीटा। मेरा होंठ सूज गया। दस दिन में ठीक हुआ। मेरी मम्मी जी हमें छोड़ कर मेरे मामा जी के घर चली गई। छः महीने में मेरी दादी जी जाकर लाई। तब तक हम अपनी दादी जी के पास रही। पापा जी ने दवाई भी नहीं दिलाई। सुबह शीघ्र ही उठकर नौकरी पर चला गया। शाम को शराब पीकर आता। हम तीन बहनें हैं, दो मेरे से छोटी हैं। अब जब पापा जी शाम को आते हैं तो हम तीनों बहनें चारपाई के नीचे छुप जाती हैं।

विचार करों पुण्यात्माओं जिन बच्चों को पिताजी ने सीने से लगाना चाहिए था तथा बच्चे पिता जी के घर आने की राह देखते हैं कि पापा जी घर आयेंगे, फल लायेंगे। आज इस मानव समाज की दुश्मन शराब ने क्या घर घाल दिए। शराबी व्यक्ति अपनी तो हानि करता है साथ में बहुत व्यक्तियों की आत्मा दुखाने का भी पाप सिर पर रखता है। जैसे पत्नी के दुःख में उसके माता-पिता, बहन-भाई दुःखी, फिर स्वयं के माता-पिता, भाई-बहन, दादा-दादी आदि परेशान। एक शराबी व्यक्ति आस पास के भद्र व्यक्तियों की अशान्ति का कारण बनता है। क्योंकि घर में झगड़ा करता है। पत्नी व बच्चों की चिल्लाहट सुनकर पड़ौसी बीच-बचाव करें तो शराबी गले पड़ जाऐं, नहीं करें तो नेक व्यक्तियों को नींद नहीं आए। इस दास से उपदेश लेने के उपरान्त प्रतिदिन शराब पीने वाले लगभग पचास हजार व्यक्तियों ने सर्व नशीले पदार्थ व मांस भक्षण पूर्ण रूप से त्याग दिया है तथा जिस समय शाम को शराब प्रेतनी का नृत्य होता था अब वे पुण्यात्मायें अपने बच्चों सहित बैठकर संध्या आरती करते हैं। हरियाणा प्रदेश व निकटवर्ती प्रान्तों में लगभग दस हजार गाँवों व शहरों में

आज भी प्रत्येक में चार -पाँच चैम्पियन (एक नम्बर के शराबी) उदाहरण हैं जो सर्व विकारों से रहित होकर अपना मानव जीवन सफल कर रहे हैं। कुछ कहते हैं कि हम इतनी नहीं पीते-खाते, बस कभी ले लेते हैं। जहर तो थोड़ा ही बुरा है, जो भक्ति व मुक्ति में बाधक है।

मान लिजिए दो किलो ग्राम घी का हलवा बनाया (सतभक्ति की)। फिर 250 ग्राम बालु रेत (तम्बाखु-मास-मदिरा सेवन व आन उपासना कर ली) भी डाल दिया। वह तो किया कराया व्यर्थ हुआ। इसलिए पूर्ण परमात्मा (परम अक्षर ब्रह्म) की पूजा पूर्ण संत से प्राप्त करके आजीवन मर्यादा में रह कर करते रहने से ही पूर्ण मोक्ष लाभ होता है। अध्याय 9 के श्लोक 26,27,28 का भाव है कि जो भी आध्यात्मिक या सांसारिक काम करे, सब मेरे मतानुसार वेदों में वर्णित पूजा विधि अनुसार ही कर्म करे, वह उपासक मुझ (काल) से ही लाभान्वित होता है। इसी का वर्णन इसी अध्याय के श्लोक 20,21 में किया है। अध्याय 9 के श्लोक 29 में भगवान कहते हैं कि मुझे किसी से द्वेष या प्यार नहीं है। परंतु तुरंत ही कह रहे हैं कि जो मुझे प्रेम से भजते हैं वे मुझे प्यारे हैं तथा मैं उनको प्रिय हूँ अर्थात् मैं उनमें और वे मेरे में हैं। राग व द्वेष का प्रत्यक्ष प्रमाण है - जैसे प्रहलाद परमात्मा के आश्रित थे तथा हिरणाकशिपु परमात्मा से द्वेष करता था। तब नृसिंह रूप धार कर भगवान ने अपने प्यारे भक्त की रक्षा की तथा राक्षस हिरणाकशिपु की आँतें निकाल कर समाप्त किया। प्रहलाद से प्रेम तथा हिरणाकशिपु से द्वेष प्रत्यक्ष सिद्ध है।

।। अति दुराचारी भी भक्ति करने वाला महात्मा के समान है।।

अध्याय 9 के श्लोक 30,31 में कहा है कि चाहे कितना ही अति दुराचारी (वैश्या या वैश्या गमन करने वाला) व्यक्ति है, यदि वह परमात्मा को अन्तःकरण (हृदय) से चाहता है तो वह भी महात्मा मानने योग्य है। गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि -

गरीब, कुष्टी होवे संत, बन्दगी कीजिए। वैश्या के विश्वास, चरण चित्त दीजिए।।

कबीर साहेब कहते हैं --

कबीर, आग पराई आपनी, हाथ दिए जल जाय। नारि पराई आपनी, परसे सर्वस जाय।।

एक समय एक औरत को किसी गाँव में पीटा जा रहा था। उसी समय एक महात्मा जी वहां आए। उन्होंने उस अबला का कसूर (दोष) पूछा तो पता चला कि यह दुराचारिणी (व्याभिचारिणी) है। तब महात्मा जी ने कहा कि मैं बताता हूँ इसको कैसे सजा देनी है। सब ने कहा बताओ दाता। महात्मा जी ने कहा सब एक-एक पत्थर अपने-2 हाथ में उठाओ तथा बारी-बारी इसको मारना है। परंतु पत्थर वह मारे जिसने यह पाप कभी भी न किया हो और आगे कभी भी न करे। यदि ऐसा हो, तो मारे, नहीं तो खैर नहीं है। देखते ही देखते सभी के हाथों से पत्थर छूट गए तथा अपने-अपने घर को चले गए।

कबीर, बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिला कोए। जब दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोए।।

अध्याय 9 के श्लोक 31 में कहा है कि ऐसा व्यक्ति सतसंग सुन कर जल्दी ही सुधर जाता है और फिर सुचारू रूप से भक्ति करके मुक्ति का प्रयत्न करता है। परन्तु तत्व ज्ञान के अभाव से वह मेरी साधना पर आश्रित रहता है जिस कारण से उसे बहुत समय अर्थात् एक कल्प तक शान्ति प्राप्त होती है। इसलिए उस भक्त की भक्ति नष्ट हो जाती है, क्योंकि पूर्ण मुक्ति तो पूर्ण परमात्मा की भक्ति करने से होती है, उसे गीता बोलने वाला प्रभु कह रहा है कि मैं उस परमेश्वर के तत्वज्ञान को नहीं जानता, उसके लिए उन तत्वदर्शी सन्तों की खोज कर, गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में।

अध्याय 9 के श्लोक 34 में वर्णन है कि स्थिर मन से शास्त्रानुकूल पूजक शास्त्रविधि से भक्ति करने वाला (मद्भक्तै कहलाता) मत-भक्त (शास्त्रानुकूल साधक) बन कर मुझे प्रणाम (आदर) कर इस प्रकार अन्तरात्मा से (मत्परायण) शास्त्रानुकूल साधना पर आश्रित साधक भी मुझे ही प्राप्त होगा। भावार्थ है कि भूत-पितर नहीं बनेगा तथा पूर्ण मुक्त भी नहीं होगा।

अध्याय 9 के श्लोक 32,33,34 में कहा है कि चाहे पापिन स्त्री वैश्या तथा शुद्र भी क्यों न है मेरी भक्ति करने वाला मेरी वाली गति को प्राप्त हो जाता है। फिर पुण्य आत्माओं ब्राह्मण-राजर्षि का तो कहना ही क्या है? पूर्ण मोक्ष के लिए उस पूर्ण परमात्मा का भजन कर मेरा काल लोक तो नाशवान तथा दुःखरूप है यदि इसमें रहना है तो मेरा भजन कर तथा जो मेरे में मन वाला (अनन्य मन से और सर्व देवी-देवताओं की भक्ति तथा तीनों गुणों - ब्रह्मा-विष्णु-शिव की आस्था भी त्याग कर) मेरी भक्ति कर मेरे द्वारा लाभ प्राप्त करेगा अर्थात् शास्त्रानुकूल (वेदों में वर्णित भक्ति विधि के अनुसार) साधना करने वाला भक्त स्वर्ग में अपने पुण्यों को समाप्त करके फिर जन्म-मरण व नीच योनियों (कुत्ता-कुत्तिया, गधा-गधी आदि-2) में कष्ट पर कष्ट उठाएगा। यह भगवान काल (ब्रह्म) की वेदों अनुसार साधना करने का भगवान ज्योति निरंजन द्वारा लाभ दिया जाता है। इसका पूर्ण प्रमाण इसी अध्याय के श्लोक 20,21 में दिया गया है। क्योंकि गीता बोलने वाला प्रभु (काल) कह रहा है कि मेरी पूजा ओ३म नाम जाप की है (गीता अध्याय 8 श्लोक 13) उस पूर्ण परमात्मा की भक्ति ओं-तत्- सत् नाम जाप से करने का निर्देश है (गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में) कोई तत्वदर्शी संत बताएगा, जिससे पूर्ण मोक्ष होगा (गीता अध्याय 4 श्लोक 34)।

अदृश परमात्मा ब्रह्म (काल) की साधना भी मतानुसार (मत्-परायण) अर्थात् जो ब्रह्म भगवान ने अपनी पूजा का विधान बताया है कि आन उपासनाएँ {(देवी-देवताओं की पूजा व उनमें मुख्य तीन देवताओं (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव) की पूजा को भी} त्याग कर केवल एक परमात्मा (ब्रह्म) पर आधारित हो कर अव्याभिचारिणी भक्ति से ब्रह्म पूजा करने वाला ही काल भगवान द्वारा विधान किए फल प्राप्त करेगा। स्वर्ग-नरक, जन्म-मरण चौरासी लाख जूनियों का कष्ट यह काल (ब्रह्म) भगवान का अटल विधान (नियम) है जो शास्त्रों (वेदों, गीता जी आदि) में दिए विचारों को काल भगवान अपना मत (यह मेरा मत है) कहता है। काल ब्रह्म की मुक्ति प्राप्त करके भी जीव सुखी नहीं है क्योंकि स्वयं भगवान (ब्रह्म) कह रहा है कि मेरी (गतिम्) मुक्ति (अनुत्तम) अश्रेष्ठ है। क्योंकि भक्त आत्मा अपने तन-मन- धन व उद्धार मन से ब्रह्म (काल) साधना में जीवन भी खो देता है। यह जानकर कि मैं सुखी (पूर्ण मुक्त) हो जाऊँगा परंतु ऐसा नहीं होता। इसलिए ब्रह्म (काल) भगवान भी स्वयं गीता जी के अध्याय 7 के श्लोक 18 में कहता है कि वे भक्त वैसे तो उद्धार आत्मा हैं परंतु इतनी मेहनत के पश्चात् भी मेरी घटिया मुक्ति को ही प्राप्त होते हैं अर्थात् पूर्ण मुक्त नहीं, पूर्ण सुखी नहीं। इसलिए फिर भगवान कहता है कि अर्जुन तू मेरा बहुत प्रिय है। इसलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62, अध्याय 15 श्लोक 4 आदि-2 में कहा है कि तुझे सही ज्ञान बताता हूँ। तू उस पूर्ण परमात्मा की साधना कर। उसके लिए किसी तत्वदर्शी संत की तलाश कर, फिर जैसे वह पूजा विधि बताए ऐसे साधना करना (गीता अध्याय 4 श्लोक 34)। फिर तेरा जन्म-मरण चौरासी लाख जूनियों का कष्ट पूर्णतया मिट जाएगा। अर्थात् पूर्ण मोक्ष हो जाएगा।

❑❑❑

।।नौवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ नवमोऽध्यायः

अध्याय 9 का श्लोक 1

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।१।

इदम्, तु, ते, गुह्यतमम्, प्रवक्ष्यामि, अनसूयवे,
ज्ञानम्, विज्ञानसहितम्, यत्, ज्ञात्वा, मोक्ष्यसे, अशुभात्।।1।।

अनुवाद : (ते) तुझ (अनसूयवे) दोष-दृष्टिरहित भक्तके लिये (इदम्) इस (गुह्यतमम्) परम गोपनीय (विज्ञानसहितम्) विज्ञानसहित (ज्ञानम्) ज्ञानको पुनः (प्रवक्ष्यामि) भलीभाँति कहूँगा (तु) कि (यत्) जिसको (ज्ञात्वा) जानकर तू (अशुभात्) शास्त्रविरूद्ध अशुभ कर्मोंसे (मोक्ष्यसे) मुक्त हो जाएगा। (1)

अध्याय 9 का श्लोक 2

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।२।

राजविद्या, राजगुह्यम्, पवित्रम्, इदम्, उत्तमम्,
प्रत्यक्षावगमम्, धर्म्यम्, सुसुखम्, कर्तुम्,अव्ययम्।।2।।

अनुवाद : (इदम्) यह ज्ञान (राजविद्या) सब विद्याओंका राजा (राजगुह्रम्) सब गोपनीयोंका राजा (पवित्रम्) अति पवित्र (उत्तमम्) अति उत्तम (प्रत्यक्षावगमम्) प्रत्यक्ष फलवाला (धर्म्यम्) शास्त्रअनुकूल धर्मयुक्त (कर्तुम्) साधन करनेमें (सुसुखम्) सुखदाई और (अव्ययम्) अविनाशी है। (2)

अध्याय 9 का श्लोक 3

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि। ३ ।

अश्रद्दधानाः, पुरुषाः, धर्मस्य, अस्य, परन्तप,
अप्राप्य, माम्, निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि।।3।।

अनुवाद : (परन्तप) हे अर्जुन! (अश्रद्दधानाः) श्रद्धारहित (पुरुषाः) मनुष्य (अस्य) इस उपर्युक्त (धर्मस्य) धर्मके भक्ति मार्ग को (अप्राप्य) न प्राप्त होकर (माम्) मुझ ब्रह्म के (मृत्युसंसार वर्त्मनि) मृत्युलोक चक्रमें (निवर्तन्ते) चक्र लगाते रहते हैं। (3)

अध्याय 9 का श्लोक 4

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः। ४ ।

मया, ततम्, इदम्, सर्वम्, जगत्, अव्यक्तमूर्तिना,

मत्स्थानि, सर्वभूतानि, न, च, अहम्, तेषु, अवस्थितः।।4।।

अनुवाद : (मया) मेरे से तथा (अव्यक्त मूर्तिना) अदृश साकार परमेश्वर से (इदम्)यह (सर्वम् जगत्)सर्व संसार (ततम्) विस्तारित व घेरा हुआ है अर्थात् पूर्ण परमात्मा द्वारा ही रचा गया है तथा वही वास्तव में नियन्तता है। (च) तथा (मत्स्थानि) मेरे अन्तर्गत (सर्वभूतानि) जो सर्व प्राणी हैं (तेषु) उनमें (अहम्) मैं (न अवस्थितः) स्थित नहीं हूँ। क्योंकि काल अर्थात् ज्योति निरंजन ब्रह्म अपने इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में अलग से रहता है तथा प्रत्येक ब्रह्मण्ड में भी महाब्रह्मा, महाविष्णु, महाशिव रूप में भिन्न गुप्त रहता है। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 12 में भी है। गीता अध्याय 13 श्लोक 17 में तथा अध्याय 18 श्लोक 61 में भी यही प्रमाण है कहा है कि पूर्ण परमात्मा प्रत्येक प्राणी के हृदय में विशेष रूप से स्थित है। वह सर्व प्राणियों को यन्त्र की तरह भ्रमण कराता है। (4)

अध्याय 9 का श्लोक 5

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः। ५ ।

न, च, मत्स्थानि, भूतानि, पश्य, मे, योगम्, ऐश्वरम्,
भूतभृत्, न, च, भूतस्थः, मम, आत्मा, भूतभावनः।।5।।

अनुवाद : (च) और (भूतानि) सब प्राणी (मे) मेरे में (मत्स्थानि) स्थित (न) नहीं हैं (च) और (न) न ही (मम) मेरी (आत्मा) आत्मा (भूतभावनः) जीव उत्पन्न करने वाला (पश्य) जान वह (ऐश्वरम्) परम शक्ति युक्त पूर्ण परमात्मा (भूतभृत्) प्राणियों का धारण पोषण करने वाला (योगम्) अभेद सम्बन्ध शक्तिसे (भूतस्थः) प्राणियों में स्थित है। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में भी है कि पूर्ण परमात्मा कोई और है, वह सर्व जगत का पालन-पोषण करता है। यही प्रमाण गीता अध्याय 13 श्लोक 17 अध्याय 18 श्लोक 61 में है कहा है कि पूर्ण परमात्मा सर्व प्राणियों के हृदय में विशेष रूप से स्थित है। वह पूर्ण परमात्मा अपनी शक्ति से सर्व प्राणियों को यन्त्र की तरह भ्रमण कराता है। (5)

अध्याय 9 का श्लोक 6

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय। ६ ।

यथा, आकाशस्थितः, नित्यम्, वायुः, सर्वत्रगः, महान्,
तथा, सर्वाणि, भूतानि, मत्स्थानि, इति, उपधारय।।6।।

अनुवाद : (यथा) जैसे (सर्वत्रगः) सर्वत्र विचरने वाला (महान्) महान् (वायुः) वायु (नित्यम्) सदा (आकाशस्थितः) आकाशमें ही स्थित है (तथा) वैसे ही (सर्वाणि) सम्पूर्ण (भूतानि) प्राणी (मत्स्थानि) नियमित स्थित हैं (इति) ऐसा (उपधारय) समझ। (6)

अध्याय 9 का श्लोक 7

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्। ७ ।

सर्वभूतानि, कौन्तेय, प्रकृतिम्, यान्ति, मामिकाम्।
कल्पक्षये, पुनः, तानि, कल्पादौ, विसृजामि, अहम्।।7।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (कल्पक्षये) कल्पोंके अन्तमें (सर्वभूतानि) सब प्राणी (मामिकाम्) मेरी (प्रकृतिम्) प्रकृतिको (यान्ति) प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकृतिमें लीन होते हैं ओर (कल्पादौ) कल्पोंके आदिमें (तानि) उनको (अहम्) मैं (पुनः) फिर (विसृजामि) रचता हूँ। (7)

अध्याय 9 का श्लोक 8

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्। ८ ।

प्रकृतिम्, स्वाम्, अवष्टभ्य, विसृजामि, पुनः, पुनः।
भूतग्रामम्, इमम्, कृत्स्नम्, अवशम्,प्रकृतेः,वशात्।।8।।

अनुवाद : (स्वाम्) अपनी (प्रकृतिम्) प्रकृति अर्थात् दुर्गा को (अवष्टभ्य) अंगीकार करके अर्थात् पति-पत्नी रूप में रखकर (प्रकृतेः) स्वभावके (वशात्) बलसे (अवशम्) परतन्त्र हुए (इमम्) इस (कृत्स्नम्) सम्पूर्ण (भूतग्रामम्) प्राणी समुदायको (पुनः,पुनः) बार-बार उनके कर्मोंके अनुसार (विसृजामि) रचता हूँ। (8)

अध्याय 9 का श्लोक 9

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु। ९ ।

न, च, माम्, तानि, कर्माणि, निबध्नन्ति, धनजय,
उदासीनवत्, आसीनम्, असक्तम्, तेषु, कर्मसु।।9।।

अनुवाद : (धनजय) हे अर्जुन! (तेषु) उन (कर्मसु) कर्मोंमें (असक्तम्) आसक्तिरहित (च) और (उदासीनवत्) उदासीनके सदृश (आसीनम्) स्थित (माम्) मुझे (तानि) वे (कर्माणि) कर्म (न) नहीं (निबध्नन्ति) बाँधते। (9)

अध्याय 9 का श्लोक 10

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते। १०।

मया, अध्यक्षेण, प्रकृतिः, सूयते, सचराचरम्,
हेतुना, अनेन, कौन्तेय, जगत्, विपरिवर्तते।।10।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (मया) मुझे (अध्यक्षेण) मालिक रूप में स्वीकार करने के कारण (प्रकृतिः) प्रकृति (सचराचरम्) चराचरसहित सर्वजगत्को (सूयते) पैदा करती है (अनेन) इस (हेतुना) हेतुसे ही (जगत्) यह संसार चक्र (विपरिवर्तते) घूम रहा है। (10)

अध्याय 9 का श्लोक 11

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्। ११।

अवजानन्ति, माम्, मूढाः, मानुषीम्, तनुम्, आश्रितम्,
परम्, भावम्, अजानन्तः, मम, भूतमहेश्वरम्।।11।।

अनुवाद : (मम्) मेरे (परम् भावम्) परम भाव को व (भूतमहेश्वरम्) सर्व प्राणियों के महान् ईश्वर अर्थात् पूर्ण परमात्मा को (अजानन्त) न जानते हुए (मूढाः) मूर्ख लोग (माम्) मुझको

(मानुषीम्) मनुष्य (तनुम्) शरीर (आश्रितम्) धारण करने वाला (अवजानन्ति) तुच्छ समझते हैं अर्थात् मुझे कृष्ण रूप में समझते हैं। (11)

भावार्थ :- तत्वज्ञान के अभाव से मूर्ख प्राणी मुझे सर्व प्राणियों का प्रभु मानते हैं। मैं महेश्वर नहीं हूँ, महेश्वर तो पूर्ण परमात्मा है। जो गीता अध्याय 15 श्लोक 4 व 16, 17, गीता अध्याय 18 श्लोक 3,8,9,10 में वर्णन है तथा मुझे शरीर धारण करने वाला अवतार रूप में श्री कृष्ण समझ रहा है, मैं श्री कृष्ण नहीं हूँ। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में तथा गीता अध्याय 8 श्लोक 20 से 22 में दोनों (ब्रह्म तथा पूर्ण ब्रह्म) को अव्यक्त बताया है तथा विस्तृत वर्णन है। उपरोक्त मूर्खो का विवरण निम्न श्लोक में भी दिया है कि वे कहने से भी नहीं मानते, अपनी जिद्द के कारण मुझे सर्वेश्वर-महेश्वर व श्री कृष्ण ही मानते रहते हैं। यदि कोई तत्वदर्शी संत समझाएगा की पूर्ण परमात्मा कोई और है तथा श्री कृष्ण जी ने गीता जी नहीं बोला तथा यह (काल) महेश्वर नहीं है। वे मूर्ख नहीं मानते।

विशेष :-- गीता 9 श्लोक 11 का अनुवाद अन्य अनुवाद कर्ता ने किया है उस में प्रथम पंक्ति के दूसरे अक्षर ''माम्'' को द्वितिय पंक्ति के ''भूत महेश्वरम्'' से जोड़ा हो जो व्याकरण दृष्टिकोण से न्याय संगत नहीं है क्योंकि ''भूत महेश्वरम्'' के साथ ''मम्'' शब्द लिखा है अन्य अनुवाद कर्ताओं ने गीता ज्ञान दाता को सम्पूर्ण प्राणियों का महान् ईश्वर किया है। यदि ऐसा ही माना जाए तो पाठक जन कृप्या इसका भावार्थ यह जाने की ब्रह्म कह रहा है कि मैं अपने इक्कीस ब्रह्मण्डों के सर्व प्राणियों का महान ईश्वर अर्थात् प्रमुख हूँ। वास्तव में उपरोक्त अनुवाद जो मुझ दास द्वारा किया है। वह यथार्थ है।

अध्याय 9 का श्लोक 12

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः।१२।

मोघाशाः, मोघकर्माणः, मोघज्ञानाः, विचेतसः,
राक्षसीम्, आसुरीम्, च, एव, प्रकृतिम्, मोहिनीम् श्रिताः।।12।।

अनुवाद : (मोघाशाः) व्यर्थ आशा (मोघकर्माणः) व्यर्थ कर्म और (मोघज्ञानाः) व्यर्थ ज्ञानवाले (विचेतसः) विक्षिप्त चित अज्ञानीजन (राक्षसीम्) राक्षसी (आसुरीम्) आसुरी (च)और (मोहिनीम्)मोहिनी (प्रकृतिम्)प्रकृतिको (एव)ही (श्रिताः)धारण किये रहते हैं। (12)

अध्याय 9 का श्लोक 13

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।१३।

महात्मानः, तु, माम्, पार्थ, दैवीम्, प्रकृतिम्, आश्रिताः,
भजन्ति, अनन्यमनसः, ज्ञात्वा, भूतादिम्, अव्ययम्।।13।।

अनुवाद : (तु) दूसरी तरफ (पार्थ) हे कुन्तीपुत्र! (दैवीम्) दैवी अर्थात् साधु (प्रकृतिम्) स्वभाव के (आश्रिताः) धारण किए हुए से (महात्मानः) महात्माजन (भूतादिम्) सर्व प्राणियों के सनातन कारण (अव्ययम्) अविनाशी स्वरूप परमात्मा (ज्ञात्वा) तत्व से जानकर (माम्) मुझको (अनन्यमनसः) अनन्य मनसे युक्त होकर (भजन्ति) भजते हैं। (13)

भावार्थ :-- अध्याय 9 श्लोक सं. 11-12 में तो उन श्रद्धालुओं का वर्णन है जो पूर्ण परमात्मा

तथा ब्रह्म को तत्व से नहीं जानते वे तो अन्य देवताओं की साधना स्वभाव वश करते हैं। अध्याय 9 श्लोक सं. 13 (जिसका सम्बन्ध अध्याय 7 श्लोक 17-18 से है कि ज्ञानी मुझे अच्छा है ज्ञानी को मैं अच्छा लगता हूँ परन्तु वे मेरी अनुत्तम गति में ही आश्रित हैं) में कहा है कि जो मुझे तथा उस पूर्ण परमात्मा को जानते हैं वे फिर मुझे भजते हैं क्योंकि गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा को प्राप्ति का तीन मन्त्र का स्मरण कहा है। ओम्-तत्-सत् ओम् जाप ब्रह्म का है। इस अध्याय 9 श्लोक 13 में उसी भाव से कहा है कि पूर्ण परमात्मा और मुझे (ब्रह्म को) तत्व से जानकर महात्मा जन मुझे भजते हैं। उनको अन्य मन्त्रों (तत् व सत्) का ज्ञान नहीं होता। इसलिए अपने आप निकाले निष्कर्ष से(दृढव्रताः) दृढता के साथ कोई ज्ञान यज्ञ अर्थात् स्तूति आदि (कीर्तन) करके कोई विराट रूप (सर्व संसार परमात्मा ही है) जानकर साधना करते हैं। उनके लिए सर्वसवा मैं ही हूँ। अध्याय 9 श्लोक 20 से 24 में अध्याय 9 श्लोक 11 से 19 का निष्कर्ष दिया है कि वे दोनों प्रकार के साधक (अन्य देवताओं को भजते वाले तथा मुझे वेदों के आधार से भजने वाले जिनको वास्तविक मन्त्र प्राप्त नहीं हुआ) वे दोनों ही विनाश को प्राप्त होते हैं। मोक्ष प्राप्त नहीं करते।

अध्याय 9 का श्लोक 14

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते। १४।

सततम्, कीर्तयन्तः, माम्, यतन्तः, च, दृढव्रताः,
नमस्यन्तः, च माम्, भक्त्या, नित्ययुक्ताः, उपासते।।14।।

अनुवाद : (दृढव्रताः) दृढ़ निश्चयवाले भक्तजन (सततम्) निरन्तर (कीर्तयन्तः) मेरे नाम और गुणोंका कीर्तन करते हुए (च) तथा मेरी प्राप्ति के लिए (यतन्तः) यत्न करते हुए (च) और (माम्) मुझको बार-बार (नमस्यन्तः) प्रणाम करते हुए (नित्ययुक्ताः) सदा श्रद्धायुक्त (भक्त्या) भक्तिसे (माम्) मेरी (उपासते) उपासना करते हैं। (14)

अध्याय 9 का श्लोक 15

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्। १५।

ज्ञानयज्ञेन, च, अपि, अन्ये, यजन्तः, माम्, उपासते,
एकत्वेन, पृथक्त्वेन, बहुधा, विश्वतोमुखम्।।15।।

अनुवाद : (अन्ये) दूसरे (माम्) मुझ ब्रह्मका (ज्ञानयज्ञेन) ज्ञानयज्ञके द्वारा (एकत्वेन) अभिन्न-भावसे (यजन्तः) पूजन करते हुए (अपि) भी (च) और दूसरे मनुष्य (बहुधा) बहुत प्रकारसे स्थित (विश्वतोमुखम्) मुझ विराट्स्वरूप परमेश्वरकी (पृथक्त्वेन) प्रथक्-भावसे (उपासते) उपासना करते हैं। (15)

अध्याय 9 का श्लोक 16

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्। १६।

अहम्, क्रतुः, अहम्, यज्ञः, स्वधा, अहम्, अहम्, औषधम्,
मन्त्रः, अहम्, अहम्, एव, आज्यम्, अहम्, अग्निः, अहम्, हुतम्।।16।।

अनुवाद : (क्रतुः) यज्ञ करने वाला अर्थात् क्रतु (अहम्) मैं हूँ (यज्ञः) यज्ञ (अहम्) मैं हूँ, (स्वधा)

स्वधा (अहम्) मैं हूँ (औषधम्) ओषधि (अहम्) मैं हूँ (मन्त्रः) मन्त्र (अहम्) मैं हूँ (आज्यम्) घृत (अहम्) मैं हूँ (अग्निः) अग्नि (अहम्) मैं हूँ और (हुतम्) हवनरूप क्रिया भी (अहम्) मैं (एव) ही हूँ। (16)

अध्याय 9 का श्लोक 17

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च।१७।

पिता, अहम्, अस्य, जगतः, माता, धाता, पितामहः,
वेद्यम्, पवित्रम्, ओंकारः, ऋक्, साम, यजुः, एव, च।।17।।

अनुवाद : (अहम्) (अस्य) इस (जगतः) इक्कीस ब्रह्मण्डों वाले जगत्का (धाता) धाता अर्थात् धारण करनेवाला (पिता) पिता (माता) माता (पितामहः) पितामह (च) और (वेद्यम्) जानने योग्य (पवित्रम्) पवित्र (ओंकारः) ओंकार तथा (ऋक्) ऋग्वेद (साम) सामवेद (च) और (यजुः) यजुर्वेद आदि तीनों वेद भी मैं ही हूँ। (17)

अध्याय 9 का श्लोक 18

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्।१८।

गतिः, भर्ता, प्रभुः, साक्षी, निवासः, शरणम्, सुहृत्, प्रभवः,
प्रलयः, स्थानम्, निधानम्, बीजम्,अव्ययम्।।18।।

अनुवाद : मैं (गतिः) स्थिति (भर्ता) भरण-पोषण करनेवाला (प्रभुः) स्वामी (साक्षी) शुभाशुभका देखनेवाला (निवासः) वासस्थान (शरणम्) शरण लेने योग्य (सुहृत्) प्रत्युपकार न चाहकर हित करनेवाला (प्रभवः, प्रलयः) सबकी उत्पतिप्रलयका हेतु (स्थानम्) स्थितिका आधार (निधानम्) निधान और (अव्ययम्) अविनाशी (बीजम्) कारण हूँ। (18)

अध्याय 9 का श्लोक 19

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन।१९।

तपामि, अहम्, अहम्, वर्षम्, निगृह्णामि, उत्सृजामि, च,
अमृतम्, च, एव, मृत्युः, च, सत्, असत्, च, अहम्, अर्जुन।।19।।

अनुवाद : (अहम्) मैं ही (तपामि) सूर्यरूपसे तपता हूँ (वर्षम्) वर्षा का (निगृह्णामि) आकर्षण करता हूँ (च) और उसे (उत्सृजामि) बरसाता हूँ (अर्जुन) हे अर्जुन! (अहम्) मैं (एव) ही (अमृतम्) अमृत (च) और (मृत्युः) मृत्यु हूँ (च) और (सत् च असत्) सत् और असत् अर्थात् सच्च तथा झूठ का हेतु भी (अहम्) मैं ही हूँ। (19)

अध्याय 9 का श्लोक 20

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा-
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्।२०।

त्रैविद्याः, माम्, सोमपाः, पूतपापाः, यज्ञैः, इष्ट्वा, स्वर्गतिम्, प्रार्थयन्ते,
ते, पुण्यम्, आसाद्य, सुरेन्द्रलोकम्, अश्नन्ति, दिव्यान्, दिवि, देवभोगान्।।20।।

अनुवाद : (त्रैविद्याः) तीनों वेदोंमें वर्णित विधि के अनुसार (सोमपाः) भक्ति रूपी अमृत पीने वाले (पूतपापाः) पुण्य आत्मा (माम्) मुझको (यज्ञैः) यज्ञोंके द्वारा (इष्ट्वा) इष्ट देव रूपमें पूजकर (स्वर्गतिम्) स्वर्ग की प्राप्ती (प्रार्थयन्ते) चाहते हैं (ते) वे (पुण्यम्) पुण्योंके फलरूप (सुरेन्द्रलोकम्) इन्द्र के स्वर्गलोक को (आसाद्य) प्राप्त होकर (दिवि)स्वर्ग में (दिव्यान्)दिव्य (देवभोगान्) देवताओंके भोगोंको (अश्नन्ति) भोगते हैं। (19)

अध्याय 9 का श्लोक 21

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं-
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना-
गतागतं कामकामा लभन्ते। २१।

ते, तम्, भुक्त्वा, स्वर्गलोकम्, विशालम्, क्षीणे, पुण्ये, मर्त्यलोकम्,
विशन्ति, एवम्, त्रयीधर्मम्, अनुप्रपन्नाः, गतागतम्, कामकामाः, लभन्ते।।21।।

अनुवाद : (ते) वे (तम्) उस (विशालम्) विशाल (स्वर्गलोकम्) स्वर्गलोकको (भुक्त्वा) भोगकर (पुण्ये) पुण्य के (क्षीणे) क्षीण होनेपर (मर्त्यलोकम्) मृत्युलोक को (विशन्ति) प्राप्त होते हैं। (एवम्) इस प्रकार (त्रयीधर्मम्) तीनों वेदोंमें कहे हुए भक्ति कर्मका (अनुप्रपन्नाः) आश्रय लेनेवाले और (कामकामाः) भोगोंकी ईच्छा से (गतागतम्) बार-बार आवागमनको (लभन्ते) प्राप्त होते हैं। (21)

अध्याय 9 का श्लोक 22

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्। २२।

अनन्याः, चिन्तयन्तः, माम्, ये, जनाः, पर्युपासते,
तेषाम्, नित्याभियुक्तानाम्, योगक्षेमम्, वहामि, अहम्।।22।।

अनुवाद : (ये) जो (अनन्याः) अनन्य प्रेमी (जनाः) भक्तजन (माम्) मुझको (चिन्तयन्तः) चिन्तन करते हुए (पर्युपासते) उस पूर्ण परमात्मा को निष्कामभावसे भजते हैं (तेषाम्) उन (नित्याभियुक्तानाम्) नित्य निरन्तर साधना करने वाले पुरुषोंका (योगक्षेमम्) योगक्षेम अर्थात् साधना की रक्षा (अहम्) मैं (वहामि) करता हूँ। (22)

भावार्थ :-- गीता ज्ञान दाता प्रभु कह रहा है कि जो पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होने के लिए ओम्-तत्-सत् के मन्त्र में मेरे ओम् नाम का चिन्तन करते हुए उसे परमात्मा की उपासना करता है। उस की साधना की रक्षा भी मैं ही करता हूँ।

विशेष :-- अन्य अनुवाद कर्ताओं ने लिखा है कि ‘‘जो अनन्य प्रेमी मुझको चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से भजते हैं------- विचार करें :--चिन्तन करना तथा भजना एक ही अर्थ के बोधक है इसलिए अन्य अनुवाद कर्ताओं द्वारा किया अनुवाद न्याय संगत नहीं है।

अध्याय 9 का श्लोक 23

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्। २३।

ये, अपि, अन्यदेवताः, भक्ताः, यजन्ते, श्रद्धया, अन्विताः,
ते, अपि, माम्, एव, कौन्तेय, यजन्ति, अविधिपूर्वकम्।।23।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (श्रद्धया) श्रद्धासे (अन्विताः) युक्त (अपि) भी (ये) जो (भक्ताः) भक्त (अन्यदेवताः) दूसरे देवताओंको (यजन्ते) पूजते हैं, (ते) वे (अपि) भी (माम्) मुझको (एव) ही (यजन्ति) पूजते हैं किंतु उनका वह पूजन (अविधिपूर्वकम्) अविधिपूर्वक अर्थात् शास्त्र विरूद्ध है। (23)

विशेष :--इसी का प्रमाण गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में कहा है कि जो शास्त्र विधि को त्याग कर मनमाना (अविधिपूर्वक) आचरण (पूजा) करता है वह न तो परमशान्ति को प्राप्त होता है, उसका न कोई कार्य सिद्ध होता है तथा न ही उसकी परमगति ही होती है अर्थात् व्यर्थ है।

अध्याय 9 का श्लोक 24

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते।२४।

अहम्, हि, सर्वयज्ञानाम्, भोक्ता, च, प्रभुः,एव, च,
न, तु, माम्,अभिजानन्ति,तत्त्वेन,अतः,च्यवन्ति,ते।।24।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (सर्वयज्ञानाम्) सम्पूर्ण यज्ञोंका (भोक्ता) भोक्ता (च) और (प्रभुः) स्वामी (च) भी (अहम्) मैं (एव) ही हूँ, (तु) परंतु (ते) वे (माम्) मुझे (तत्त्वेन) तत्त्वसे (न) नहीं (अभिजानन्ति) जानते (अतः) इसीसे (च्यवन्ति) गिरते हैं अर्थात् चौरासी लाख प्रकार के प्राणियों के शरीरों में कष्ट भोगते हैं। (24)

अध्याय 9 का श्लोक 25

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्। २५।

यान्ति, देवव्रताः, देवान्, पितॄन्, यान्ति, पितृव्रताः।
भूतानि,यान्ति,भूतेज्याः,यान्ति, मद्याजिनः,अपि,माम्।।25।।

अनुवाद : (देवव्रताः) देवताओंको पूजनेवाले (देवान्) देवताओंको (यान्ति) प्राप्त होते हैं, (पितृव्रताः) पितरोंको पूजनेवाले (पितॄन्) पितरोंको (यान्ति) प्राप्त होते हैं, (भूतेज्याः) भूतोंको पूजनेवाले (भूतानि) भूतोंको (यान्ति) प्राप्त होते हैं और (मद्याजिनः) इसी तरह मतानुसार अर्थात् शास्त्रानुकुल पूजन करने वाले मेरे भक्त (अपि) भी (माम्) मुझे (यान्ति) प्राप्त होते हैं। (25)

अध्याय 9 का श्लोक 26

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।२६।

पत्रम्, पुष्पम्, फलम्, तोयम्, यः, मे, भक्त्या, प्रयच्छति,
तत्, अहम्, भक्त्युपहृतम्, अश्नामि, प्रयतात्मनः।।26।।

अनुवाद : (यः) जो कोई भक्त (मे) मेरे लिये (भक्त्या) भक्तिभावसे (पत्रम्) पत्र (पुष्पम्) पुष्प (फलम्) फल (तोयम्) जल आदि (प्रयच्छति) अर्पण करता है (प्रयतात्मनः) प्रेमी भक्तका (भक्त्युपहृतम्) भक्तिपूर्वक अर्पण किया हुआ (तत्) वह (अहम्) मैं (अश्नामि) खाता हूँ। (26)

अध्याय 9 का श्लोक 27

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्। २७।

यत्, करोषि, यत्, अश्नासि, यत्, जुहोषि, ददासि, यत्,
यत्, तपस्यसि, कौन्तेय, तत्, कुरुष्व, मदर्पणम्।।27।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! तू (यत्) जो कर्म (करोषि) करता है (यत्) जो (अश्नासि) खाता है (यत्) जो (जुहोषि) हवन करता है (यत्) जो (ददासि) दान देता है और (यत्) जो (तपस्यसि) तप करता है (तत्) वह सब (मदर्पणम्) मतानुसार अर्थात् शास्त्र विधि अनुसार मुझे अर्पण (कुरुष्व) कर। (27)

अध्याय 9 का श्लोक 28

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि। २८।

शुभाशुभफलैः, एवम्, मोक्ष्यसे, कर्मबन्धनैः,
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा, विमुक्तः, माम्, उपैष्यसि।।28।।

अनुवाद : (एवम्) इस प्रकार मतानुसार साधना करने (सन्न्यासयोगयुक्तात्मा) घर त्याग कर या हठ योग करके साधना करने वाले साधक (शुभाशुभफलैः) अपने हित व अहित के फल को जान कर (कर्मबन्धनैः) शास्त्र विधि रहित साधना जो हठयोग एक स्थान पर बन्ध कर बैठने से (मोक्ष्यसे) मुक्त हो जाएगा। ऐसे (विमुक्तः) शास्त्र विरुद्ध साधना के बन्धन से मुक्त होकर अर्थात् शास्त्र विधि अनुसार साधना करके (माम्) मुझसे ही (उपैष्यसि) लाभ प्राप्त करेगा। अर्थात् मेरे पास ही आएगा। (28)

अध्याय 9 का श्लोक 29

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्। २९।

समः, अहम्, सर्वभूतेषु, न, मे, द्वेष्यः, अस्ति, न, प्रियः,
ये, भजन्ति, तु, माम्, भक्त्या, मयि, ते, तेषु, च, अपि, अहम्।।29।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (सर्वभूतेषु) सब प्राणियों में (समः) समभावसे व्यापक हूँ (न) न कोई (मे) मेरा (द्वेष्यः) दुश्मन है और (न) न (प्रियः) प्रिय (अस्ति) है (तु) परंतु (ये) जो भक्त (माम्) मुझको (भक्त्या) शास्त्र अनुकूल भक्ति विधि से (भजन्ति) भजते हैं (ते) वे (मयि) मुझमें हैं (च) और (अहम्) मैं (अपि) भी (तेषु) उनमें हूँ। (29)

अध्याय 9 का श्लोक 30

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः। ३०।

अपि, चेत्, सुदुराचारः, भजते, माम्, अनन्यभाक्,
साधुः, एव, सः, मन्तव्यः, सम्यक्, व्यवसितः, हि, सः।।30।।

अनुवाद : (चेत्) यदि कोई (सुदुराचारः) अतिशय दुराचारी (अपि) भी (अनन्यभाक्)

अनन्यभावसे (माम्) मुझको (भजते) भजता है तो (सः) वह (साधुः) साधु (एव) ही (मन्तव्यः) मानने योग्य है (हि) क्योंकि (सः) वह (सम्यक्) यथार्थ (व्यवसितः) निश्चयवाला है। (30)

अध्याय 9 का श्लोक 31

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति। ३१।

क्षिप्रम्, भवति, धर्मात्मा, शश्वत्, शान्तिम्, निगच्छति,
कौन्तेय, प्रति, जानीहि, न, मे, भक्तः, प्रणश्यति।।31।।

अनुवाद : उपरोक्त साधक का ही निम्न श्लोक में विवरण किया है कि वह दुराचारी व्यक्ति मेरे को भजता है अर्थात् मेरे द्वारा दिए भक्ति मार्ग - मत अर्थात् सिद्धांत के आधार से शास्त्रों के पठन-पाठन करके (क्षिप्रम्) शीघ्र ही (धर्मात्मा) साधु जैसे गुणों वाला तो (भवति) हो जाता है परन्तु मेरी साधना से साधक (शश्वत्) कर्म आधार से जन्म-मृत्यु का सदा रहने वाले चक्र के आधार से बहुत समय के लिए (शान्तिम्) शान्ति को (निगच्छति) प्राप्त करता है अर्थात् एक कल्प तक ब्रह्मलोक में रहता है। उसके पश्चात् कर्म अनुसार अन्य प्राणियों के शरीर धारण करता है। गीता अध्याय 9 श्लोक 7 में भी यही प्रमाण है कहा कि कल्प के अन्त में सर्व प्राणी प्रकृति में लीन हो जाते है। कल्प की आदि में फिर उत्पन्न करता हूँ। (31)

(कौन्तेय) हे कुंती पुत्र! जो यह (न जानीहि) नहीं जानता (मे) मेरा (भक्तः) भक्त भी (प्रति) वापिस (प्रणश्यति) अदृश्य हो जाता है अर्थात् मानव शरीर न प्राप्त करके अन्य प्राणियों के शरीर प्राप्त करता है।

विशेष :- इसी का प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 7 श्लोक 18, तथा गीता अध्याय 4 श्लोक 40 में स्पष्ट किया है कि पथ भ्रष्ट साधक नष्ट हो जाता है तथा गीता अध्याय 6 श्लोक 30 में प्रणश्यति का अर्थ अदृश्य होना लिखा है। इस श्लोक 30 में दो बार अर्थ किया है। इसलिए यहाँ अध्याय 9 श्लोक 31 में भी प्रणश्यति का अर्थ अदृश्य ही अनुकूल है। इसीलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि अर्जुन तू सर्व भाव से उस परमात्मा की शरण में जा, उसकी कृप्या से ही तू परमशान्ति को तथा सनातन परम धाम को अर्थात् सतलोक को प्राप्त होगा। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 4 में भी है कि हे अर्जुन गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में वर्णित तत्वदर्शी संत के मिलने पर उस परम पद परमेश्वर की खोज करनी चाहिए, जिसमें गए साधक फिर लौट कर संसार में जन्म-मृत्यु में नहीं आते अर्थात् पूर्ण मोक्ष को प्राप्त करते हैं। जिस परमेश्वर से संसार रूपी वृक्ष विस्तार को प्राप्त हुआ है अर्थात् जिस परमेश्वर ने सर्व ब्रह्मण्डों की रचना की है। मैं भी उसी आदि पुरुष परमेश्वर की शरण में हूँ। इसलिए उसी पूर्ण परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए।

अध्याय 9 का श्लोक 32

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्। ३२।

माम्, हि, पार्थ, व्यपाश्रित्य, ये, अपि, स्युः, पापयोनयः,
स्त्रियः, वैश्याः, तथा, शूद्राः, ते, अपि, यान्ति, पराम्, गतिम्।।32।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (पार्थ) हे पार्थ! (ये) जो (अपि) भी (माम्) मुझ पर (व्यापाश्रित्य) आश्रित (स्युः) होवें (पापयोनयः) पापयोनि अर्थात् महा पापी (स्त्रियः वैश्याः) वैश्या स्त्री (तथा)

और (शूद्राः) शुद्र (ते) वे सब (अपि) भी (पराम गतिम्) परमगति को (यान्ति) प्राप्त हो जाते हैं। (32)

विशेष :- इस उपरोक्त श्लोक में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि मेरे आश्रित होकर परमगति अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। कारण है कि पूर्ण मोक्ष के लिए गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में तीन मन्त्र ओम्-तत्-सत् के जाप का वर्णन किया है। जिस से परमगति अर्थात् पूर्ण मोक्ष सम्भव है। इसमें ओम् मन्त्र गीता ज्ञान दाता का है। इसलिए इस ओम् मन्त्र का अर्थात् गीता ज्ञान दाता का आश्रय लेकर ही परम गति प्राप्त होती है। इसी लिए गीता ज्ञान दाता ने अपनी गति को गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अति अनुत्तम बताया है इसीलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 व अध्याय 15 श्लोक 4 में अपने से अन्य परमेश्वर की शरण में जाने को कहा है।

अध्याय 9 का श्लोक 33

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्। ३३।

किम्, पुनः, ब्राह्मणाः, पुण्याः, भक्ताः, राजर्षयः, तथा,
अनित्यम्, असुखम्, लोकम्, इमम्, प्राप्य, भजस्व, माम्।।33।।

अनुवाद : पवित्र गीता बोलने वाला प्रभु कह रहा है कि उपरोक्त श्लोक 32 में वर्णित पापी आत्मा भी मेरे वाली परमगति को प्राप्त कर सकते हैं तो (पुनः) फिर (ब्राह्मणाः) ब्राह्मणों (तथा) और (राजर्षयः) राजर्षि (पुण्या) पुण्यशील (भक्ताः) भक्तजनों के लिए (किम्) क्या कठिन है। (माम्) मुझ ब्रह्म के (इमम्) इस (अनित्यम्) नाश्वान (असुखम्) दुःखदाई (लोकम्) लोकों (प्राप्य) प्राप्त होकर अर्थात् जन्म लेकर (भजस्व) उस पूर्ण परमात्मा का भजन कर क्योंकि गीता अध्याय 8 श्लोक 8 से 10,1 व 3 तथा 20 से 22 में पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति के लिए विस्तार से कहा है तथा अध्याय 8 श्लोक 5-7 व 13 में अपने विषय में कहा है। यहाँ भी संकेतिक संदेश उस पूर्ण परमात्मा के विषय में है तथा निम्न श्लोक 34 में अपने विषय में कहा है कि यदि मेरी शरण में रहना है तथा जन्म-मृत्यु का कष्ट उठाते रहना है तो- (33)

विशेष :- इसलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में प्रमाण दिया है कि उस परमात्मा की शरण में जा, उसकी कृप्या से ही तू परम शान्ति तथा सनातन परम धाम को प्राप्त होगा। निम्न श्लोक में कहा है कि मेरे वाली परमगति चाहिए तो-

अध्याय 9 का श्लोक 34

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः। ३४।

मन्मनाः, भव, मद्भक्तः, मद्याजी, माम्, नमस्कुरु,
माम्, एव, एष्यसि, युक्त्वा, एवम्, आत्मानम्, मत्परायणः।।34।।

अनुवाद : (मन्मनाः) मेरे में स्थिर मन वाला (मद्याजी) मेरा शास्त्रानुकूल पूजक (मद्भक्तः) मतानुसार अर्थात् मेरे बताए अनुसार साधक (भव) बन (माम्) मुझे (नमस्कुरु) प्रणाम कर। (एवम्) इस प्रकार (आत्मानम्) आत्मासे (मत्परायणः) मेरी शरण होकर शास्त्रानुकूल साधनमें (युक्त्वा) संलग्न होकर (एव) ही (माम्) मुझ से(एष्यसि) लाभ प्राप्त करेगा। (34)

भावार्थ :-- गीता अध्याय 4 श्लोक 34, अध्याय 2 श्लोक 12, अध्याय 10 श्लोक 2 अध्याय 8

श्लोक 5 से 10 व अध्याय 8 श्लोक 18 से 20 में कहा है कि मेरे तथा तेरे बहुत जन्म हो चुके हैं। आगे भी हम सब जन्मते-मरते रहेगें। मेरी उत्पत्ति को ऋषि जन व देवता भी नहीं जानते। मेरी साधना करेगा तो युद्ध भी कर तथा मेरी भक्ति भी कर।

कृप्या पाठक जन विचार करें :-- युद्ध करने वाले को शान्ति कहाँ। इसीलिए गीता अध्याय 15 श्लोक 4, अध्याय 18 श्लोक 62,66 में परम् शान्ति के लिए तथा शाश्वत् (सदा रहने वाले) स्थान की प्राप्ति के लिए किसी अन्य परमेश्वर की शरण में जाने को कहा है। जन्म-मृत्यु वाले को शान्ति कहाँ? यदि पूर्ण मुक्त होना है तो उस परमेश्वर की शरण में सर्व भाव से जा, जिस कारण तू परम शान्ति तथा सत्यलोक अर्थात् सनातन परम धाम को प्राप्त होगा। उसके लिए तत्वदर्शी संत की तलाश कर, मैं नहीं जानता(गीता अ. 18 श्लोक 62 तथा अ. 4 श्लोक 34)।

(इति अध्याय नौवाँ)

❑❑❑

दशवां अध्याय

।।सारांश।।

अध्याय 10 के श्लोक 1 में कहा है कि हे महाबाहो (अर्जुन)! मेरे अमृत वचन सुन जो आप जैसे प्रिय भक्त के हित के लिए कहूँगा।

।। ब्रह्म (काल) की उत्पत्ति का संकेत।।

अध्याय 10 के श्लोक 2 में कहा है कि अर्जुन मेरी उत्पत्ति (जन्म) को न तो देवता जानते हैं, न ही महर्षि जन जानते हैं क्योंकि यह सब मेरे से पैदा हुए हैं। इससे स्वसिद्ध है कि ब्रह्म (काल) की उत्पति तो हुई है परंतु देवता व ऋषि नहीं जानते। जैसे पिता जी की उत्पत्ति को बच्चे नहीं बता सकते, परन्तु दादा जी जानता है। इसी प्रकार इक्कीस ब्रह्मण्ड में सर्व देव-ऋषि आदि ज्योति निरंजन - ब्रह्म अर्थात् काल तथा प्रकृति (दुर्गा) के संयोग से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए कह रहा है कि मेरी उत्पत्ति को इक्कीस ब्रह्मण्डों में कोई नहीं जानता, क्योंकि सर्व की उत्पत्ति मेरे से हुई है। केवल पूर्ण ब्रह्म ही काल (ब्रह्म) की उत्पत्ति बता सकता है। क्योंकि ब्रह्म (काल) की उत्पति परम अक्षर ब्रह्म (पूर्ण ब्रह्म) से हुई है। जिसका गीता जी के अध्याय 3 के श्लोक 14,15 में ब्रह्म की उत्पत्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है। अध्याय 10 के श्लोक 3 का अनुवाद : जो मुझ (ब्रह्म) को कभीका (अनादिम्) जन्म न लेने वाला (आकार में न आने वाला) और काल लोक का महान् ईश्वर तत्व से जानता है वह (मर्त्येषु) मनुष्यों में विद्वान अर्थात् तत्वदर्शी सन्त है जो तीनों वेदों में कहे शास्त्रानुकूल विचारों को तथा सर्व पापों को सही कहता है अर्थात् सही जानकारी देता है। तीनों वेद - यजुर्वेद, सामवेद, ऋग्वेद। गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 16,17,18 में वर्णन है कि पूर्ण परमात्मा अविनाशी तो अन्य ही है जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है। मुझ (काल) को तो केवल इसलिए पुरुषोत्तम कहते हैं क्योंकि मैं इक्कीस ब्रह्मण्डों में मेरे आधीन स्थूल शरीर में नाशवान प्राणियों तथा अविनाशी जीवात्मा से उत्तम हूँ। इसलिए मुझे लोक वदे के आधार से अर्थात् सुने सुनाए ज्ञान के आधार से पुरुषोत्तम कहा है परंतु वास्तव में मैं अविनाशी या पालन कर्त्ता नहीं हूँ। गीता जी के अध्याय नं. 3 के श्लोक 14,15 में कहा है कि सर्वजीव अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न वर्षा से होता है, वर्षा यज्ञ से होती है, यज्ञ शुभकर्मों से, कर्म ब्रह्म से उत्पन्न हुए। ब्रह्म अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ। वही अविनाशी सर्वव्यापक परमात्मा ही यज्ञों में प्रतिष्ठित है, यज्ञों में पूज्य है, वही यज्ञों का फल भी देता है अर्थात् वास्तव में अधियज्ञ भी वही है।

फिर गीता जी के अध्याय 10 के श्लोक नं 2 में कहा है कि मेरी उत्पत्ति (प्रभवम्) को ऋषि व देव जन आदि कोई नहीं जानता। इससे सिद्ध है कि काल (ब्रह्म) भी उत्पन्न हुआ है। गीता अध्याय 2 श्लोक 12 अध्याय 4 श्लोक 5-9 में भी स्पष्ट है कि गीता ज्ञान दाता का भी जन्म व मृत्यु होता है। इसलिए यह कहीं पर आकार में भी है। नहीं तो कृष्ण जी तो अर्जुन के सामने ही खड़े थे। वे तो कह ही नहीं सकते कि मैं अनादि अजम (अजन्मा) हूँ। यह सर्व काल (अदृश ब्रह्म) ही श्री कृष्ण में बोल कर अपनी प्रतिष्ठा (स्थिति) की सही जानकारी गीता रूप में दे गया।

।। पूर्ण ज्ञानी पूर्ण परमात्मा की ही पूजा करता है, ब्रह्म (काल) की नहीं।।

अध्याय 10 के श्लोक 7 का भावार्थ है कि जो मेरी इस प्रकार शक्ति को, योग साधना को तत्व से जानता है वह निश्चल साधना से युक्त हो जाता है। इसमें कोई संश्य नहीं अर्थात् जो विद्वान

पुरुष मतानुसार (शास्त्रानुसार) काल (ब्रह्म) की जितनी शक्ति, {केवल नाशवान प्राणियों, जो स्थूल शरीर में हैं तथा अविनाशी जीवात्मा जो काल (ब्रह्म) के जाल में हैं, से उत्तम है। इसलिए इसे पुरुषोत्तम कहते हैं। वास्तव में पुरुषोत्तम कोई अन्य ही है जिसे अविनाशी सर्वव्यापक परमात्मा कहते हैं (अध्याय 15 के श्लोक 16,17,18 फिर पढ़ें)} को तत्व से जान लेते हैं वे ही साधक पूर्ण परमात्मा की भक्ति को निःसंश्य अर्थात् निश्चल मन से करते हैं। इसमें कोई संश्य नहीं।

।। ब्रह्म (काल) द्वारा ही शास्त्र (वेद) उत्पन्न ।।

अध्याय 10 के श्लोक 8 में वर्णन है कि जिनको तत्वदर्शी संत नहीं मिला, जिस कारण वे मुझे इस भाव से जानते हैं कि मैं सब शास्त्रों के नियमों (मतों) की उत्पति का कारण हूँ। {क्योंकि चारों वेद ब्रह्म (काल) ने ही उत्पन्न किए हैं, उनमें ॐ मन्त्र के जाप व यज्ञ तक का ज्ञान है जो केवल ब्रह्म (काल) का लाभ ही प्राप्त हो सकता है।} इसलिए सब साधक शास्त्रों अर्थात् वेदों के आधार से साधना करते हैं, श्रद्धा भाव से मुझ (ब्रह्म-काल) को भजते हैं। (इसी का प्रमाण गीता अध्याय 3 मंत्र 14-15 में है)

।। ब्रह्म (काल) के उपासक उसी के आधार ।।

अध्याय 10 के श्लोक 8,9 का भावार्थ है कि जिनको पूर्णज्ञानी तत्वदर्शी संत नहीं मिला वे मेरे द्वारा उत्पन्न (रचित) शास्त्रों के आधारित प्राणी इन्हीं के ज्ञाता, लीन मन वाले और आपस में विचार विमर्श (हरि चर्चा) करते हुए और नित्य (ब्रह्मसे) संतुष्ट रहते हैं तथा मुझ (ब्रह्म-काल) में लीन (रमे) रहते हैं।

अध्याय 10 के श्लोक 10 में कहा है कि उन अभ्यास योग में युक्त सप्रेम भजनेवालों की बुद्धि में अज्ञान रूपी अंधकार कर देता हूँ जिससे वे मुझ (काल) को प्राप्त होते हैं।

अध्याय 10 के श्लोक 11 में कहा है कि उनके ऊपर कृप्या करने के लिए अज्ञान से उत्पन्न अंधकार को नष्ट करता हूँ। आत्म भावस्थ का भावार्थ है कि जैसे प्रेत किसी के शरीर में प्रवेश करके बोलता है वह ऐसा लगता है जैसे शरीरधारी जीवात्मा बोल रहा है परन्तु वह प्रेत आत्मभाव अर्थात् जीव की तरह स्थित होकर बोलता है। इसी प्रकार गीता ज्ञान दाता ब्रह्म कह रहा है कि मैं प्राणियों में आत्मभाव स्थ अर्थात् उनके शरीर में प्रेतवत् प्रवेश करके ज्ञान प्रदान करता हूँ। गीता ज्ञान दान के समय वही ब्रह्म (काल) श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रेत की तरह प्रवेश करके गीता ज्ञान बोल रहा था लग रहा था जैसे श्री कृष्ण जी बोल रहा है। इस का प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में है।

अध्याय 10 के श्लोक 11 में स्पष्ट कहा है कि जो भक्त मेरे आश्रित होकर मुझे प्राप्त हो जाते हैं। फिर उनको सच्चाई (सत्यज्ञान) बता देता हूँ कि वास्तविक अविनाशी तथा अजन्मा परमात्मा तो कोई और ही है। मैं (काल) नहीं हूँ। इसलिए उस परमात्मा की भक्ति करो। फिर उस भक्त का पुनर्जन्म नहीं होता। प्रमाण - गीता जी के अध्याय 8 के श्लोक 3, 8, 9, 10, 20, 21, 22, अध्याय 2 का श्लोक 17, अध्याय 18 के श्लोक 46,61, 62, अध्याय 15 के श्लोक 1 से 6, 16 से 18 तथा अध्याय 13 पूरा।

जब मैं (काल) कल्प के अंत में प्रलय करूंगा तो मुझे (काल) प्राप्त प्राणी स्वर्ग तथा महास्वर्ग में स्थित भी नष्ट होंगे। जब कल्प के अंत में प्रलय करूंगा। तब फिर जन्म-मरण व चौरासी के चक्र में आएंगे अर्थात् पूर्ण मुक्त नहीं हैं। प्रमाण के लिए अध्याय 8 का श्लोक 16 तथा अध्याय 9 का

श्लोक नं. 7 ।

अध्याय 10 के श्लोक 12 से 18 तक अर्जुन कह रहा है कि मैं आपको अजन्मा-अनादि, सर्व प्राणियों के महेश्वर (पुरुषोत्तम) देवताओं के भी देव आदि मानता हूँ तथा अध्याय 10 श्लोक 14 में अर्जुन ने कहा है कि आप के साकार मानुष जैसे रूप को तो कोई नहीं जानता । अब मुझे बताएँ कि मैं आपका भजन सुमरण कैसे करूं? अध्याय 10 के श्लोक 20 में ब्रह्म भगवान कह रहे हैं कि मैं सर्व जीवों में स्थित आत्मा हूँ व सब का जन्म-मरण व बीच में जो-जो उस जीव को सुख या दुःख देना है सबका कारण मैं (ब्रह्म) हूँ। क्योंकि सर्व जीवात्मा ब्रह्म (ज्योति निरंजन काल) के आधीन हैं। जैसे वह चाहे पक्षी हो, चाहे पशु हो, चाहे राजा या देवराज इन्द्र व ब्रह्मा-विष्णु-शिव और माई प्रकृति भी क्यों न हो, सबको गुप्त रूप में अपनी शक्ति के द्वारा सर्व प्राणियों को तीन लोक में परेशान कर रहा है। इसलिए आगे के श्लोक 21 से 42 तक काल भगवान कह रहा है कि सब जीव जाति के जो-जो मुखिया प्राणी हैं वह मैं (काल) ही हूँ। जैसे शेर वन्य प्राणियों का काल (नाश करने वाला) पक्षियों में गरुड़ आदि-आदि तथा जुआ भी मैं ही हूँ, छल भी मैं (काल) ही हूँ। चूंकि काल (ब्रह्म) ही सर्व जीवों को धोखे में डाल कर एक दूसरे के आधीन करके परेशान करवाता है।

अध्याय 10 के श्लोक 19 से 42 तक में भगवान कह रहा है कि हे अर्जुन! (कुरुश्रेष्ठ) अब मैं तेरे लिए अपना अनन्त विस्तार बताऊँगा।

जो प्राणी मेरे अन्तर्गत है मैं उन सब प्राणियों में आत्मा हूँ, आदि-मध्य तथा अन्त भी मैं हूँ। मैं देवों में विष्णु, ग्रहों में सूर्य हूँ, तारों में चन्द्रमा हूँ, वेदों में साम वेद हूँ, रूद्रों में शंकर हूँ, धन का देवता कुबेर हूँ, सबसे ऊँचा पर्वत सुमेरु हूँ, बृहस्पति स्कन्द, समुन्द्र (जल स्तोत्र) हूँ, मैं ही भृगु ऋषि हूँ, शब्दों में एक अक्षर ओंकार हूँ, सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष हूँ, सिद्धों में कपिल मुनि हूँ, देव ऋषियों में नारद हूँ, मनुष्यों में राजा हूँ, गौओं में कामधेनु हूँ, सर्पों में वासुकि हूँ, नागों में शेष नाग मैं ही हूँ, जंगली जानवरों में शेर तथा पक्षियों में गरुड़ हूँ। जल जीवों में मगर हूँ, धनुषधारियों में राम (श्री रामचन्द्र पुत्र श्री दशरथ) हूँ। मैं सबका नाश करने वाला मृत्यु हूँ। इसलिए हे अर्जुन! भूतों (प्राणियों) का बीज (उत्पत्ति व प्रलय का कारण) मैं ही हूँ। मेरी विभूतियाँ तो अनन्त हैं। यह तो कुछ ही कहा है तथा जो भी अच्छी वस्तुएँ हैं वे मेरे से उत्पन्न जान। हे अर्जुन! इसे बहुत जानने से तुझे क्या प्रयोजन है? सुन, मैं इस सारे संसार (तीन लोकों) को एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूँ अर्थात् अधिक क्या बताऊँ? इस सारे संसार को मैं (काल) ही नचा रहा हूँ। जंगली जानवरों में शेर को शक्तिशाली बना दिया। वह सर्व वन्य प्राणियों को तंग रखता है अर्थात् भयभीत रखता है। जब चाहे खा जाता है। फिर मगर मच्छ जल के जीवों को परेशान अर्थात् भयभीत रखता है। जब चाहे खा जाता है। इसी प्रकार काल भगवान है जिसको चाहे खा जाता है अर्थात् 21 ब्रह्मण्ड में काल का राज्य है। यही सर्व प्राणियों के दुःख का कारण है जो स्वयं स्पष्ट कह रहा है।

❑❑❑

।।दशवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ दशमोऽध्यायः

अध्याय 10 का श्लोक 1 (भगवान उवाच)

भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ।१।

भूयः, एव, महाबाहो, श्रृणु, मे, परमम्, वचः,
यत्, ते, अहम्, प्रीयमाणाय, वक्ष्यामि, हितकाम्यया।।1।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे महाबाहो! (भूयः) फिर (एव) भी (मे) मेरे (परमम्) परम रहस्य और प्रभावयुक्त (वचः) वचनको (श्रृणु) सुन (यत्) जिसे (अहम्) मैं (ते) तुझ (प्रीयमाणाय) अतिशय प्रेम रखनेवालेके लिये (हितकाम्यया) हितकी इच्छासे (वक्ष्यामि) कहूँगा। (1)

अध्याय 10 का श्लोक 2

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः।२।

न, मे, विदुः, सुरगणाः, प्रभवम्, न, महर्षयः,
अहम्, आदिः, हि, देवानाम्, महर्षीणाम्, च, सर्वशः।।2।।

अनुवाद : (मे) मेरी (प्रभवम्) उत्पतिको (न) न (सुरगणाः) देवतालोग जानते हैं और (न) न (महर्षयः) महर्षिजन ही (विदुः) जानते हैं, (हि) क्योंकि (अहम्) मैं (सर्वशः) सब प्रकारसे (देवानाम्) देवताओंका (च) और (महर्षीणाम्) महर्षियोंका भी (आदिः) आदि कारण हूँ। (2)

अध्याय 10 का श्लोक 3

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।३।

यः, माम्, अजम्, अनादिम्, च, वेत्ति, लोकमहेश्वरम्,
असम्मूढः, सः, मर्त्येषु, सर्वपापैः,प्रमुच्यते।।3।।

अनुवाद : (यः) जो विद्वान व्यक्ति (माम्) मुझको (च) तथा (अनादिम्) सदा रहने वाले अर्थात् पुरातन (अजम्) जन्म न लेने वाले (लोक महेश्वरम्) सर्व लोकों के महान ईश्वर अर्थात् सर्वोच्च परमेश्वर को (वेत्ति) जानता है (सः) वह (मर्त्येषु) शास्त्रों को सही जानने वाला अर्थात् वेदों के अनुसार ज्ञान रखने वाला मनुष्यों में (असम्मूढः) ज्ञानवान अर्थात् तत्वदर्शी विद्वान् तत्वज्ञान के आधार से सत्य साधना करके(सर्वपापैः) सम्पूर्ण पापों से (प्रमुच्यते) मुक्त हो जाता है वही व्यक्ति पापों के विषय में विस्तृत वर्णन के साथ कहता है अर्थात् वही सृष्टि ज्ञान व कर्मों का सही वर्णन करता है अर्थात् अज्ञान से पूर्ण रूप से मुक्त कर देता है। (3)

अध्याय 10 का श्लोक 4.5

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ।४।

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः।५।

बुद्धिः, ज्ञानम्, असम्मोहः, क्षमा, सत्यम्, दमः, शमः,
सुखम्, दुःखम्, भवः, अभावः, भयम्, च, अभयम्, एव, च।।
अहिंसा, समता, तुष्टिः, तपः, दानम्, यशः, अयशः,
भवन्ति, भावाः, भूतानाम्, मत्तः, एव, पृथग्विधाः।।4,5।।

अनुवाद : (बुद्धिः) निश्चय करनेकी शक्ति (ज्ञानम्) यथार्थ ज्ञान (असम्मोहः) असंमूढता अर्थात् अज्ञान रूप मोह से रहित (क्षमा) क्षमा (सत्यम्) सत्य (दमः) इन्द्रियोंका वशमें करना, (शमः) मनका निग्रह (एव) तथा (सुखम्,दुःखम्) सुख-दुःख (भवः, अभावः) उत्पति प्रलय (च) और (भयम्, अभयम्) भय-अभय (च) तथा (अहिंसा) अहिंसा (समता) समता (तुष्टिः) संतोष (तपः) तप (दानम्) दान (यशः) कीर्ति और (अयशः) अपकीर्ति (भूतानाम्) प्राणियोंके (पृथग्विधाः) नाना प्रकारके (भावाः) भाव (मतः) नियमानुसार (एव) ही (भवन्ति) होते हैं। (5)

अध्याय 10 का श्लोक 6

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः। ६।

महर्षयः, सप्त, पूर्वे, चत्वारः, मनवः, तथा,
मद्भावाः, मानसाः, जाताः, येषाम्, लोके,इमाः,प्रजाः।।6।।

अनुवाद : (सप्त) सात (महर्षयः) महर्षिजन (चत्वारः) चार उनसे भी (पूर्वे) पूर्व होनेवाले सनकादि (तथा) तथा (मनवः) स्वायम्भुव आदि चौदह मनु ये (मद्भावाः) मुझमें भाववाले सब के सब (मानसाः) मेरे संकल्पसे (जाताः) उत्पन्न हुए हैं (येषाम्) जिनकी (लोके) संसारमें (इमाः) यह (प्रजाः) सम्पूर्ण प्रजा है। (6)

अध्याय 10 का श्लोक 7

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः।७।

एताम्, विभूतिम्, योगम्, च, मम, यः, वेत्ति, तत्त्वतः,
सः, अविकम्पेन, योगेन, युज्यते, न, अत्र, संशयः।।7।।

अनुवाद : (यः) जो प्राणी (मम) मेरी (एताम्) इस प्रकार (विभूतिम्) विभूतिको (च) और (योगम्) योगशक्तिको (तत्त्वतः) तत्वसे (वेत्ति) जानता है (सः) वह (अविकम्पेन) निश्चल (योगेन) भक्तियोगसे (युज्यते) युक्त हो जाता है (अत्र) इसमें (संशयः) संशय (न) नहीं है। (7)

अध्याय 10 का श्लोक 8

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः। ८ ।

अहम्, सर्वस्य, प्रभवः, मत्तः, सर्वम्, प्रवर्तते,
इति, मत्वा, भजन्ते, माम्, बुधाः, भावसमन्विताः।।8।।

अनुवाद : (अहम्) मैं ही (सर्वस्य) सबका (प्रभवः) उत्पतिका कारण हूँ (मतः) मेरे ज्ञान अनुसार (सर्वम्) सब जगत (प्रवर्तते) चेष्टा करता है (इति) इस प्रकार (मत्वा) समझकर (भावसमन्विताः) श्रद्धा और भक्तिसे युक्त (बुधाः) ज्ञानी भक्तजन जिनको तत्वदर्शी संत नहीं मिला वे (माम्) मुझे ही (भजन्ते) निरन्तर भजते हैं। (8)

अध्याय 10 का श्लोक 9

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च। ९ ।

मच्चित्ताः, मद्गतप्राणाः, बोधयन्तः, परस्परम्,
कथयन्तः, च, माम्, नित्यम्, तुष्यन्ति, च, रमन्ति, च।।9।।

अनुवाद : (मद्गतप्राणाः) मेरे पर आधारित प्राणी (बोधयन्तः) इसीको जानने वाले (च) और (मच्चित्ताः) मेरे में लीन मन वाले (परस्परम्) आपसमें (कथयन्तः) विचार विमर्श करते हुए (च) और (नित्यम्) नित्य (तुष्यन्ति) संतुष्ट होते हैं (च) तथा (माम्) मुझमें (रमन्ति) लीन रहते हैं। (9)

अध्याय 10 का श्लोक 10

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते। १०।

तेषाम्, सततयुक्तानाम्, भजताम्, प्रीतिपूर्वकम्,
ददामि, बुद्धियोगम्, तम्, येन, माम्, उपयान्ति, ते।।10।।

अनुवाद : (तेषाम्) उन (सततयुक्तानाम्) निरन्तर ज्ञान पर विचार विमर्श में लगे हुओं तथा (प्रीतिपूर्वकम्) प्रेमपूर्वक (भजताम्) भजनेवालों को (तम्) उसी सत्र का (बुद्धियोगम्) ज्ञान योग (ददामि) देता हूँ (येन) जिससे (ते) वे (माम्) मुझको (उपयान्ति) प्राप्त होते हैं। (10)

अध्याय 10 का श्लोक 11

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता। ११।

तेषाम्, एव, अनुकम्पार्थम्, अहम्, अज्ञानजम्, तमः,
नाशयामि, आत्मभावस्थः, ज्ञानदीपेन, भास्वता।।11।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (एव) ही (तेषाम्) उनके ऊपर (अनुकम्पार्थम्) कृप्या करनेके लिये (अज्ञानजम्) अज्ञानसे उत्पन्न (तमः) अन्धकारको (नाशयामि) नष्ट करता हूँ। (आत्मभावस्थः) प्रेतवत् प्रवेश करके आत्मा की तरह शरीर में स्थापित होकर जैसे जीवात्मा बोलती है। उसी भाव से अर्थात् आत्म भाव से आत्मा में स्थित होकर (ज्ञानदीपेन) ज्ञानरूप दीपक (भास्वता) प्रकाशमय करता हूँ। (11)

अध्याय 10 का श्लोक 12,13 (अर्जुन उवाच)

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्। १२।

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे।१३।

परम्, ब्रह्म परम्, धाम, पवित्रम्, परमम्, भवान्,
पुरुषम्, शाश्वतम्, दिव्यम्, आदिदेवम्, अजम्, विभुम्,
आहुः, त्वाम्, ऋषयः, सर्वे, देवर्षिः, नारदः, तथा,
असितः, देवलः, व्यासः, स्वयम्, च, एव, ब्रवीषि, मे।।12,13।।

अनुवाद : (भवान्) आप (परम्) परम (ब्रह्म) ब्रह्म (परम्) परम (धाम) धाम और (परमम्) परम (पवित्रम्) पवित्र हैं क्योंकि (त्वाम्) आपको (सर्वे) सब (ऋषयः) ऋषिगण (शाश्वतम्) सनातन (दिव्यम्) दिव्य (पुरुषम्) पुरुष एवं (आदिदेवम्) देवोंका भी आदिदेव (अजम्) अजन्मा और (विभुम्) सर्वव्यापी (आहुः) कहते हैं (तथा) वैसे ही (देवर्षिः) देवर्षि (नारदः) नारद तथा (असितः) असित और (देवलः) देवल ऋषि तथा (व्यासः) महर्षि व्यास भी कहते हैं (च) और (स्वयम्) स्वयं आप (एव)ही (मे) मेरे लिए (ब्रवीषि) कहते हैं। (12,13)

अध्याय 10 का श्लोक 14

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः।१४।

सर्वम्, एतत्, ऋतम्, मन्ये, यत्, माम्, वदसि, केशव,
न, हि, ते, भगवन्, व्यक्तिम्, विदुः, देवाः, न, दानवाः।।14।।

अनुवाद : (केशव) हे केशव! (यत्) जो कुछ भी (माम्) मुझको (वदसि) आप कहते हैं (एतत्) इस (सर्वम्) सबको मैं (ऋतम्) सत्य (मन्ये) मानता हूँ। (भगवन्) हे भगवन्! (ते) आपके (व्यक्तिम्) मनुष्य जैसे साकार स्वरूपको (न) न तो (दानवाः) दानव (विदुः) जानते हैं और (न) न (देवाः) देवता (हि) ही। (14)

अध्याय 10 का श्लोक 15

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते।१५।

स्वयम्, एव, आत्मना, आत्मानम्, वेत्थ, त्वम्,
पुरुषोत्तम, भूतभावन, भूतेश, देवदेव, जगत्पते।।15।।

अनुवाद : (भूतभावन) हे प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले! (भूतेश) हे प्राणियों के प्रभु! (देवदेव) हे देवोंके देव! (जगत्पते) हे जगत्के स्वामी! (पुरुषोत्तम) हे पुरुषोतम! (त्वम्) आप (स्वयम्) स्वयं (एव) ही (आत्मना) अपनेसे (आत्मानम्) अपनेको (वेत्थ) जानते हैं। (15)

अध्याय 10 का श्लोक 16

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि। १६।

वक्तुम्, अर्हसि, अशेषेण, दिव्याः, हि, आत्मविभूतयः,
याभिः, विभूतिभिः, लोकान्, इमान्,त्वम्, व्याप्य, तिष्ठसि।।16।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (त्वम्) आप ही उन (दिव्याः आत्मविभूतयः) अपनी दिव्य विभूतियोंको (अशेषेण) सम्पूर्णतासे (वक्तुम्) कहनेमें (अर्हसि) समर्थ हैं (याभिः) जिन (विभूतिभिः) विभूतियोंके

द्वारा आप (इमान्) इन सब (लोकान्) लोकोंको (व्याप्य) व्याप्त करके (तिष्ठसि) स्थित हैं। (16)

अध्याय 10 का श्लोक 17

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया। १७।

कथम्, विद्याम्, अहम्, योगिन्, त्वाम्, सदा, परिचिन्तयन्,
केषु, केषु, च, भावेषु, चिन्त्यः, असि, भगवन्, मया।।17।।

अनुवाद : (योगिन्) हे योगेश्वर! (अहम्) मैं (कथम्) किस प्रकार (सदा) निरन्तर (परिचिन्तयन्) चिन्तन करता हुआ (त्वाम्) आपको (विद्याम्) जानूँ (च) और (भगवन्) हे भगवन्! आप (केषु, केषु) किन-किन (भावेषु) भावोंमें (मया) मेरे द्वारा (चिन्त्यः) चिन्तन करनेयोग्य (असि) हैं। (17)

अध्याय 10 का श्लोक 18

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्। १८।

विस्तरेण, आत्मनः, योगम्, विभूतिम्, च, जनार्दन,
भूयः, कथय, तृप्तिः, हि, श्रृण्वतः, न, अस्ति, मे, अमृतम्।।18।।

अनुवाद : (जनार्दन) हे जनार्दन! (आत्मनः) अपनी (योगम्) योगशक्तिको (च) और (विभूतिम्) विभूतिको (भूयः) फिर भी (विस्तरेण) विस्तारपूर्वक (कथय) कहिये (हि) क्योंकि आपके (अमृतम्) अमृतमय वचनोंको (श्रृण्वतः) सुनते हुए (मे) मेरी (तृप्तिः) तृप्ति (न) नहीं होती अर्थात् (अस्ति) सुननेकी उत्कण्ठा बनी ही रहती है। (18)

अध्याय 10 का श्लोक 19 (भगवान उवाच)

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे। १९।

हन्त, ते, कथयिष्यामि, दिव्याः, हि, आत्मविभूतयः,
प्राधान्यतः, कुरुश्रेष्ठ, न, अस्ति, अन्तः, विस्तरस्य, मे।।19।।

अनुवाद : (कुरुश्रेष्ठ) हे कुरुश्रेष्ठ! (हन्त) अब मैं जो (दिव्याःआत्मविभूतयः) मेरी दिव्य विभूतियाँ हैं (ते) तेरे लिये (प्राधान्यतः) प्रधानतासे (कथयिष्यामि) कहूँगा (हि) क्योंकि (मे) मेरे (विस्तरस्य) विस्तारका (अन्तः) अन्त (न) नहीं (अस्ति) है। (19)

अध्याय 10 का श्लोक 20

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च। २०।

अहम्, आत्मा, गुडाकेश, सर्वभूताशयस्थितः,
अहम्, आदिः, च, मध्यम्, च, भूतानाम्, अन्तः, एव, च।।20।।

अनुवाद : (गुडाकेश) हे अर्जुन! (अहम्) मैं (सर्वभूताशयस्थितः) सब प्राणियों में स्थित (आत्मा) आत्मा हूँ अर्थात् आत्मा काल इशारे पर नाचती है इसलिए कहा है (च) तथा (भूतानाम्) सम्पूर्ण प्राणियों का (आदिः) आदि, (मध्यम्) मध्य (च) और (अन्तः) अन्त (च) भी (अहम्) मैं (एव)

ही हूँ। (20)

अध्याय 10 का श्लोक 21

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी।२१।

आदित्यानाम्, अहम्, विष्णुः, ज्योतिषाम्, रविः, अंशुमान्,
मरीचिः, मरुताम्, अस्मि, नक्षत्राणाम्, अहम्, शशी।।21।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (आदित्यानाम्) अदितिके बारह पुत्रोंमें (विष्णुः) विष्णु और (ज्योतिषाम्) ज्योतियोंमें (अंशुमान्) किरणोंवाला (रविः) सूर्य (अस्मि) हूँ तथा (अहम्) मैं (मरुताम्) उनचास वायुदेवताओंका (मरीचिः) तेज और (नक्षत्राणाम्) नक्षत्रोंका (शशी) अधिपति चन्द्रमा। (21)

अध्याय 10 का श्लोक 22

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना।२२।

वेदानाम्, सामवेदः, अस्मि, देवानाम्, अस्मि, वासवः,
इन्द्रियाणाम्, मनः, च, अस्मि, भूतानाम्, अस्मि, चेतना।।22।।

अनुवाद : (वेदानाम्) वेदोंमें (सामवेदः) सामवेद (अस्मि) हूँ (देवानाम्) देवोंमें (वासवः) इन्द्र (अस्मि) हूँ, (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियोंमें (मनः) मन (अस्मि) हूँ, (च) और (भूतानाम्) भूतप्राणियोंकी (चेतना) चेतना अर्थात् जीवनीशक्ति (अस्मि) हूँ। (22)

अध्याय 10 का श्लोक 23

रुद्राणां शङ्करश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्।२३।

रुद्राणाम्, शंकरः, च, अस्मि, वित्तेशः, यक्षरक्षसाम्,
वसूनाम्, पावकः, च, अस्मि, मेरुः, शिखरिणाम्, अहम्।।23।।

अनुवाद : (रुद्राणाम्) एकादश रुद्रोंमें (शंकरः) शंकर (अस्मि) हूँ (च) और (यक्षरक्षसाम्) यक्ष तथा राक्षसोंमें (वित्तेशः) धनका स्वामी कुबेर हूँ (अहम्) मैं (वसूनाम्) आठ वसुओंमें (पावकः) अग्नि (अस्मि) हूँ (च) और (शिखरिणाम्) शिखरवाले पर्वतोंमें (मेरुः) सुमेरु पर्वत। (23)

अध्याय 10 का श्लोक 24

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः।२४।

पुरोधसाम्, च, मुख्यम्, माम्, विद्धि, पार्थ, बृहस्पतिम्,
सेनानीनाम्, अहम्, स्कन्दः, सरसाम्, अस्मि, सागरः।।24।।

अनुवाद : (पुरोधसाम्) पुरोहितोंमें (मुख्यम्) मुखिया (बृहस्पतिम्) बृहस्पति (माम्) मुझको (विद्धि) जान। (पार्थ) हे पार्थ! (अहम्) मैं (सेनानीनाम्) सेनापतियोंमें (स्कन्दः) स्कन्द (च) और (सरसाम्) जलाशयोंमें (सागरः) समुद्र (अस्मि) हूँ। (24)

अध्याय 10 का श्लोक 25

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।२५।

महर्षीणाम्, भृगुः, अहम्, गिराम्, अस्मि, एकम्, अक्षरम्,
यज्ञानाम्, जपयज्ञः, अस्मि, स्थावराणाम्, हिमालयः।।25।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (महर्षीणाम्) महर्षियोंमें (भृगुः) भृगु और (गिराम्) शब्दोंमें (एकम्) एक (अक्षरम्) अक्षर अर्थात् ओंकार (अस्मि) हूँ। (यज्ञानाम्) सब प्रकारके यज्ञोंमें (जपयज्ञः) जपयज्ञ और (स्थावराणाम्) स्थिर रहनेवालोंमें (हिमालयः) हिमालय पहाड़ (अस्मि) हूँ। (25)

अध्याय 10 का श्लोक 26

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः। २६।

अश्वत्थः, सर्ववृक्षाणाम्, देवर्षीणाम्, च, नारदः,
गन्धर्वाणाम्, चित्ररथः, सिद्धानाम्,कपिलः,मुनिः।।26।।

अनुवाद : (सर्ववृक्षाणाम्) सब वृक्षोंमें (अश्वत्थः) पीपलका वृक्ष (देवर्षीणाम्) देवर्षियोंमें (नारदः) नारद मुनि, (गन्धर्वाणाम्) गन्धर्वोंमें (चित्ररथः) चित्ररथ (च) और (सिद्धानाम्) सिद्धोंमें (कपिलः) कपिल (मुनिः) मुनि। (26)

अध्याय 10 का श्लोक 27

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्। २७।

उच्चैः, श्रवसम्, अश्वानाम्, विद्धि, माम्, अमृतोद्भवम्,
ऐरावतम्, गजेन्द्राणाम्, नराणाम्, च, नराधिपम्।।27।।

अनुवाद : (अश्वानाम्) घोड़ोंमें (अमृतोद्भवम्) अमृतके साथ उत्पन्न होनेवाला (उच्चैःश्रवसम्) उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, (गजेन्द्राणाम्) श्रेष्ठ हाथियोंमें (ऐरावतम्) ऐरावत नामक हाथी (च) और (नराणाम्) मनुष्योंमें (नराधिपम्) राजा (माम्) मुझको (विद्धि) जान। (27)

अध्याय 10 का श्लोक 28

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः। २८।

आयुधानाम्, अहम्, वज्रम्, धेनूनाम्, अस्मि, कामधुक्,
प्रजनः, च, अस्मि, कन्दर्पः, सर्पाणाम्, अस्मि, वासुकिः।।28।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (आयुधानाम्) शस्त्रोंमें (वज्रम्) वज्र और (धेनूनाम) गौओंमें (कामधुक्) कामधेनु (अस्मि) हूँ। (प्रजनः) शास्त्रोक्त रीतिसे सन्तानकी उत्पतिका हेतु (कन्दर्पः) कामदेव (अस्मि) हूँ (च) और (सर्पाणाम्) सर्पोंमें (वासुकिः) सर्पराज वासुकि (अस्मि) हूँ। (28)

अध्याय 10 का श्लोक 29

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्। २९।

अनन्तः, च, अस्मि, नागानाम्, वरुणः, यादसाम्, अहम्,
पितॄणाम्, अर्यमा, च, अस्मि, यमः, संयमताम्, अहम्।।29।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (नागानाम्) नागोंमें (अनन्तः) शेषनाग (च) और (यादसाम्) जलचरोंका

अधिपति (वरुणः) वरुण देवता (अस्मि) हूँ (च) और (पितृणाम्) पितरोंमें (अर्यमा) अर्यमा नामक पितर तथा (संयमताम्) शासन करनेवालोंमें (यमः) यमराज (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ। (29)

अध्याय 10 का श्लोक 30

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्। ३०।

प्रहलादः, च, अस्मि, दैत्यानाम्, कालः, कलयताम्, अहम्,
मृगाणाम्, च, मृगेन्द्रः, अहम्, वैनतेयः, च, पक्षिणाम्।।30।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (दैत्यानाम्) दैत्योंमें (प्रहलादः) प्रहलाद (च) और (कलयताम्) गणना करनेवालोंका (कालः) समय (अस्मि) हूँ (च) तथा (मृगाणाम्) पशुओंमें (मृगेन्द्रः) मृगराज सिंह (च) और (पक्षिणाम्) पक्षियोंमें (अहम्) मैं (वैनतेयः) गरुड़। (30)

अध्याय 10 का श्लोक 31

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्त्रोतसामस्मि जाह्नवी। ३१।

पवनः, पवताम्, अस्मि, रामः, शस्त्रभृताम्, अहम्,
झषाणाम्, मकरः, च, अस्मि, स्त्रोतसाम्, अस्मि, जाह्नवी।।31।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (पवताम्) पवित्र करनेवालोंमें (पवनः) वायु और (शस्त्रभृताम्) शस्त्रधारियोंमें (रामः) श्रीराम (अस्मि) हूँ तथा (झषाणाम्) मछलियोंमें (मकरः) मगर (अस्मि) हूँ (च) और (स्त्रोतसाम्) नदियोंमें (जाह्नवी) गंगा (अस्मि) हूँ। (31)

अध्याय 10 का श्लोक 32

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्। ३२।

सर्गाणाम्, आदिः, अन्तः, च, मध्यम्, च, एव, अहम्, अर्जुन,
अध्यात्मविद्या, विद्यानाम्, वादः, प्रवदताम्, अहम्।।32।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (सर्गाणाम्) सृष्टियोंका (आदिः) आदि (च) और (अन्तः) अन्त (च) तथा (मध्यम्) मध्य भी (अहम्) मैं (एव) ही हूँ। (अहम्) मैं (विद्यानाम्) विद्याओंमें (अध्यात्मविद्या) अध्यात्मविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या और (प्रवदताम्) परस्पर विवाद करनेवालोंका (वादः) तत्व-निर्णयके लिये किया जानेवाला वाद हूँ। (32)

अध्याय 10 का श्लोक 33

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः। ३३।

अक्षराणाम्, अकारः, अस्मि, द्वन्द्वः, सामासिकस्य, च,
अहम्, एव, अक्षयः, कालः, धाता, अहम्, विश्वतोमुखः।।33।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (अक्षराणाम्) अक्षरोंमें (अकारः) ओंकार हूँ (च) और (सामासिकस्य) समासोंमें (द्वन्द्वः) द्वन्द्व नाम समास (अस्मि) हूँ, (अक्षयः) समाप्त न होने वाला (कालः) काल तथा (विश्वतोमुखः) सब ओर मुखवाला विराट्स्वरूप (धाता) धारण करनेवाला भी (अहम्) मैं (एव) ही। (33)

अध्याय 10 का श्लोक 34

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा। ३४।

मृत्युः, सर्वहरः, च, अहम्, उद्भवः, च, भविष्यताम्,
कीर्तिः, श्रीः, वाक्, च, नारीणाम्, स्मृतिः, मेधा, धृतिः, क्षमा।।34।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (सर्वहरः) सबका नाश करनेवाला (मृत्युः) मृत्यु (च) और (भविष्यताम्) उत्पन्न होनेवालोंका (उद्भवः) उत्पत्ति-हेतु हूँ (च) तथा (नारीणाम्) स्त्रियोंमें (कीर्तिः) कीर्ति, (श्रीः) श्री, (वाक्) वाक्, (स्मृतिः) स्मृति, (मेधा) मेधा, (धृतिः) धृति (च) और (क्षमा) क्षमा हूँ। (34)

अध्याय 10 का श्लोक 35

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः। ३५।

बृहत्साम, तथा, साम्नाम्, गायत्री, छन्दसाम्, अहम्,
मासानाम्, मार्गशीर्षः, अहम्, ऋतूनाम्, कुसुमाकरः।।35।।

अनुवाद : (तथा) तथा (साम्नाम्) गायन करनेयोग्य श्रुतियोंमें (अहम्) मैं (बृहत्साम) बृहत्साम और (छन्दसाम्) छन्दोंमें (गायत्री) गायत्री छन्द हूँ तथा (मासानाम्) महीनोंमें (मार्गशीर्षः) मार्गशीर्ष और (ऋतूनाम्) ऋतुओंमें (कुसुमाकरः) वसन्त (अहम्) मैं। (35)

अध्याय 10 का श्लोक 36

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्। ३६।

द्यूतम्, छलयताम्, अस्मि, तेजः, तेजस्विनाम्, अहम्,
जयः, अस्मि, व्यवसायः, अस्मि, सत्वम्, सत्ववताम्, अहम्।।36।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (छलयताम्) छल करनेवालोंमें (द्यूतम्) जूआ और (तेजस्विनाम्) प्रभावशाली पुरुषोंका (तेजः) प्रभाव (अस्मि) हूँ। (अहम्) मैं (जयः) विजय (अस्मि) हूँ। (व्यवसायः) निश्चय और (सत्त्ववताम्) सात्त्विक पुरुषोंका (सत्त्वम्) सात्त्विक भाव (अस्मि) हूँ। (36)

अध्याय 10 का श्लोक 37

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः। ३७।

वृष्णीनाम्, वासुदेवः, अस्मि, पाण्डवानाम्, धनजयः,
मुनीनाम्, अपि, अहम्, व्यासः, कवीनाम्, उशना, कविः।।37।।

अनुवाद : (वृष्णीनाम्) वृष्णिवंशियोंमें (वासुदेवः) वासुदेव अर्थात् मैं स्वयं तेरा सखा (पाण्डवानाम्) पाण्डवोंमें (धनजयः) धनजय अर्थात् तू, (मुनीनाम्) मुनियोंमें (व्यासः) वेदव्यास और (कवीनाम्) कवियोंमें (उशना) शुक्राचार्य (कविः) कवि (अपि) भी (अहम्) मैं ही (अस्मि) हूँ। (37)

अध्याय 10 का श्लोक 38

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्। ३८।

दण्डः, दमयताम्, अस्मि, नीतिः, अस्मि, जिगीषताम्,
मौनम्, च, एव, अस्मि, गुह्यानाम्, ज्ञानम्, ज्ञानवताम्, अहम्।।38।।

अनुवाद : (दमयताम्) दमन करनेवालोंका (दण्डः) दण्ड अर्थात् दमन करनेकी शक्ति (अस्मि) हूँ, (जिगीषताम्) जीतनेकी इच्छावालोंकी (नीतिः) नीति (अस्मि) हूँ, (गुह्यानाम्) गुप्त रखने योग्य भावोंका रक्षक (मौनम्) मौन (अस्मि) हूँ (च) और (ज्ञानवताम्) ज्ञानवानोंका (ज्ञानम्) ज्ञान (अहम्) मैं (एव) ही। (38)

अध्याय 10 का श्लोक 39

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्। ३९।

यत्, च, अपि, सर्वभूतानाम्, बीजम्, तत्, अहम्, अर्जुन,
न, तत्, अस्ति, विना, यत्, स्यात्, मया भूतम्, चराचरम्।।39।।

अनुवाद : (च) और (अर्जुन) हे अर्जुन! (यत्) जो (सर्वभूतानाम्) सब प्राणियोंकी (बीजम्) उत्पत्तिका कारण है, (तत्) वह (अपि) भी (अहम्) मैं ही हूँ क्योंकि ऐसा (तत्) वह (चराचरम्) चर और अचर कोई भी (भूतम्) प्राणी (न) नहीं (अस्ति) है, (यत्) जो (मया) मुझसे (विना) रहित (स्यात्) हो। (39)

अध्याय 10 का श्लोक 40

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया। ४०।

न, अन्तः, अस्ति, मम, दिव्यानाम्, विभूतीनाम्, परन्तप,
एषः, तु, उद्देशतः, प्रोक्तः, विभूतेः, विस्तरः, मया।।40।।

अनुवाद : (परन्तप) हे परंतप! (मम) मेरी (दिव्यानाम्) दिव्य (विभूतीनाम्) विभूतियोंका (अन्तः) अन्त (न) नहीं (अस्ति) है (मया) मैंने अपनी (विभूतेः) विभूतियोंका (एषः) यह (विस्तरः) विस्तार (तु) तो तेरे लिये (उद्देशतः) एकदेशसे अर्थात् संक्षेपसे (प्रोक्तः) कहा है। (40)

अध्याय 10 का श्लोक 41

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्। ४१।

यत्, यत्, विभूतिमत्, सत्वम्, श्रीमत्, ऊर्जितम्, एव, वा,
तत्, तत्, एव अवगच्छ, त्वम्, मम्, तेजोंशसम्भवम्।। 41।।

अनुवाद : (यत्) जो (यत्) जो (एव) भी (विभूतिमत्) विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त (श्रीमत्) उच्च नियमित विचार (वा) और (ऊर्जितम्) शक्तियुक्त (सत्वम्) वस्तु है (तत्) उस (तत्) उसको (त्वम्) तू (मम्) मेरे (तेजोंश सम्भवम् एव) तेजके अंशकी ही अभिव्यक्ति (अवगच्छ) जान। (41)

अध्याय 10 का श्लोक 42

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्। ४२।

अथवा, बहुना, एतेन, किम्, ज्ञातेन्, तव, अर्जुन,
विष्टभ्य, अहम्, इदम्, कृत्स्नम्, एकांशेन, स्थितः, जगत्।।42।।

अनुवाद : (अथवा) अथवा (अर्जुन) हे अर्जुन! (एतेन) इसे (बहुना) बहुत (ज्ञातेन) जाननेसे (तव) तेरा (किम्) क्या प्रयोजन है (अहम्) मैं (इदम्) इस (कृत्स्नम्) सम्पूर्ण (जगत्) जगतको अपनी योगशक्तिके (एकांशेन) एक अंशमात्रसे (विष्टभ्य) धारण करके (स्थितः) स्थित हूँ। (41)

(इति अध्याय दशवाँ)

❑❑❑

❁ ग्यारहवां अध्याय ❁

।। सारांश।।

।। अर्जुन द्वारा भगवान काल की वास्तविकता जानने की प्रार्थना।।

अध्याय 11 के श्लोक 1 से 4 में अर्जुन ने पूछा कि जो आपने नाना प्रकार से अपनी स्थिति बताई, यह मैं ठीक से नहीं समझ पाया, क्योंकि मेरी बुद्धि तुच्छ है। मैं जो आपको अपना साला मानता था वह मोह भी नष्ट हो गया है, क्योंकि अर्जुन डर गया था कि यह कोई और बला है। इसीलिए अर्जुन ने कहा आपकी महिमा अनन्त है। कृप्या आप वास्तव में क्या हो? आप अपना वास्तविक अविनाशी रूप दिखाने की कृप्या करें।

।। अर्जुन को भगवान (काल) द्वारा दिव्य दृष्टि प्रदान करना तथा अपना वास्तविक काल रूप दिखाना।।

अध्याय 11 के श्लोक 5 से 8 तक में भगवान (काल) कह रहा है कि वह रूप तू (अर्जुन) इन आँखों से नहीं देख सकता। इसलिए तुझे दिव्य दृष्टि देता हूँ। अब देख। यह कह कर भगवान (काल) ने अपना वास्तविक काल रूप दिखाया तथा बताया कि देख जहाँ-2 जिसका स्थान मेरे शरीर में है।

विचार करें :- जैसे प्रत्येक टेलीविजन (टी.वी.) में कार्यक्रम देखें जा सकते हैं, ऐसे ही एक ब्रह्मण्ड का सर्व विवरण प्रत्येक मानव-देव आदि शरीरों में देखा जा सकता है।

।। संजय द्वारा काल रूप का वर्णन।।

अध्याय 11 के श्लोक 9 से 14 में वर्णन है कि संजय द्वारा विश्वरूप (काल रूप) का वर्णन :- कई नेत्रों, कई मुखों वाला तथा शस्त्रों सहित कई हाथों वाला असीम काल (विराट) रूप अर्जुन ने देखा। हजारों सूर्य एक साथ उदय हो जाएँ ऐसे तेजोमय रूप में अर्जुन ने शरीर को देखा। यह सब देखते हुए काल देव से आश्चर्य चकित तथा हर्षित होते हुए बोला।

।। अर्जुन द्वारा काल रूप का आँखों देखा हाल।।

अध्याय 11 के श्लोक 21 में अर्जुन आँखों देखा हाल कह रहा है कि वे ही देवताओं के समूह आपमें भयभीत हो कर प्रवेश कर रहे हैं। कुछ भयभीत हो कर हाथ जोड़े आपके गुणों का उच्चारण (कीर्तन) करते हैं, ऋषियों-सिद्धों का समुदाय कल्याण हो! ऐसा कहकर उत्तम-2 स्त्रोतों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं अर्थात् आप अपने उपासको को भी खा रहे हो। अध्याय 11 के श्लोक 15 से 30 तक में अर्जुन कह रहा है कि हे देव! आपके शरीर में सम्पूर्ण देवताओं तथा प्राणियों के समूह को तथा कमल पर ब्रह्मा को तथा सम्पूर्ण ऋषियों को देख रहा हूँ। और आपको कई भुजाओं, पेट, मुख और नेत्रों से युक्त देखता हूँ। परंतु इसका कोई वार-पार नहीं देख रहा हूँ तथा आपके इस भंयकर रूप को देख रहा हूँ।

अन्य आपको हैरान होकर देख रहे हैं तथा व्याकुल हो रहे हैं। मैं (अर्जुन) भी व्याकुल हो रहा हूँ। चूंकि हे विष्णो! आपके भयंकर रूप को देखकर मैं बहुत डर गया हूँ। धीरज व शांति नहीं पा रहा

हूँ तथा वे सब धृतराष्ट्र के पुत्र व राजाओं का समुदाय आपमें प्रवेश कर रहा है। कई तो बहुत वेग (स्पीड) से आपके मुख में जा रहे हैं तथा कुछ आपकी दाढ़ो द्वारा कुचले जा रहे हैं, कुछ दाँतों में लगे हुए दिखाई दे रहे हैं। और जैसे नदियाँ समुद्र में गिर रही हों ऐसे मनुष्य लोक (पृथ्वी लोक) के वीर (योद्धा) भी आपमें प्रवेश कर रहे हैं। तथा जैसे पतंग अग्नि पर गिरते हैं ऐसे सब प्राणी (देव-ऋषि-सिद्ध- आम जीव सहित) आपके मुख में प्रवेश कर रहे हैं और आप सम्पूर्ण लोकों (ब्रह्मा-लोक, विष्णु-लोक, शिव-लोक तथा सर्व चौदह लोकों समेत) को खा (ग्रास) रहे हो और बार-2 चाट रहे हो। आपके शरीर की अग्नि सम्पूर्ण जगत को जला रही है।

।। अर्जुन पूछता है कि आप वास्तव में कौन हो?।।

अध्याय 11 के श्लोक 31 में अर्जुन पूछता है कि हे उग्ररूप वाले देवश्रेष्ठ! आपको नमस्कार हो। कृप्या मुझे बताईये कि वास्तव में आप कौन हैं? मैं विशेष रूप से जानना चाहता हूँ।

।। भगवान स्वयं अपने आप को काल बताता है।।

अध्याय 11 के श्लोक 32 में काल भगवान कह रहा है कि मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ काल हूँ। इस समय लोकों को नष्ट करने के लिए आया (प्रकट हुआ) हूँ। जो प्रतिपक्षियों की सेना में स्थित योद्धा लोग हैं वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात् मैं खा जाऊँगा। अध्याय 11 के श्लोक 33,34 में कहा है कि अतःएव तू उठ, यश प्राप्त कर, शत्रुओं को जीत कर धन-धान्य से सम्पन्न राज्य को भोग। ये सब पहले ही मेरे द्वारा मारे हुए हैं। अर्जुन (सव्यसाचिन - बाँए हाथ से भी बाण चलाने का अभ्यास होने से ''सव्यसाची'' नाम अर्जुन का पड़ा) तू केवल निमित्त मात्र बन जा। तू वैरियों को जीतेगा। युद्ध कर। अध्याय 11 के श्लोक 35 में संजय ने कहा कांपता हुआ अर्जुन भयभीत हो कर प्रणाम करता हुआ भगवान कृष्ण (क्योंकि अर्जुन मान रहा था यह कृष्ण है परंतु वह तो काल था) के प्रति गद्-गद् वाणी बोला - (अध्याय 11 श्लोक 36 में) हे अन्तर्यामी! भयभीत राक्षस दिशाओं में भाग रहे हैं। सिद्धगणों का समूह नमस्कार कर रहा है। अध्याय 11 के श्लोक 37,38 में अर्जुन कह रहा है कि हे ब्रह्मा के भी आदिकर्त्ता महान आत्मा! आपको क्यों न नमस्कार करें? हे जगन्निवास! आप सत्-असत् उनसे भी परे अक्षर वह आप हैं। (डरता अर्जुन काल को सर्वस्व कह रहा है) अध्याय 11 के श्लोक 39 में अर्जुन कह रहा है कि आप ही ब्रह्मा के पिता हैं (अर्थात् काल ही ब्रह्मा का पिता हैं) आपको बार-2 नमस्कार हो। अध्याय 11 के श्लोक 40 से 44 तक में अर्जुन कह रहा है कि मेरे से भूल हो गई कि मैंने आपको सीधा नाम से हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे (साथी) अर्थात् साला इस प्रकार हठात् कहा तथा आम साथियों के सामने ऐसा कह कर अपमानित किया। मैं क्षमा चाहता हूँ। आप सबसे बड़े गुरु हैं। आपसे बड़ा कोई नहीं है। मैं आप ईश्वर को प्रणाम तथा प्रार्थना करता हूँ। आप क्षमा करो। आप हमारे सर्व अपराध सहन करने वाले हो। यह सब वचन अर्जुन विशेष भयभीत हो कर कह रहा है। अध्याय 11 के श्लोक 45 में अर्जुन कह रहा है कि पहले न देखे हुए आपके इस विराट (काल) रूप को देख कर मैं (अर्जुन) हर्षित हो रहा हूँ और मेरा मन भय से अति व्याकुल भी हो रहा है। आप उस देव रूप को मुझे दिखाईये। हे देवेश! हे जगन्निवास! प्रसन्न होईए। अध्याय 11 के श्लोक 46 में अर्जुन कह रहा है कि मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किए हुए, गदा चक्र हाथ में लिए हुए देखना चाहता हूँ। हे विश्वरूप! सहस्राबाहो (हजार भुजा वाले) उसी चतुर्भुज रूप में प्रकट होईए।

।। ब्रह्म (काल) भगवान की प्राप्ति अति असंभव।।

अध्याय 11 के श्लोक 47 में काल भगवान ने कहा है कि हे अर्जुन! मैंने प्रसन्न होकर यह सीमा रहित विराट (आदि काल) रूप आपको दिखाया है, जिसे तेरे अतिरिक्त पहले किसी ने नहीं देखा था।

48 में कहा है कि हे अर्जुन! मनुष्य लोक में इस प्रकार (विश्वरूप वाला) मैं न वेदों के अध्ययन से अर्थात् वेदों में वर्णित विधि से साधना करने से, न यज्ञों से, न दान से, न क्रियाओं से और न उग्र तपों से तेरे अतिरिक्त दूसरे द्वारा देखा जा सकता हूँ। अर्थात् मैं (काल कह रहा है) किसी भी प्रकार की साधना से किसी द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता।

विचार करें :-- भगवान काल (ब्रह्म) स्पष्ट करता है कि मेरी प्राप्ति असम्भव है। महाभारत में प्रमाण मिलता है कि जब भगवान कृष्ण कौरव- पाण्डवों का समझौता करवाने के लिए गए थे तो दुर्योधन उलटा बोला था। तब श्री कृष्ण जी ने विराट रूप दिखाया था। फिर यहाँ पर कह रहा है कि अर्जुन तेरे अतिरिक्त किसी ने मेरा यह विराट रूप पहले नहीं देखा। इससे सिद्ध है कि यह रूप काल ने दिखाया था। वह महाभारत में श्री कृष्ण जी ने दिखाया था। इसलिए गीता श्री कृष्ण जी ने नहीं बोली, यह काल (ब्रह्म) ने बोली थी। दोनों विराट रूपों में बहुत अंतर था और विचार पूर्वक सोचें तो संजय भी विराट रूप को आँखों देख कर धृतराष्ट्र को बता रहा है। फिर यह कहना कि तेरे अतिरिक्त किसी के द्वारा नहीं देखा जा सकता। यही सिद्ध करता है कि काल भगवान ने गीता का ज्ञान दिया है न कि श्री कृष्ण जी ने।

अध्याय 11 के श्लोक 49 में भगवान कह रहा है कि अर्जुन तू मूर्खों की तरह इस विकराल रूप को देख कर डर मत। भय रहित होकर उसी (चतुर्भुज रूप को) रूप को फिर देख। अध्याय 11 के श्लोक 50 में संजय कह रहा है कि फिर भगवान ने मनुष्य (कृष्ण) रूप में हो कर डरे हुए अर्जुन को आश्वासन दिया। अध्याय 11 के श्लोक 51 में अर्जुन ने कहा है कि हे जनार्दन! आपको पहले चतुर्भुज रूप में फिर अब मनुष्य रूप में देख कर अब स्वाभाविक स्थिति में (भय रहित) हो गया हूँ।

।। चतुर्भुज महाविष्णु रूप में काल के भी दर्शन वेदों, तप, दान यज्ञ आदि से नहीं केवल अनन्य भक्ति से।।

अध्याय 11 के श्लोक 52,53 में भगवान (काल) कह रहा है कि यह मेरा जो रूप (चतुर्भुज रूप) देखा इसके दर्शन भी बहुत ही दुर्लभ हैं। देवता भी इस रूप के दर्शन को सदा ही तरसते हैं। यह चतुर्भुज रूप भी न वेदों में वर्णित विधि से, न तप से, न दान से और न यज्ञ से देखा जा सकता है अर्थात् इस चतुर्भुज रूप का दर्शन अति असम्भव है। क्योंकि काल भगवान ब्रह्म लोक में महाविष्णु रूप में चतुर्भुज रूप में रहता है। वहाँ पर पहुँच कर ही काल को चतुर्भुज रूप में देखा जा सकता है। ब्रह्म लोक में जिस स्थान पर काल (ब्रह्म) तीन गुप्त स्थानों पर महाब्रह्मा-महाविष्णु तथा महाशिव रूप में रहता है वहाँ पर वेदों में वर्णित विधि से नहीं जाया जा सकता। केवल ब्रह्मलोक में बने महास्वर्ग में ही जाया जा सकता है। (अध्याय 9 के श्लोक 20,21 में प्रमाण है) इसलिए कहा है कि मेरे इस चतुर्भुज रूप को भी देखना बहुत दुर्लभ है परंतु यह रूप केवल अनन्य भक्ति अर्थात् केवल एक इष्ट (काल) की साधना से अन्य देवी-देवताओं की तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव (तीनों गुण - रज, सत, तम) की साधना छोड़ केवल ज्योति निरंजन के साधक महा स्वर्ग (ब्रह्मलोक) में काल को चतुर्भुज रूप में ही देख सकते हैं। विराट रूप तो किसी भी साधना से नहीं देखा जा सकता जो

काल भगवान का वास्तविक रूप है।

अध्याय 11 के श्लोक 54 में कहा है कि यह मेरा चतुर्भुज रूप भी (जो न वेदों से, न दान से, न तप से, न क्रियाओं से देखा जा सकता है) केवल अनन्य भक्ति से प्राप्त हो सकता है जो मुझे (मेरे महत्व को) तत्व से जानता है। भाव यह है कि अर्जुन तत्व से जान चुका था कि काल भगवान एक प्रबल शक्ति है। इसके अतिरिक्त कहीं ठिकाना नहीं है। सर्व जीवों को यही नचा रहा है। फिर भय युक्त होकर एक विशेष प्रेम वश उसी चतुर्भुज रूप तथा महात्मा (देवरूप चतुर्भुज) रूप को विशेष आस्था से (अनन्य मन से केवल एक भगवान काल में आसक्त होकर) देख रहा था। तब काल भगवान कहता है कि यह मेरा चतुर्भुज (महाविष्णु) रूप भी अनन्य भक्ति से देखा जा सकता है।

गीता अध्याय 11 श्लोक 54 का भावार्थ :-- गीता ज्ञान दाता प्रभु कह रहा है कि जो साधक मेरी भक्ति अनन्य मन से मेरे बताए मतानुसार करता है वह मुझे इस काल रूप में तथा चतुर्भुज रूप में उस समय देख सकता है जिस समय मैं इन्हें खाता हूँ। ये मेरे में प्रवेश करते हैं। अन्यथा किसी भी क्रिया व जाप-तप-यज्ञ आदि से जो मेरे द्वारा वेदों में बताई है मेरे दर्शन नहीं कर सकता। जैसे गीता अध्याय 11 श्लोक 21 में अर्जुन आँखों देखा हाल बता रहा है कि हे भगवन्! जो ऋषिजन तथा देवता लोग व सिद्धों के समुदाय आप की स्तुति वेद मन्त्रों द्वारा कर रहे हैं आप उन सर्व को खा रहे है। वे आप के इस काल रूप को देख कर भयभीत हो रहे हैं। इसी का प्रमाण यहाँ गीता अध्याय 11 श्लोक 54 में है की मेरा साधक मेरे जाल में रह जाता है। अपनी साधना का वर्णन गीता ज्ञान दाता ने वेदों में ही वर्णन किया है। यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 15 तथा वेदों का ज्ञान सारांश रूप में श्री मद्भगवत् गीता है। जिस के अध्याय 8 श्लोक 13 में तथा अध्याय 3 श्लोक 10 से 13 में कहा है कि मेरा एक ओं अक्षर है तथा यज्ञ है जो अनन्य मन से मुझे इष्ट मानकर साधना करता है वह मुझे ही प्राप्त होता है। इसी को अनन्य भक्ति कहा है। इससे मोक्ष नहीं है। न ही काल प्रभु के दर्शन प्राप्ति। केवल मृत्यु पश्चात् जब वह काल प्रभु प्रतिदिन एक लाख मानव शरीरधारी प्राणियों को खाता है। उस समय वह कभी विराट रूप में दर्शन देता है। कभी चतुर्भुज रूप में महाविष्णु रूप में। उसी का विवरण इस अध्याय 11 श्लोक 54 में है। ब्रह्म का अनन्य साधक ब्रह्मलोक में इसी काल के महाविष्णु रूप में चतुर्भुज रूप में दर्शन करता है। जिसे देवता भी नहीं देख सकते।

एक टीकाकार ने अनुवाद किया है कि मेरा वही विराट रूप वेदोंसे, तपों से, दान से, क्रिया से देखा व प्राप्त नहीं किया जा सकता परंतु अनन्य मन से देखा जा सकता है। जो ठीक नहीं है। चूंकि वेदों में वर्णित साधना के अतिरिक्त साधना तो शास्त्रविरूद्ध है जो गीता अध्याय 16 श्लोक 23 में मना किया है तथा विराट रूप का वर्णन तो अध्याय 11 के श्लोक 47,48 में समाप्त हो चुका है। काल भगवान कह रहा है यह मेरा विराट रूप न तो तेरे अतिरिक्त पहले किसी ने देखा तथा न ही तेरे अतिरिक्त किसी के द्वारा भविष्य में देखा जा सकता है। जब अर्जुन ने काल रूप से अति भयभीत हो कर कहा है कि (गीता जी के अध्याय 11 के श्लोक 46,47 में) आप अपना चतुर्भुज रूप गदा-चक्र हाथ में लिए हुए हे विश्वरूप! हे हजार भुजा (सहस्राबाहु) वाले उसी चतुर्भुज रूप से प्रकट होईए। फिर गीता जी के अध्याय 11 के श्लोक 49 में कहा है कि मेरे इस भंयकर रूप से डर मत। फिर से मेरे उसी (विष्णु) शांत रूप को देख। यदि विकराल रूप को फिर से देखने को कहने का क्या तात्पर्य? वह तो अर्जुन देख ही रहा था। फिर गीता जी के अध्याय 11 के श्लोक 50 में कहा है कि यह कह कर वासुदेव भगवान ने वैसे ही अपने महात्मा (देव रूप चतुर्भुज रूप जैसा अर्जुन देखना चाहता था) रूप को दिखाया तथा फिर मनुष्य (कृष्ण) रूप में आकर भगवान ने कहा कि जो

यह चतुर्भुज रूप मैंने तुझे दिखाया इसको भी देवता लोग दर्शन को तरसते हैं।

फिर इसमें यह नहीं कहा कि यह किसी ने तेरे अतिरिक्त पहले नहीं देखा। क्योंकि त्रिलोकिय विष्णु भक्त ही जो अनन्य मन से केवल एक विष्णु का जाप करने वाले सामिप्य मुक्ति प्राप्त विष्णु लोक में विष्णु के चतुर्भुज रूप को देख सकते हैं। वरना विष्णु रूप तो आम भक्त देवता ने देख रखा है। जो विष्णु रूप अर्जुन को दिखाया तथा कहा कि जो मुझे तत्व से जानते हैं अर्थात् मेरे महास्वर्ग को महाविष्णु की महिमा को जानते हैं वे ही अनन्य मन से भक्ति करके मुझे प्राप्त कर सकते हैं। यज्ञ से, वेदों से, तपों से तथा दान से तो वह भी नहीं प्राप्त कर सकते। केवल स्वर्ग-नरक आदि में जाते हैं। {प्रमाण के लिए अध्याय 9 का श्लोक 20,21} जिस समय चतुर्भुज रूप में काल भगवान आए वह नूर श्री विष्णु जी (त्रिलोकिय जिसके श्री कृष्ण अवतार आए थे) से बहुत ज्यादा था। क्योंकि काल एक हजार कला का है, श्री विष्णु जी (कृष्ण) केवल 16 कला के हैं। एक तो 16 वाट की टयूब हो और एक हो एक हजार वाट की। दोनों टयूब ही नजर आती हैं। परंतु रोशनी में जमीन-आसमान का अंतर है। इससे सिद्ध है कि काल (ब्रह्म) साधना सिद्धि भी एक ॐ मन्त्र को गुरु जी से लेकर अनन्य भक्ति (देवी-देवताओं, माई-मसानी, सेढ-शितला, भेरों भूत, हनुमान को भूलकर केवल एक इष्ट में पतिव्रता की तरह रह कर अव्याभिचारिणी भक्ति) से ही हो सकती है। तब वह अनन्य भक्ति युक्त साधक भगवान काल की कृप्या से ही उसके चतुर्भुज रूप के दर्शन ब्रह्मलोक में कर सकता है, जहाँ इसने सतोगुण प्रधान क्षेत्र बना कर एक और विष्णु लोक बना रखा है। कबीर परमात्मा के ज्ञान को सन्त गरीबदास जी ने बताया है कि वेदों के पढ़ने वाले जो ॐ नाम को मुख्य रूप में जाप नहीं करते इसके अतिरिक्त वेदों का पाठ, वेदों में वर्णित यज्ञ-तप-दान आदि करते है या अन्य क्रियाएं करते हैं वे काल भगवान के चतुर्भज (महाविष्णु) रूप को भी नहीं देख सकते अर्थात् उन्हें ब्रह्मलोक भी प्राप्त नही होता। वे साधक स्वर्ग में या विष्णु लोक में बने स्वर्ग में चले जाते हैं। ब्रह्म की अनन्य भक्ति एक ओं अक्षर से होती है। इस के साथ कोई अन्य अक्षर नहीं जोड़ा जाता। जैसे हरि ओम् आदि। केवल यज्ञ आदि करने से भी ब्रह्मलोक प्राप्त नहीं होता। ॐ मन्त्र के जाप रूपी बीज को यज्ञ रूपी खाद व जल द्वारा उगाया व पकाया जाता है। जिस से ब्रह्म की प्राप्ति अर्थात् ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। जहाँ पर ब्रह्म महाविष्णु रूप में चतुर्भुज रूप में रहता है। वह साधना तत्वदर्शी सन्त द्वारा प्राप्त करने से सफल होती है। ॐ नाम का जाप एक ब्रह्म को ही इष्ट रूप में जानकर करने से अनन्य भक्ति कहलाती है। इसी से ब्रह्मलोक प्राप्ति होती है। परन्तु मृत्यु के पश्चात् ब्रह्म साधक तप्तशिला पर अवश्य जाता है। तत्पश्चात् कर्म अनुसार ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। फिर महाकल्प के पश्चात् पुनः पृथ्वी पर अन्य योनियों में जन्म लेता है। पूर्ण मोक्ष प्राप्त नहीं होता। सन्त गरीबदास जी ने कहा है :--

ऋग,यजु:,साम, अथर्व भाषै जामें नाम मूल नहीं राखै।

रामायण में प्रमाण है कि तुलसी दास जी कहते हैं कि -

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरो पारा।।

कबीर साहेब कहते हैं कि -

कबीर, कलियुग में जीवन थोड़ा है, करले बेग सम्भार। योग साधना नहीं बन सकै, केवल नाम आधार।।

इससे सिद्ध है कि अन्य साधना से नहीं केवल नाम से मुक्ति है।

कई भक्त जन व संत जन कहते हैं कि अनन्य मन से भक्ति का भाव है कि राग-द्वेष, काम-क्रोध को त्याग कर भक्ति करें। इन विकारों को मारने के लिए तो भक्ति करते हैं। यदि ये ही

समाप्त हो जाएं तो आत्मा का वास्तविक निर्विकार अस्तित्व हो जाएगा जो परमात्मा के तुल्य है। इन विकारों को ठीक करने का उपाय है एक ईश्वर के एक नाम का आसरा अन्य देवी-देवताओं का नहीं। गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि -

आत्म और परमात्मा, एकै नूर जहूर। बिच में झांई कर्म की, तातें कहिए दूर।।

अध्याय 11 के श्लोक 55 में भगवान कह रहे हैं कि हे अर्जुन! जो मेरे द्वारा बताए मार्ग (मतानुसार) भक्ति साधना (कर्म) करने वाला मतावलम्बी भक्त (साधक) आसक्ति रहित है, वह मेरा आसक्ति रहित भक्त तथा सर्व प्राणियों से वैर भाव रहित है मुझको प्राप्त होता है। क्योंकि मतानुसार अर्थात् वेदों में वर्णित साधना के अनुसार (क्योंकि ब्रह्म साधना का मत (विचार) वेदों में वर्णन है या अब गीता जी में) *जो साधक साधना करता है वह उत्तम साधक कहलाता है। वह भी काल को ही प्राप्त होता है अर्थात् काल (ज्योति निरंजन) के जाल में ही रहता है। अन्य साधना जो शास्त्रानुकूल नहीं है उसको करने वाले पापी तथा राक्षस स्वभाव के कहे हैं। गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15, गीता जी के अध्याय 16 के श्लोक 23,24 ।*

विचार करें :-- भगवान कह रहे हैं कि जो वैर भाव रहित भक्त है वही मुझे प्राप्त कर सकता है तथा स्वयं कह रहे हैं कि युद्ध कर अर्जुन। वैर बिना युद्ध अति असम्भव। विशेष बात है कि गीता जी के अध्याय 1 के श्लोक 30 से 39 व 46, अध्याय 2 के श्लोक 4,5 में अर्जुन वैर रहित है तथा कहता है कि मैं युद्ध नहीं करूँगा। इससे अच्छा तो भीख मांग कर गुजारा कर लूँगा। फिर प्रहलाद से प्यार तथा हिरणाकशिपु से वैर भगवान का स्वसिद्ध है।

कृप्या पाठक विचार करें कि गीता का ज्ञान सही है। परंतु निर्विकारी होना न भगवान ब्रह्मा के वश, न भगवान विष्णु के क्योंकि भगवान शिव की रक्षार्थ भस्मासुर को गंडहथ नाच नचा कर भस्म कर दिया। भस्मासुर से वैर तथा श्री शिव जी से राग प्रत्यक्ष है। भगवान भी निर्विकार नहीं हो सके। विकार रहित तथा पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति तो कबीर साहेब द्वारा बताई विधि से ही हो सकती है। इसी का वर्णन गीता अध्याय 8 श्लोक 28 में है कि पूर्ण ज्ञान होने पर तत्वदर्शी सन्त द्वारा बताए भक्ति मार्ग का अनुसरण करने वाला साधक वेदों में वर्णित भक्ति को ब्रह्म में त्याग कर इस से भी आगे के पद अर्थात् सत्य लोक स्थान को प्राप्त करने वाले ज्ञान के आधार से साधना करता है।

❑❑❑

।।ग्यारहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथैकादशोऽध्यायः

अध्याय 11 का श्लोक 1(अर्जुन उवाच)

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसञ्ज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ।१।

मदनुग्रहाय, परमम्, गुह्यम्, अध्यात्मसञ्ज्ञितम्,
यत्, त्वया, उक्तम्, वचः, तेन, मोहः, अयम्, विगतः, मम।।1।।

अनुवाद : (त्वया) आपने (अनुग्रहाय) कृप्या करने के लिए (मत्) शास्त्रों के अनुकूल विचार (यत्) जो (परमम्) श्रेष्ठ (गुह्यम्) गुप्त (अध्यात्मसञ्ज्ञितम्) अध्यात्मिकविषयक (वचः) वचन अर्थात् उपदेश (उक्तम्) कहा (तेन) उससे (मम) मेरा (अयम्) यह (मोहः) मोह (विगतः) नष्ट हो गया। (1)

अध्याय 11 का श्लोक 2

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ।२।

भवाप्ययौ, हि, भूतानाम्, श्रुतौ, विस्तरशः, मया,
त्वत्तः, कमलपत्राक्ष, माहात्म्यम्, अपि, च, अव्ययम्।।2।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (कमलपत्राक्ष) हे कमलनेत्र! (मया) मैंने (त्वत्तः) आपसे (भूतानाम्) प्राणियोंकी (भवाप्ययौ) उत्पति और प्रलय (विस्तरशः) विस्तारपूर्वक (श्रुतौ) सुने हैं (च) तथा आपकी (अव्ययम्) अविनाशी (माहात्म्यम्) महिमा (अपि) भी सुनी है। (2)

अध्याय 11 का श्लोक 3

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम।३।

एवम्, एतत्, यथा, आत्थ, त्वम्, आत्मानम्, परमेश्वर,
द्रष्टुम्, इच्छामि, ते, रूपम्, ऐश्वरम्, पुरुषोत्तम।।3।।

अनुवाद : (परमेश्वर) हे परमेश्वर! (त्वम्) आप (आत्मानम्) अपनेको (यथा) जैसा (आत्थ) कहते हैं (एतत्) यह ठीक (एवम्) ऐसा ही है परंतु (पुरुषोत्तम) हे पुरुषोत्तम्! (ते) आपके (ऐश्वरम्, रूपम्) ज्ञान, ऐश्वर्य, याक्ति, बल, वीर्य और तेजसे युक्त ईश्वरीय-रूपको मैं प्रत्यक्ष (द्रष्टुम्) देखना (इच्छामि) चाहता हूँ। (3)

अध्याय 11 का श्लोक 4

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्।४।

मन्यसे, यदि, तत्, शक्यम्, मया, द्रष्टुम्, इति, प्रभो,
योगेश्वर, ततः, मे, त्वम्, दर्शय, आत्मानम्, अव्ययम्।।4।।

अनुवाद : (प्रभो) हे प्रभो! (यदि) यदि (मया) मेरेद्वारा (तत्) आपका वह रूप (द्रष्टुम्) देखा जाना (शक्यम्) शक्य है (इति) ऐसा (मन्यसे) आप मानते हैं (ततः) तो (योगेश्वर) हे योगेश्वर! (त्वम्) आप (आत्मानम् अव्ययम्) असली अविनाशी स्वरूप के (मे) मुझे (दर्शय) दर्शन कराइये। (4)

अध्याय 11 का श्लोक 5(श्री भगवान उवाच)

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्त्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च। ५ ।

पश्य, मे, पार्थ, रूपाणि, शतशः, अथ, सहस्त्रशः,
नानाविधानि, दिव्यानि, नानावर्णाकृतीनि, च।।5।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (अथ) अब तू (मे) मेरे (शतशः, सहस्त्रशः) सैकड़ों हजारों (नानाविधानि) नाना प्रकारके (च) और (नानावर्णाकृतीनि) नाना वर्ण तथा नाना आकृतिवाले (दिव्यानि) अलौकिक (रूपाणि) रूपोंको (पश्य) देख। (5)

अध्याय 11 का श्लोक 6

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत। ६ ।

पश्य, आदित्यान्, वसून्, रुद्रान्, अश्विनौ, मरुतः, तथा,
बहूनि, अदृष्टपूर्वाणि, पश्य, आश्चर्याणि, भारत।।6।।

अनुवाद : (भारत) हे भरतवंशी अर्जुन! मुझमें (आदित्यान्) आदित्योंको अर्थात् अदितिके द्वादश पुत्रोंको (वसून्) आठ वसुओंको (रुद्रान्) एकादश रुद्रोंको (अश्विनौ) दोनों अश्विनीकुमारोंको और (मरुतः) उनचास मरुद्गणोंको (पश्य) देख (तथा) तथा और भी (बहूनि) बहुत से (अदृष्टपूर्वाणि) पहले न देखे हुए (आश्चर्याणि) आश्चर्यमय रूपोंको (पश्य) देख। (6)

अध्याय 11 का श्लोक 7

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि। ७ ।

इह, एकस्थम्, जगत्, कृत्स्नम्, पश्य, अद्य, सचराचरम्,
मम, देहे, गुडाकेश, यत्, च, अन्यत्, द्रष्टुम्, इच्छसि।।7।।

अनुवाद : (गुडाकेश) हे अर्जुन! (अद्य) अब (इह) इस (मम) मेरे (देहे) शरीरमें (एकस्थम्) एक जगह स्थित (सचराचरम्) चराचरसहित (कृत्स्नम्) सम्पूर्ण (जगत्) जगत्को (पश्य) देख तथा (अन्यत्) और (च) भी (यत्) जो कुछ (द्रष्टुम्) देखना (इच्छसि) चाहता हो सो देख। (7)

अध्याय 11 का श्लोक 8

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्। ८ ।

न, तु, माम्, शक्यसे, द्रष्टुम्, अनेन, एव, स्वचक्षुषा,
दिव्यम्, ददामि, ते, चक्षुः, पश्य, मे, योगम्, ऐश्वरम्।।8।।

अनुवाद : (तु) परंतु (माम्) मुझको तू (अनेन) इन (स्वचक्षुषा) अपने प्राकृत नेत्रोंद्वारा (द्रष्टुम्)

देखनेमें (एव) निःसंदेह (न,शक्यसे) समर्थ नहीं है इसीसे मैं (ते) तुझे (दिव्यम्) दिव्य अर्थात् अलौकिक (चक्षुः) चक्षु (ददामि) देता हूँ उससे तू (मे) मेरी (ऐश्वरम्) ईश्वरीय (योगम्) योगशक्तिको (पश्य) देख। (8)

अध्याय 11 का श्लोक 9(संजय उवाच)

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्। ९ ।

एवम्, उक्त्वा, ततः, राजन्, महायोगेश्वरः, हरिः,
दर्शयामास, पार्थाय, परमम्, रूपम्, ऐश्वरम्।।9।।

अनुवाद : (राजन्) हे राजन्! (महायोगेश्वरः) महायोगेश्वर और (हरिः) भगवान्ने (एवम्) इस प्रकार (उक्त्वा) कहकर (ततः) उसके पश्चात् (पार्थाय) अर्जुनको (परमम्) परम (ऐश्वरम्) ऐश्वर्ययुक्त (रूपम्) स्वरूप (दर्शयामास) दिखलाया। (9)

अध्याय 11 का श्लोक 10.11

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्। १०।

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम्। ११।

अनेकवक्त्रनयनम्, अनेकाद्भुतदर्शनम्,
अनेकदिव्याभरणम्, दिव्यानेकोद्यतायुधम्।।10।।
दिव्यमाल्याम्बरधरम्, दिव्यगन्धानुलेपनम्,
सर्वाश्चर्यमयम्, देवम्, अनन्तम्, विश्वतोमुखम्।।11।।

अनुवाद : (अनेकवक्त्रनयनम्) अनेक मुख और नेत्रोंसे युक्त (अनेकाद्भुतदर्शनम्) अनेक अद्भुत दर्शनोंवाले (अनेकदिव्याभरणम्) बहुत से दिव्य भूषणोंसे युक्त और (दिव्यानेकोद्यतायुधम्) बहुत से दिव्य शस्त्रोंको हाथोंमें उठाये हुए (दिव्य माल्याम्बरधरम्) दिव्य माला और वस्त्रोंको धारण किये हुए और (दिव्यगन्धानुलेपनम्) दिव्य गन्धका सारे शरीरमें लेप किये हुए (सर्वाश्चर्यमयम्) सब प्रकारके आश्चयर्कोंसे युक्त (अनन्तम्) सीमारहित और (विश्वतोमुखम्) सब ओर मुख किये हुए विराट्स्वरूप (देवम्) भगवान को अर्जुनने देखा। (10-11)

अध्याय 11 का श्लोक 12

दिवि सूर्यसहस्त्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः। १२।

दिवि, सूर्यसहस्त्रस्य, भवेत्, युगपत्, उत्थिता,
यदि, भाः, सदृशी, सा, स्यात्, भासः, तस्य, महात्मनः।।12।।

अनुवाद : (दिवि) आकाशमें (सूर्यसहस्त्रस्य) हजार सूर्योके (युगपत्) एक साथ (उत्थिता) उदय होनेसे उत्पन्न जो (भाः) प्रकाश (भवेत्) हो (सा) वह भी (तस्य) उस (महात्मनः) परमात्माके (भासः) प्रकाशके (सदृशी) सदृश (यदि) कदाचित् ही (स्यात्) हो। (12)

अध्याय 11 का श्लोक 13

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा।१३।

तत्र, एकस्थम्, जगत्, कृत्स्नम्, प्रविभक्तम्, अनेकधा,
अपश्यत्, देवदेवस्य, शरीरे, पाण्डवः, तदा।।13।।

अनुवाद : (पाण्डवः) पाण्डुपुत्र अर्जुनने (तदा) उस समय (अनेकधा) अनेक प्रकार से (प्रविभक्तम्) विभक्त अर्थात् पृथक्-पृथक् (कृत्स्नम्) सम्पूर्ण (जगत्) जगत्को (देवदेवस्य) देवोंके देव श्रीकृष्णभगवान्के (तत्र) उस (शरीरे) शरीरमें (एकस्थम्) एक जगह स्थित (अपश्यत्) देखा। (13)

अध्याय 11 का श्लोक 14

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत।१४।

ततः, सः, विस्मयाविष्टः, हृष्टरोमा, धनजयः,
प्रणम्य, शिरसा, देवम्, कृताजलिः, अभाषत।। 14।।

अनुवाद : (ततः) उसके अनन्तर (सः) वह (विस्मयाविष्टः) आश्चर्यसे चकित और (हृष्टरोमा) पुलकित शरीर (धनजयः) अर्जुन (देवम्) काल देव से (शिरसा) सिरसे (प्रणम्य) प्रणाम करके (कृताजलिः) हाथ जोड़कर (अभाषत) बोला। (14)

अध्याय 11 का श्लोक 15(अर्जुन उवाच)

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्।१५।

पश्यामि, देवान्, तव, देव, देहे, सर्वान्, तथा, भूतविशेषसंघान्, ब्रह्माणम्,
ईशम्, कमलासनस्थम्, ऋषीन्, च, सर्वान्, उरगान्, च, दिव्यान्।।15।।

अनुवाद : (देव) हे देव! (तव) आपके (देहे) शरीरमें (सर्वान्) सम्पूर्ण (देवान्) देवोंको (तथा) तथा (भूतविशेषसंघान्) अनेक भूतोंके समुदायोंको (कमलासनस्थम्) कमलके आसनपर विराजित (ब्रह्माणम्) ब्रह्माको (ईशम्) महादेवको (च) और (सर्वान्) सम्पूर्ण (ऋषीन्) ऋषियोंको (च) तथा (दिव्यान्) दिव्य (उरगान्) सर्पोंको (पश्यामि) देखता हूँ। (15)

अध्याय 11 का श्लोक 16

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं-
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं-
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप।१६।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम्, पश्यामि, त्वाम्, सर्वतः, अनन्तरूपम्, न, अन्तम्,
न, मध्यम्, न, पुनः, तव, आदिम्, पश्यामि, विश्वेश्वर, विश्वरूप।।16।।

अनुवाद : (विश्वेश्वर) हे सम्पूर्ण विश्वके स्वामिन्! (त्वाम्) आपको (अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम्) अनेक भुजा, पेट, मुख और नेत्रोंसे युक्त तथा (सर्वतः) सब ओरसे (अनन्तरूपम्) अनन्त रूपोंवाला (पश्यामि) देखता हूँ। (विश्वरूप) हे विश्वरूप! मैं (तव) आपके (न) न (अन्तम्) अन्तको (पश्यामि) देखता हूँ (न) न (मध्यम्) मध्यको (पुनः) और (न) न (आदिम्) आदिको ही। (16)

अध्याय 11 का श्लोक 17

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ।१७।

किरीटिनम्, गदिनम्, चक्रिणम्, च, तेजोराशिम्, सर्वतः, दीप्तिमन्तम्,
पश्यामि, त्वाम्, दुर्निरीक्ष्यम्, समन्तात्, दीप्तानलार्कद्युतिम्, अप्रमेयम्।।17।।

अनुवाद : (त्वाम्) आपको मैं (किरीटिनम्) मुकुटयुक्त (गदिनम्) गदायुक्त (च) और (चक्रिणम्) चक्रयुक्त तथा (सर्वतः) सब ओरसे (दीप्तिमन्तम्) प्रकाशमान (तेजोराशिम्) तेज पुंज के (दीप्तानलार्कद्युतिम्) प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के सदृश ज्योतियुक्त (दुर्निरीक्ष्यम्) कठिनतासे देखे जाने योग्य और (समन्तात्) सब ओरसे (अप्रमेयम्) अप्रमेयस्वरूप (पश्यामि) देखता हूँ। (17)

अध्याय 11 का श्लोक 18

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं-
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।१८।

त्वम्, अक्षरम्, परमम्, वेदितव्यम्, त्वम्, अस्य, विश्वस्य, परम्, निधानम्, त्वम्,
अव्ययः, शाश्वतधर्मगोप्ता, सनातनः, त्वम्, पुरुषः, मतः, मे।।18।।

अनुवाद : (त्वम्) आप ही (वेदितव्यम्) जानने योग्य (परमम्) परम (अक्षरम्) अक्षर अर्थात् परब्रह्म परमात्मा हैं (त्वम्) आप ही (अस्य) इस (विश्वस्य) जगत्के (परम्) परम (निधानम्) आश्रय हैं (त्वम्) आप ही (शाश्वतधर्मगोप्ता) अनादि धर्मके रक्षक हैं और (त्वम्) आप ही (अव्ययः) अविनाशी (सनातनः) सनातन (पुरुषः) पुरुष हैं ऐसा (मे) मेरा (मतः) मत है। (18)

अध्याय 11 का श्लोक 19

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं-
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्।१९।

अनादिमध्यान्तम्, अनन्तवीर्यम्, अनन्तबाहुम्, शशिसूर्यनेत्रम्,
पश्यामि, त्वाम्, दीप्तहुताशवक्त्रम्, स्वतेजसा, विश्वम्, इदम्, तपन्तम्।।19।।

अनुवाद : (त्वाम्) आपको (अनादिमध्यान्तम्) आदि, अन्त और मध्यसे रहित, (अनन्तवीर्यम्) अनन्त सामर्थ्यसे युक्त (अनन्तबाहुम्) अनन्त भुजावाले (शशिसूर्यनेत्रम्) चन्द्र सूर्यरूप नेत्रोंवाले

(दीप्तहुताशवक्त्रम्) प्रज्वलित अग्निरूप मुखवाले और (स्वतेजसा) अपने तेजसे (इदम्) इस (विश्वम्) जगत्को (तपन्तम्) संतप्त करते हुए (पश्यामि) देखता हूँ। (19)

अध्याय 11 का श्लोक 20

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं-
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्। २०।

द्यावापृथिव्योः, इदम्, अन्तरम्, हि, व्याप्तम्, त्वया, एकेन, दिशः, च, सर्वाः,
दृष्टवा, अद्भुतम्, रूपम्, उग्रम्, तव, इदम्, लोकत्रयम्, प्रव्यथितम्, महात्मन्।।20।।

अनुवाद : (महात्मन्) हे महात्मन्! (इदम्) यह (द्यावापृथिव्योः, अन्तरम्) स्वर्ग और पृथ्वीके बीचका सम्पूर्ण आकाश (च) तथा (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाएँ (एकेन) एक (त्वया) आपसे (हि) ही (व्याप्तम्) परिपूर्ण हैं तथा (तव) आपके (इदम्) इस (अद्भुतम्) अलौकिक और (उग्रम्) भयंकर (रूपम्) रूपको (दृष्टवा) देखकर (लोकत्रयम्) तीनों लोक (प्रव्यथितम्) अति व्यथाको प्राप्त हो रहे हैं। (20)

अध्याय 11 का श्लोक 21

अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः। २१।

अमी, हि, त्वाम्, सुरसंघा, विशन्ति, केचित्, भीताः।
प्राजलयः, गृणन्ति, स्वस्ति, इति, उक्त्वा, महर्षिसिद्धसंघाः,
स्तुवन्ति, त्वाम्, स्तुतिभिः, पुष्कलाभिः।।21।।

अनुवाद : (अमी) वे ही (सुरसंघा हि) देवताओंके समूह (त्वाम्) आपमें (विशन्ति) प्रवेश करते हैं और (केचित्) कुछ (भीताः) भयभीत होकर (प्राजलयः) हाथ जोड़े (गृणन्ति) उच्चारण करते हैं तथा (महर्षिसिद्धसंघाः) महर्षि और सिद्धोंके समुदाय (स्वस्ति) 'कल्याण हो' (इति) ऐसा (उक्त्वा) कहकर (पुष्कलाभिः) उत्तम-उत्तम (स्तुतिभिः) स्तोत्रोंद्वारा (त्वाम्) आपकी (स्तुवन्ति) स्तुति करते हैं। फिर भी आप उन्हें खा रहे हो। (21)

अध्याय 11 का श्लोक 22

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या-
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा-
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे। २२।

रुद्रादित्याः, वसवः, ये, च, साध्याः, विश्वे, अश्विनौ, मरुतः, च, ऊष्मपाः,
च, गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः, वीक्षन्ते, त्वाम्, विस्मिताः, च, एव, सर्वे।।22।।

अनुवाद : (ये) जो (रुद्रादित्याः) ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य (च) और (वसवः) आठ वसु,

(साध्याः) साधकगण, (विश्वे) विश्वेदेव, (अश्विनौ) अश्विनीकुमार (च) तथा (मरुतः) मरुदग्ण (च) और (ऊष्मपाः) पितरोंका समुदाय (च) तथा (गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा) गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धोंके समुदाय हैं वे (सर्वे) सब (एव) ही (विस्मिताः) विस्मित होकर (त्वाम्) आपको (वीक्षन्ते) देखते हैं। (22)

अध्याय 11 का श्लोक 23

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं-
महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं-
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्।२३।

रूपम्, महत्, ते, बहुवक्त्रनेत्रम्, महाबाहो, बहुबाहूरुपादम्,
बहूदरम्, बहुदंष्ट्राकरालम्, दृष्टवा, लोकाः, प्रव्यथिताः, तथा, अहम्।।23।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे महाबाहो (ते) आपके (बहुवक्त्रनेत्रम्) बहुत मुख और नेत्रोंवाले (बहुबाहूरुपादम्) बहुत हाथ, जंघा और पैरोंवाले (बहूदरम्) बहुत उदरोंवाले और (बहुदंष्ट्राकरालम्) बहुत-सी दाढ़ोंके कारण अत्यन्त विकराल (महत्) महान् (रूपम्) रूपको (दृष्टवा) देखकर (लोकाः) सब लोग (प्रव्यथिताः) व्याकुल हो रहे हैं (तथा) तथा (अहम) मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ। (23)

अध्याय 11 का श्लोक 24

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं-
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो।२४।

नभःस्पृशम्, दीप्तम्, अनेकवर्णम्, व्यात्ताननम्, दीप्तविशालनेत्रम्,
दृष्टवा, हि, त्वाम्, प्रव्यथितान्तरात्मा, धृतिम्, न, विन्दामि, शमम्, च, विष्णो।।24।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (विष्णो) हे विष्णो! (नभःस्पृशम्) आकाशको स्पर्श करनेवाले, (दीप्तम्) देदीप्यमान, (अनेकवर्णम्) अनेक वर्णोंसे युक्त तथा (व्यात्ताननम्) फैलाये हुए मुख और (दीप्तविशालनेत्रम्) प्रकाशमान विशाल नेत्रोंसे युक्त (त्वाम्) आपको (दृष्टवा) देखकर (प्रव्यथितान्तरात्मा) भयभीत अन्तःकरणवाला मैं (धृतिम्) धीरज (च) और (शमम्) शान्ति (न) नहीं (विन्दामि) पाता हूँ। (24)

अध्याय 11 का श्लोक 25

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास।२५।

दंष्ट्राकरालानि, च, ते, मुखानि, दृष्टवा, एव, कालानलसन्निभानि,
दिशः, न, जाने, न, लभे, च, शर्म, प्रसीद, देवेश, जगन्निवास।।25।।

अनुवाद : (दंष्ट्राकरालानि) दाढ़ोंके कारण विकराल (च) और (कालानलसन्निभानि)

प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित (ते) आपके (मुखानि) मुखोंको (दृष्टवा) देखकर मैं (दिशः) दिशाओंको (न) नहीं (जाने) जानता हूँ (च) और (शर्म) सुख (एव) भी (न) नहीं (लभे) पाता हूँ इसलिए (देवेश) हे देवेश! (जगन्निवास) हे जगन्निवास! आप (प्रसीद) प्रसन्न हों। (25)

अध्याय 11 का श्लोक 26.27

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः। २६।

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।

केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः। २७।

अमी, च, त्वाम्, धृतराष्ट्रस्य, पुत्राः, सर्वे, सह, एव, अवनिपालसंघैः,
भीष्मः, द्रोणः, सूतपुत्रः, तथा, असौ, सह, अस्मदीयैः, अपि, योधमुख्यैः।।26।।
वक्त्राणि, ते, त्वरमाणाः, विशन्ति, दंष्ट्राकरालानि, भयानकानि, केचित्,
विलग्नाः, दशनान्तरेषु, संदृश्यन्ते, चूर्णितैः, उत्तमांगैः।।27।।

अनुवाद : (अमी) वे (सर्वे, एव) सभी (धृतराष्ट्रस्य) धृतराष्ट्रके (पुत्राः) पुत्र (अवनिपालसंघैः, सह) राजाओंके समुदायसहित (त्वाम्) आपमें प्रवेश कर रहे हैं (च) और (भीष्मः) भीष्मपितामह, (द्रोणः) द्रोणाचार्य (तथा) तथा (असौ) वह (सूतपुत्रः) कर्ण और (अस्मदीयैः) हमारे पक्षके (अपि) भी (योधमुख्यैः) प्रधान योद्धाओंके (सह) सहित सबकेसब (ते) आपके (दंष्ट्राकरालानि) दाढ़ोंके कारण विकराल (भयानकानि) भयानक (वक्त्राणि) मुखोंमें (त्वरमाणाः) बड़े वेगसे दौड़ते हुए (विशन्ति) प्रवेश कर रहे हैं और (केचित्) कई एक (चूर्णितैः) चूर्ण हुए (उत्तमांगैः) सिरोंसहित आपके (दशनान्तरेषु) दाँतोंके बीचमें (विलग्नाः) लगे हुए (संदृश्यन्ते) दीख रहे हैं। (26,27)

अध्याय 11 का श्लोक 28

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा-
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति। २८।

यथा, नदीनाम्, बहवः, अम्बुवेगाः, समुद्रम्, एव, अभिमुखाः, द्रवन्ति, तथा,
तव, अमी, नरलोकवीराः, विशन्ति, वक्त्राणि, अभिविज्वलन्ति।।28।।

अनुवाद : (यथा) जैसे (नदीनाम्) नदियोंके (बहवः) बहुतसे (अम्बुवेगाः) जलके प्रवाह स्वाभाविक ही (समुद्रम्) समुद्रके (एव) ही (अभिमुखाः) सम्मुख (द्रवन्ति) दौड़ते हैं अर्थात् समुद्रमें प्रवेश करते हैं, (तथा) वैसे ही (अमी) वे (नरलोकवीराः) नरलोक अर्थात् इस पृथ्वी लोक के वीर भी (तव) आपके (अभिविज्वलन्ति) प्रज्वलित (वक्त्राणि) मुखोंमें (विशन्ति) प्रवेश कर रहे हैं। (28)

अध्याय 11 का श्लोक 29

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा-
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः।२९।

यथा, प्रदीप्तम्, ज्वलनम्, पतंगाः, विशन्ति, नाशाय, समृद्धवेगाः,
तथा, एव, नाशाय, विशन्ति, लोकाः, तव, अपि, वक्त्राणि, समृद्धवेगाः।।29।।

अनुवाद : (यथा) जैसे (पतंगाः) पतंग मोहवश (नाशाय) नष्ट होनेके लिये (प्रदीप्तम्) प्रज्वलित (ज्वलनम्) अग्निमें (समृद्धवेगाः) अति वेगसे दौड़ते हुए (विशन्ति) प्रवेश करते हैं, (तथा) वैसे (एव) ही ये (लोकाः) सब लोग (अपि) भी (नाशाय) अपने नाशके लिये (तव) आपके (वक्त्राणि) मुखोंमें (समृद्धवेगाः) अति वेगसे दौड़ते हुए (विशन्ति) प्रवेश कर रहे हैं। (29)

अध्याय 11 का श्लोक 30

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं-
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो।३०।

लेलिह्यसे, ग्रसमानः, समन्तात्, लोकान्, समग्रान्, वदनैः, ज्वलद्भिः,
तेजोभिः, आपूर्य, जगत्, समग्रम्, भासः, तव, उग्राः, प्रतपन्ति, विष्णो।।30।।

अनुवाद : (समग्रान्) सम्पूर्ण (लोकान्) लोकोंको (ज्वलद्भिः) प्रज्वलित (वदनैः) मुखोंद्वारा (ग्रसमानः) ग्रास करते हुए (समन्तात्) सब ओरसे (लेलिह्यसे) बार-बार चाट रहे हैं, (विष्णो) हे विष्णो! (तव) आपका (उग्राः) भयानक (भासः) प्रकाश (समग्रम्) सम्पूर्ण (जगत्) जगत्को (तेजोभिः) तेजके द्वारा (आपूर्य) परिपूर्ण करके (प्रतपन्ति) तपा रहा है। (30)

अध्याय 11 का श्लोक 31

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो-
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं-
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्।३१।

आख्याहि, मे, कः, भवान्, उग्ररूपः, नमः, अस्तु, ते, देववर, प्रसीद, विज्ञातुम्,
इच्छामि, भवन्तम्, आद्यम्, न, हि, प्रजानामि, तव, प्रवृत्तिम्।।31।।

अनुवाद : (मे) मुझे (आख्याहि) बतलाइये कि (भवान्) आप (उग्ररूपः) उग्ररूपवाले (कः) कौन हैं? (देववर) हे देवोंमें श्रेष्ठ! (ते) आपको (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो आप (प्रसीद) प्रसन्न होइये। (आद्यम्) आदियम अर्थात् पुरातन काल (भवन्तम्) आपको मैं (विज्ञातुम्) विशेषरूपसे जानना (इच्छामि) चाहता हूँ (हि) क्योंकि मैं (तव) आपकी (प्रवृत्तिम्) प्रवृत्तिको (न) नहीं (प्रजानामि) जानता। (31)

अध्याय 11 का श्लोक 32(भगवान उवाच)

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो-
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः। ३२।

कालः, अस्मि, लोकक्षयकृत्, प्रवृद्धः, लोकान्, समाहर्तुम्, इह, प्रवृत्तः,
ऋते, अपि, त्वाम्, न, भविष्यन्ति, सर्वे, ये, अवस्थिताः, प्रत्यनीकेषु, योधाः।।32।।

अनुवाद : (लोकक्षयकृत्) लोकोंका नाश करनेवाला (प्रवृद्धः) बढ़ा हुआ (कालः) काल (अस्मि) हूँ। (इह) इस समय (लोकान्) इन लोकोंको (समाहर्तुम्) नष्ट करने के लिये (प्रवृत्तः) प्रकट हुआ हूँ इसलिये (ये) जो (प्रत्यनीकेषु) प्रतिपक्षियोंकी सेनामें (अवस्थिताः) स्थित (योधाः) योद्धा लोग हैं, (ते) वे (सर्वे) सब (त्वाम्) तेरे (ऋते) बिना (अपि) भी (न) नहीं (भविष्यन्ति) रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करनेसे भी इन सबका नाश हो जायेगा। (32)

अध्याय 11 का श्लोक 33

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्। ३३।

तस्मात्, त्वम्, उत्तिष्ठ, यशः, लभस्व, जित्वा, शत्रून्,
भुङ्क्ष्व, राज्यम्, समृद्धम्, मया, एव, एते, निहताः,
पूर्वम्, एव, निमित्तमात्रम्, भव, सव्यसाचिन्।33।।

अनुवाद : (तस्मात्) अतएव (त्वम्) तू (उत्तिष्ठ) उठ! (यशः) यश (लभस्व) प्राप्त कर और (शत्रून्) शत्रुओंको (जित्वा) जीतकर (समृद्धम्) धन-धान्यसे सम्पन्न (राज्यम्) राज्यको (भुङ्क्ष्व) भोग (एते) ये सब शूरवीर (पूर्वम्, एव) पहलेहीसे (मया) मेरे ही द्वारा (निहताः) मारे हुए हैं। (सव्यसाचिन्) हे सव्यसाचिन्! (निमित्तमात्रम्, एव) तू तो केवल निमित्तमात्र (भव) बन जा। (33)

अध्याय 11 का श्लोक 34

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा-
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्। ३४।

द्रोणम्, च, भीष्मम्, च, जयद्रथम्, च, कर्णम्, तथा, अन्यान्, अपि, योधवीरान्,
मया, हतान्, त्वम्, जहि, मा, व्यथिष्ठाः, युध्यस्व, जेतासि, रणे, सपत्नान्।।34।।

अनुवाद : (द्रोणम्) द्रोणाचार्य (च) और, (भीष्मम्) भीष्मपितामह (च) तथा (जयद्रथम्) जयद्रथ (च) और (कर्णम्) कर्ण (तथा) तथा (अन्यान्, अपि) और भी बहुत से (मया) मेरे द्वारा (हतान्) मारे हुए (योधविरान्) शूरवीर योद्धाओंको (त्वम्) तू (जहि) मार। (मा, व्यथिष्ठाः) भय मत

कर। (रणे) युद्धमें (सपत्नान्) वैरियोंको (जेतासि) जीतेगा। इसलिए (युध्यस्व) युद्ध कर। (34)

अध्याय 11 का श्लोक 35(संजय उवाच)

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं-
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य। ३५।

एतत्, श्रुत्वा, वचनम्, केशवस्य, कृताजलिः, वेपमानः, किरीटी, नमस्कृत्वा,
भूयः, एव, आह, कृष्णम्, सगद्गदम्, भीतभीतः, प्रणम्य।।35।।

अनुवाद : (केशवस्य) केशवभगवान्के (एतत्) इस (वचनम्) वचनको (श्रुत्वा) सुनकर (किरीटी) मुकुटधारी अर्जुन (कृताजलिः) हाथ जोड़कर (वेपमानः) काँपता हुआ (नमस्कृत्वा) नमस्कार करके, (भूयः) फिर (एव) भी (भीतभीतः) अत्यन्त भयभीत होकर (प्रणम्य) प्रणाम करके (कृष्णम्) भगवान् श्रीकृष्णके प्रति (सगद्गदम्) गदगद वाणीसे (आह) बोला -(35)

अध्याय 11 का श्लोक 36(अर्जुन उवाच)

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः। ३६।

स्थाने, हृषीकेश, तव, प्रकीर्त्या, जगत्, प्रहृष्यति, अनुरज्यते, च,
रक्षांसि, भीतानि, दिशः, द्रवन्ति, सर्वे, नमस्यन्ति, च, सिद्धसंघाः।।36।।

अनुवाद : (हृषीकेश) हे अन्तर्यामिन्! (स्थाने) यह योग्य ही है कि (तव) आपके (प्रकीर्त्या) नाम-गुण और प्रभावके कीर्तनसे (जगत्) जगत् (प्रहृष्यति) अति हर्षित हो रहा है (च) और (अनुरज्यते) अनुरागको भी प्राप्त हो रहा है तथा (भीतानि) भयभीत (रक्षांसि) राक्षसलोग (दिशः) दिशाओंमें (द्रवन्ति) भाग रहे हैं (च) और (सर्वे) सब (सिद्धसंघा) सिद्धगणोंके समुदाय (नमस्यन्ति) नमस्कार कर रहे हैं। (36)

अध्याय 11 का श्लोक 37

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्। ३७।

कस्मात्, च, ते, न, नमेरन्, महात्मन्, गरीयसे, ब्रह्मणः,
अपि, आदिकर्त्रे, अनन्त, देवेश, जगन्निवास,
त्वम्, अक्षरम्, सत्, असत्, तत्परम्, यत्।।37।।

अनुवाद : (महात्मन्) हे महात्मन्! (ब्रह्मणः) समर्थ प्रभु (अपि) भी (आदिकर्त्रे) आदिकर्त्ता भी है (च) और (गरीयसे) सबसे बड़े भी हैं (ते) आपके लिये ये (कस्मात्) कैसे (न, नमेरन्) नमस्कार न

करें क्योंकि (अनन्त) हे अनन्त! (देवेश) हे देवेश! (जगन्निवास) हे जगन्निवास! (यत्) जो (सत्) सत् (असत्) असत् और (तत्परम्) उनसे परे (अक्षरम्)अक्षर अर्थात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म हैं, वह (त्वम्) आप ही हैं। (37)

अध्याय 11 का श्लोक 38

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप।३८।

त्वम्, आदिदेवः, पुरुषः, पुराणः, त्वम्, अस्य, विश्वस्य,
परम्, निधानम्, वेत्ता, असि, वेद्यम्, च, परम्, च,
धाम, त्वया, ततम्, विश्वम्, अनन्तरूप।।38।।

अनुवाद : (त्वम्) आप (आदिदेवः) आदिदेव और (पुराणः) सनातन (पुरुषः) पुरुष हैं, (त्वम्) आप (अस्य) इस (विश्वस्य) जगत्के (परम्) परम (निधानम्) आश्रय (च) और (वेत्ता) जाननेवाले (च) तथा (वेद्यम्) जाननेयोग्य और (परम्) परम (धाम) धाम (असि) हैं। (अनन्तरूप) हे अनन्तरूप! (त्वया) आपसे यह सब (विश्वम्) जगत् (ततम्) व्याप्त अर्थात् परिपूर्ण है। (38)

अध्याय 11 का श्लोक 39

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते।३९।

वायुः, यमः, अग्निः, वरुणः, शशांक, प्रजापतिः, त्वम्, प्रपितामहः, च,
नमः, नमः, ते, अस्तु, सहस्त्रकृत्वः, पुनः, च, भूयः, अपि, नमः, नमः, ते।।39।।

अनुवाद : (त्वम्) आप (वायुः) वायु (यमः) यमराज (अग्निः) अग्नि (वरुणः) वरुण (शशांकः) चन्द्रमा (प्रजापतिः) प्रजाके स्वामी ब्रह्मा (च) और (प्रपितामहः) ब्रह्माके भी पिता हैं। (ते) आपके लिये (सहस्त्रकृत्वः) हजारों बार (नमः) नमस्कार! (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो!! (ते) आपके लिये (भूयः) फिर (अपि) भी (पुनः, च) बार-बार (नमः) नमस्कार! (नमः) नमस्कार!!(39)

अध्याय 11 का श्लोक 40

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं-
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः।४०।

नमः, पुरस्तात्, अथ, पृष्ठतः, ते, नमः, अस्तु, ते, सर्वतः, एव, सर्व,
अनन्तवीर्य, अमितविक्रमः, त्वम्, सर्वम्, समाप्नोषि, ततः, असि, सर्वः।।40।।

अनुवाद : (अनन्तवीर्य) हे अनन्त सामर्थ्यवाले! (ते) आपके लिये (पुरस्तात्) आगेसे (अथ) और (पृष्ठतः) पीछेसे भी (नमः) नमस्कार (सर्व) हे सर्वात्मन्! (ते) आपके लिये (सर्वतः) सब ओरसे

(एव) ही (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो क्योंकि (अमितविक्रमः) अनन्त पराक्रमशाली (त्वम्) आप (सर्वम्) सब संसारको (समाप्नोषि) व्याप्त किये हुए हैं (ततः) इससे आप ही (सर्वः) सर्वरूप (असि) हैं। (40)

अध्याय 11 का श्लोक 41, 42

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं-
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं-
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि। ४१।

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं-
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्। ४२।
पितासि लोकस्य चराचरस्य

सखा, इति, मत्वा, प्रसभम्, यत्, उक्तम्, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे,
इति, अजानता, महिमानम्, तव, इदम्, मया, प्रमादात्, प्रणयेन, वा, अपि।।41।।
यत्, च, अवहासार्थम्, असत्कृतः, असि, विहारशय्यासनभोजनेषु,
एकः, अथवा, अपि, अच्युत, तत्समक्षम्, तत्, क्षामये, त्वाम्, अहम्, अप्रमेयम्।।42।।

अनुवाद : (तव) आपके (इदम्) इस (महिमानम्) प्रभावको (अजानता) न जानते हुए आप मेरे (सखा) सखा हैं (इति) ऐसा (मत्वा) मानकर (प्रणयेन) प्रेमसे (वा) अथवा (प्रमादात्) प्रमादसे (अपि) भी (मया) मैंने (हे कृष्ण) हे कृष्ण (हे यादव) हे यादव! (हे सखे) हे सखे! (इति) इस प्रकार (यत्) जो कुछ बिना सोचे समझे (प्रसभम्) हठात् (उक्तम्) कहा है (च) और (अच्युत) हे अच्युत! आप (यत्) जो मेरे द्वारा (अवहासार्थम्) विनोदके लिये (विहारशय्यासनभोजनेषु) विहार, शय्या आसन और भोजनादिमें (एकः) अकेले (अथवा) अथवा (तत्समक्षम्) उन सखाओंके सामने (अपि) भी (असत्कृतः) अपमानित किये गये (असि) हैं (तत्) वह सब अपराध (अप्रमेयम्) अप्रमेयस्वरूप अर्थात् अचिन्त्य प्रभाववाले (त्वाम्) आपसे (अहम्) मैं (क्षामये) क्षमा करवाता हूँ। (41,42)

अध्याय 11 का श्लोक 43

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो-
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव । ४३।

पिता, असि, लोकस्य, चराचरस्य, त्वम्, अस्य, पूज्यः, च, गुरुः, गरीयान्,
न, त्वत्समः, अस्ति, अभ्यधिकः, कुतः, अन्यः, लोकत्रये, अपि, अप्रतिमप्रभाव।।43।।

अनुवाद : (त्वम्) आप (अस्य) इस (चराचरस्य) चराचर (लोकस्य) जगत्के (पिता) पिता (च) और (गरीयान्) सबसे बड़े (गुरुः) गुरु एवं (पूज्यः) अति पूजनीय (असि) हैं (अप्रतिमप्रभाव) हे अनुपम प्रभाववाले! (लोकत्रये) तीनों लाकोंमें (त्वत्समः) आपके समान (अपि) भी (अन्यः) दूसरा

कोई (न) नहीं (अस्ति) है फिर (अभ्यधिकः) अधिक तो (कुतः) कैसे हो सकता है। (43)

अध्याय 11 का श्लोक 44

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं-
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।४४।

तस्मात्, प्रणम्य, प्रणिधाय, कायम्, प्रसादये, त्वाम्, अहम्, ईशम्, ईड्यम्,
पिता, इव, पुत्रस्य, सखा, इव, सख्युः, प्रियः, प्रियायाः, अर्हसि, देव, सोढुम्।।44।।

अनुवाद : (तस्मात्) अतऐव प्रभो! (अहम्) मैं (कायम्) शरीरको (प्रणिधाय) भलीभाँति चरणोंमें निवेदित कर (प्रणम्य) प्रणाम करके (ईड्यम्) स्तुति करने योग्य (त्वाम्) आप (ईशम्) प्रभु को (प्रसादये) प्रसन्न होनेके लिये प्रार्थना करता हूँ (देव) हे देव! (पिता) पिता (इव) जैसे (पुत्रस्य) पुत्रके (सखा) सखा (इव) जैसे (सख्युः) सखाके और (प्रियः) प्रेमी पति जैसे (प्रियायाः) प्रियतमा पत्नीके अपराध सहन करते हैं वैसे ही आप भी मेरे अपराधको (सोढुम्) सहन करने (अर्हसि) योग्य हैं। (44)

अध्याय 11 का श्लोक 45

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपं-
प्रसीद देवेश जगन्निवास।४५।

अदृष्टपूर्वम्, हृषितः, अस्मि, दृष्टवा, भयेन, च, प्रव्यथितम्, मनः,
मे, तत्, एव, मे, दर्शय, देवरूपम्, प्रसीद, देवेश, जगन्निवास।।45।।

अनुवाद : (अदृष्टपूर्वम्) पहले न देखे हुए आपके इस आश्चर्यमय रूपको (दृष्टवा) देखकर (हृषितः) हर्षित (अस्मि) हो रहा हूँ (च) और (मे) मेरा (मनः) मन (भयेन) भयसे (प्रव्यथितम्) अति व्याकुल भी हो रहा है, इसलिए आप (तत्) उस अपने (देवरूपम्) चतुर्भुज विष्णुरूपको (एव) ही (मे) मुझे (दर्शय) दिखलाइये। (देवेश) हे देवेश! (जगन्निवास) हे जगन्निवास! (प्रसीद) प्रसन्न होइये। (45)

अध्याय 11 का श्लोक 46

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्त्रबाहो भव विश्वमूर्ते।४६।

किरीटिनम्, गदिनम्, चक्रहस्तम्, इच्छामि, त्वाम्, द्रष्टुम्, अहम्,
तथा, एव, तेन, एव, रूपेण, चतुर्भुजेन, सहस्त्रबाहो, भव, विश्वमूर्ते।।46।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (तथा) वैसे (एव) ही (त्वाम्) आपको (किरीटिनम्) मुकुट धारण किये हुए तथा (गदिनम् चक्रहस्तम्) गदा और चक्र हाथमें लिये हुए (द्रष्टुम्) देखना (इच्छामि) चाहता हूँ, (विश्वमूर्ते) हे विश्वस्वरूप! (सहस्रबाहो) हे सहस्रबाहो! आप (तेन एव) उसी (चतुर्भुजेन रूपेण) चतुर्भुजरूपसे प्रकट (भव) होइये। (46)

अध्याय 11 का श्लोक 47(भगवान उवाच)

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं-
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं-
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्।४७।

मया, प्रसन्नेन, तव, अर्जुन, इदम्, रूपम्, परम्, दर्शितम्, आत्मयोगात्,
तेजोमयम्, विश्वम्, अनन्तम्, आद्यम्, यत्, मे, त्वदन्येन, न, दृष्टपूर्वम्।।47।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (प्रसन्नेन) अनुग्रहपूर्वक (मया) मैंने (आत्मयोगात्) अपनी योगशक्तिके प्रभावसे (इदम्) यह (मे) मेरा (परम्) परम (तेजोमयम्) तेजोमय (आद्यम्) सबका आदि और (अनन्तम्) सीमारहित (विश्वम्) विराट् (रूपम्) रूप (तव) तुझको (दर्शितम्) दिखलाया है (यत्) जिसे (त्वदन्येन) तेरे अतिरिक्त दूसरे किसीने (न दृष्टपूर्वम्) पहले नहीं देखा था। (47)

अध्याय 11 का श्लोक 48

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर।४८।

न, वेदयज्ञाध्ययनैः, न, दानैः, न, च, क्रियाभिः, न, तपोभिः,
उग्रैः, एवंरूपः, शक्यः, अहम्, नृलोके, द्रष्टुम्, त्वदन्येन, कुरुप्रवीर।।48।।

अनुवाद : (कुरुप्रवीर) हे अर्जुन! (नृलोके) मनुष्यलोकमें (एवंरूपः) इस प्रकार विश्वरूपवाला (अहम्) मैं (न) न (वेदयज्ञाध्ययनैः) वेद अध्ययनसे, न यज्ञों से (न) न (दानैः) दानसे (न) न (क्रियाभिः) क्रियाओंसे (च) और (न) न (उग्रैः) उग्र (तपोभिः) तपोंसे ही (त्वदन्येन)तेरे अतिरिक्त दूसरेके द्वारा (द्रष्टुम्)देखा जा (शक्यः) सकता हूँ। (48)

अध्याय 11 का श्लोक 49

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो-
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं-
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य।४९।

मा, ते, व्यथा, मा, च, विमूढभावः, दृष्टवा, रूपम्, घोरम्, ईदृक्, मम, इदम्,
व्यपेतभीः, प्रीतमनाः, पुनः, त्वम्, तत्, एव, मे, रूपम्, इदम्, प्रपश्य।।49।।

अनुवाद : (मम) मेरे (ईदृक्) इस प्रकारके (इदम्) इस (घोरम्) विकराल (रूपम्) रूपको (दृष्टवा) देखकर (ते) तुझको (व्यथा) व्याकुलता (मा) नहीं होनी चाहिये (च) और (विमूढभावः)

मूढ़भाव भी (मा) नहीं होना चाहिये। (त्वम्) तू (व्यपेतभीः) भयरहित और (प्रीतमनाः) प्रीतियुक्त मनवाला होकर (तत्, एव) उसी (मे) मेरे (इदम्) इस (रूपम्) रूपको (पुनः) फिर (प्रपश्य) देख। (49)

अध्याय 11 का श्लोक 50(संजय उवाच)

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं-
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा।५०।

इति, अर्जुनम्, वासुदेवः, तथा, उक्त्वा, स्वकम्, रूपम्, दर्शयामास, भूयः,
आश्वासयामास, च, भीतम्, एनम्, भूत्वा, पुनः, सौम्यवपुः, महात्मा।।50।।

अनुवाद : (वासुदेवः) वासुदेव भगवान्ने (अर्जुनम्) अर्जुनके प्रति (इति) इस प्रकार (उक्त्वा) कहकर (भूयः) फिर (तथा) वैसे ही (स्वकम्) अपने (रूपम्) चतुर्भुज रूपको (दर्शयामास) दिखलाया (च) और (पुनः) फिर (महात्मा) महात्मा कृष्ण (सौम्यवपुः) सौम्यमूर्ति (भूत्वा) होकर (एनम्) इस (भीतम्) भयभीत अर्जुनको (आश्वासयामास) धीरज दिया। (50)

अध्याय 11 का श्लोक 51(अर्जुन उवाच)

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः।५१।

दृष्टवा, इदम्, मानुषम्, रूपम्, तव, सौम्यम्, जनार्दन,
इदानीम्, अस्मि, संवृत्तः, सचेताः, प्रकृतिम्, गतः।।51।।

अनुवाद : (जनार्दन) हे जनार्दन! (तव) आपके (इदम्) इस (सौम्यम्) अतिशान्त (मानषुम्, रूपम्) मनुष्य रूपको (दृष्टवा) देखकर (इदानीम्) अब मैं (सचेताः) स्थिर-चित्त (संवृत्तः) हो गया (अस्मि) हूँ और (प्रकृतिम्) अपनी स्वाभाविक स्थितिको (गतः) प्राप्त हो गया हूँ। (51)

अध्याय 11 का श्लोक 52(श्री भगवान उवाच)

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः।५२।

सुदुर्दर्शम्, इदम्, रूपम्, दृष्टवान्, असि, यत्, मम।
देवाः, अपि, अस्य, रूपस्य, नित्यम्, दर्शनकाङ्क्षिणः।।52।।

अनुवाद : (मम) मेरा (यत्) जो (रूपम्) चतुर्भुज रूप (दृष्टवान्) देखा (असि) है, (इदम्) यह (सुदुर्दर्शम्) सुदुर्दर्श है अर्थात् इसके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं। (देवाः) देवता (अपि) भी (नित्यम्) सदा (अस्य) इस (रूपस्य) रूपके (दर्शनकांङ्क्षिणः) दर्शनकी आकाङ्क्षा करते रहते हैं। (52)

अध्याय 11 का श्लोक 53

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।५३।

न, अहम्, वेदैः, न, तपसा, न, दानेन, न, च, इज्यया।
शक्यः, एवंविधः, द्रष्टुम्, दृष्टवान्, असि, माम्, यथा।।53।।

अनुवाद : (यथा) जिस प्रकार तुमने (माम्) मुझको (दृष्टवान्) चतुर्भुज रूप में देखा (असि) है (एवंविधः) इस प्रकार (अहम्) मैं (न) न (वेदैः) वेदोंसे (न) न (तपसा) तपसे (न) न (दानेन) दानसे (च) और (न) न (इज्यया) यज्ञसे ही (द्रष्टुम्) देखा (शक्यः) जा सकता हूँ। (53)

अध्याय 11 का श्लोक 54

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप।५४।

भक्त्या, तु, अनन्यया, शक्यः, अहम्, एवंविधः, अर्जुन।
ज्ञातुम्, द्रष्टुम्, च, तत्त्वेन्, प्रवेष्टुम्, च, परन्तप।।54।।

अनुवाद : (तु) परंतु (परन्तप) हे परन्तप (अर्जुन) अर्जुन! (अनन्यया, भक्त्या) अनन्यभक्ति के द्वारा (एवंविधः) इस प्रकार चतुर्भुज रूप में (अहम्) मैं (द्रष्टुम्) प्रत्यक्ष देखनेके लिये (च) और (तत्त्वेन) तत्वसे (ज्ञातुम्) जाननेके लिये (च) तथा (प्रवेष्टुम्) मेरे काल-जाल में भली-भाँति प्रवेश करनेके लिए (शक्यः) शक्य हूँ अर्थात् शुलभ हूँ। (54)

अध्याय 11 का श्लोक 55

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।५५।

मत्कर्मकृत्, मत्परमः, मद्भक्तः, संगवर्जितः,
निर्वैरः, सर्वभूतेषु, यः, सः, माम्, एति, पाण्डव।।55।।

अनुवाद : (पाण्डव) हे अर्जुन! (यः) जो (मत्कर्मकृत्) मेरे प्रति शास्त्रानुकूल सम्पूर्ण कर्त्तव्य-कर्मोंको करनेवाला है, (मत्परमः) मेरे मतानुसार श्रेष्ठ (मद्भक्तः) मतावलम्बी मेरा भक्त (संगवर्जितः) आसक्तिरहित है और (सर्वभूतेषु) सम्पूर्ण प्राणियोंमें (निर्वैरः) वैरभावसे रहित है (सः) वह (माम्) मुझको ही (एति) प्राप्त होता है। अर्थात् मेरे ब्रह्म लोक में बने महास्वर्ग में आ जाता है। जहाँ कभी-2 विष्णु रूप में यह काल दर्शन देता है। ब्रह्म काल को वास्तविक रूप में प्राप्त नहीं किया जा सकता। (55)

मतानुसार अर्थात् वेदों में वर्णित साधना के अनुसार {ब्रह्म साधना का मत(विचार) वेदों में वर्णन है या अब गीता जी में} जो साधक साधना करता है वह उत्तम साधक कहलाता है। क्योंकि अन्य साधना जो शास्त्रानुकूल नहीं है उसको करने वाले पापी तथा राक्षस स्वभाव के कहें हैं। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 18, 20 से 23 तक में विस्तृत विवरण कहा है तथा शास्त्र विधि को त्याग कर मनमाना आचरण अर्थात् मनमानी पूजा करना व्यर्थ है, (प्रमाण गीता जी के अध्याय 16 के श्लोक 23,24) वह भी काल को ही प्राप्त होता है अर्थात् काल(ज्योति निरंजन) के जाल में ही रहता है। पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करने की विधि से गीता बोलने वाला भगवान भी अपरिचित है। इसलिए कहा है कि तत्वदर्शी संतों को खोज(गीता अध्याय 4 श्लोक 34 तथा अध्याय 18 श्लोक 62)।

(इति अध्याय ग्यारहवाँ)

❑❑❑

बारहवां अध्याय

।। सारांश।।

विशेष - अध्याय 12 पूरा ब्रह्म साधना से होने वाले लाभ का परिचय देता है तथा अध्याय 13 पूर्ण ब्रह्म की महिमा से परिचित करवाता है।

अध्याय 12 के श्लोक 1 में अर्जुन पूछता है कि जो कोई आपको निरन्तर भजते हैं तथा जो अविनाशी अदृश परमेश्वर को अति उत्तम भाव से भजते हैं। उनमें योग वेता कौन हैं अर्थात् भक्ति मार्ग का जानने वाला कौन है?

।। सत्यनाम व सारनाम के बिना ब्रह्म के उपासक काल जाल में ही रहते हैं।।

अध्याय 12 के श्लोक 2 में काल भगवान कह रहा है कि जो मुझे भजते हैं वे मुझे अतिउत्तम मान्य हैं। अध्याय 12 के श्लोक 3,4 में फिर कहा है कि जो कोई इन्द्रियों को भली-भाँति वश में करके मन बुद्धि से परे सर्वव्यापी, नित्य, अचल, अदृश, अविनाशी परमात्मा को शास्त्रों में दिए भक्ति के वास्तविक निर्देश को त्याग कर अर्थात् शास्त्रविधि को त्याग कर मन-माना आचरण (पूजा) करते हैं वे सम्पूर्ण प्राणियों का हित चाहने वाले सर्वत्र सम भाव वाले भी मुझको ही प्राप्त होते हैं। यही प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में है कि ज्ञानी आत्मा है तो उदार परन्तु तत्वज्ञान के अभाव के कारण मेरी अनुत्तम अर्थात् अश्रेष्ठ गति में ही आश्रित है।

विशेष :-- पवित्र वेदों व गीता जी में जानकारी तो उस अविनाशी अकथनीय अदृश (पूर्ण ब्रह्म सतपुरुष) की सही दे रखी है, परंतु पूजा विधि एक अक्षर ''ऊँ'' मन्त्र, यज्ञ आदि केवल निराकार काल भगवान का ही वर्णन कर रखा है। इसलिए मार्कण्डे जैसे निर्गुण उपासक ''ऊँ'' मन्त्र का जाप करते हुए परमात्मा को निर्गुण-निराकार-अविनाशी मान कर साधना करते रहे अंत में पहुँचे महास्वर्ग में। इसलिए भगवान कह रहा है कि वे साधक भी मेरे जाल से बाहर नहीं हैं अर्थात् जो मेरे(कृष्ण रूप के व विष्णु रूप के) उपासक विष्णु लोक में आ जाएंगे। मुझे ही प्राप्त होकर अपने पुण्यों कर्मों की कमाई रूपी मलाई खा कर नरक में चले जाएंगे। इसलिए मेरे को (विष्णु रूप में) भजने वाले जल्दी उपलब्धि प्राप्त कर लेते हैं परंतु यह भी साधना नादानों की ही है, अच्छी नहीं। क्योंकि गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में पूर्ण परमात्मा की यथार्थ साधना का निर्देश बताया है उस पूर्ण परमात्मा की साधना का ॐ-तत्-सत् यह तीन मन्त्र के जाप का निर्देश है। यहाँ गीता अध्याय 12 श्लोक 3-4 में कहा है कि जो साधक उस पूर्ण परमात्मा कि साधना अनिर्देश अर्थात् शास्त्रों के कथन विरुद्ध {शास्त्रविधि को त्याग कर मनमाना आचरण (पूजा)}करते हैं वे उस पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करके ॐ नाम का जाप करके ब्रह्म लोक को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार काल लोक में ही रह जाते हैं। यही प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में है कि ये ज्ञानी आत्मा हैं तो उदार परन्तु तत्वज्ञान के अभाव के कारण मेरी अनुत्तम अर्थात् अश्रेष्ठ गति में ही आश्रित हैं।

अध्याय 12 के श्लोक 5 से 8 में कहा है कि जो निराकार मान कर साधना करते हैं वे शरीर को कष्ट दे कर कोशिश करते हैं यह दुःख पूर्वक होती है जिसको आम साधक नहीं कर सकता। इसलिए मेरी (विष्णु रूप की) पूजा अनन्य भक्ति से करते हैं उनका जल्दी उद्धार करके मृत लोक से पीछा (कुछ समय के लिए) छुड़वा दूंगा तथा वे मेरे को विष्णु मान कर पूजते हैं इसलिए विष्णु लोक में ही आ जाएंगे। वहाँ अपने पुण्यों को समाप्त करके फिर जल्दी ही नरक व चौरासी लाख

जूनियों में चले जाते हैं। गीता जी के अध्याय 14 के श्लोक 6, 14, 18 ।

अध्याय 12 के श्लोक 9 से 18 तक में भगवान (ब्रह्म) कह रहा है कि मन को अचल करने (रोकने में) में सफल नहीं है तो अभ्यास योग(नाम जाप) कर। यदि अभ्यास योग में भी असमर्थ है तो शास्त्रानुकूल कर्म करता रहे। यदि ऐसा भी नहीं कर सकता तो मन-बुद्धि आदि पर विजय प्राप्त करने वाला होकर कर्म फलों को त्याग कर इससे (त्याग से) तुरंत शांति हो जाती है। जो भक्त राग-द्वेष रहित है वह मुझे अतिप्रिय है।

विशेष : भगवान(ब्रह्म) कह रहा है कि मन को रोक कर कर्मफल का त्याग कर दें। जब मन रूक गया तो मुक्ति निश्चित है। {मन तो न शिव से, न ब्रह्मा से, न विष्णु से तथा न ब्रह्म(काल) से रूक सका। अर्जुन मन कैसे रोक सकता है? मन स्वयं काल(ब्रह्म) है। एक हजार भुजाओं (कलाओं) वाले भगवान को तो परम अक्षर ब्रह्म(पूर्णब्रह्म सतपुरुष) के जाप से (जो असंख्य भुजाओं वाला है) रोका जा सकता है। उस परमात्मा के उपासक संत से नाम लेकर गुरु मर्यादा में रहते हुए नाम अभ्यास योग से युक्त भक्त ही मुक्त हो सकता है।} पाठक स्वयं विचार करें ब्रह्म साधना से मन रूक नहीं सकता। इसलिए पूर्ण मुक्ति नहीं है।

अध्याय 12 के श्लोक 19,20 में कहा है कि जो निन्दा स्तुति में समान समझने वाला मननशील, रूखे-सूखे भोजन में संतुष्ट, ममता रहित, स्थिर बुद्धि भक्ति सहित साधक मुझे बहुत प्रिय है और जो मैंने ऊपर विधान (मत) बताया है उसका आचरण (सेवन) करने वाला अतिशय प्रिय है। अर्थात् काम, क्रोध, राग-द्वेष, लोभ-मोह से रहित, निन्दा स्तुति में सम रहने वाला भक्त मुझे बहुत प्रिय है। पाठक स्वयं विचार करें।

ऐसी क्षमता तो तीनों भगवानों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) में भी नहीं है तो आम भक्त (साधक) ऐसा कैसे कर सकता? इसलिए वह काल (ब्रह्म) भगवान को प्रिय हो नहीं सकता और परमात्मा प्राप्ति भी नहीं हो सकती। इति सिद्धम् कि कर्म आधार पर स्वर्ग, नरक, चौरासी लाख जूनियाँ ही जीव को ब्रह्म साधना से अन्तिम उपलब्धि होती है।

❑❑❑

।।बारहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ द्वादशोऽध्यायः

अध्याय 12 का श्लोक 1 (अर्जुन उवाच)

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।१।

एवम्, सततयुक्ताः, ये, भक्ताः, त्वाम्, पर्युपासते,
ये, च, अपि, अक्षरम्, अव्यक्तम्, तेषाम्, के, योगवित्तमाः।।1।।

अनुवाद : (ये) जो (भक्ताः) भक्तजन (एवम्) पूर्वोक्त प्रकारसे (सततयुक्ताः) निरंन्तर आपके भजन-ध्यानमें लगे रहकर (त्वाम्) आप (च) और (ये) दूसरे जो केवल (अक्षरम्) अविनाशी सच्चिदानन्दघन (अव्यक्तम्) अदृश को (अपि) भी (पर्युपासते) अतिश्रेष्ठ भावसे भजते हैं (तेषाम्) उन दोनों प्रकारके उपासकोंमें (योगवित्तमाः) अति उत्तम योगवेता अर्थात् यथार्थ रूप से भक्ति विधि को जानने वाला(के) कौन हैं?(1)

अध्याय 12 का श्लोक 2 (भगवान उवाच)

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।२।

मयि, आवेश्य, मनः, ये, माम्, नित्ययुक्ताः, उपासते,
श्रद्धया, परया, उपेताः, ते, मे, युक्ततमाः, मताः।।2।।

अनुवाद : (मयि) मुझमें (मनः) मनको (आवेश्य) एकाग्र करके (नित्ययुक्ताः) निरन्तर मेरे भजन ध्यानमें लगे हुए (ये) जो भक्तजन (परया) अतिशय श्रेष्ठ (श्रद्धया) श्रद्धासे (उपेताः) युक्त होकर (माम्) मुझे (उपासते) भजते हैं, (ते) वे (मे) मुझको (युक्ततमाः) साधकों में अति उत्तम (मताः) मान्य है ये मेरे विचार हैं। (2)

अध्याय 12 का श्लोक 3, 4

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।३।

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ।४।

ये, तु, अक्षरम्, अनिर्देश्यम्, अव्यक्तम्, पर्युपासते,
सर्वत्रगम्, अचिन्त्यम्, च, कूटस्थम्, अचलम्, ध्रुवम्।।3।।
सन्नियम्य, इन्द्रियग्रामम्, सर्वत्र, समबुद्धयः,
ते, प्राप्नुवन्ति, माम्, एव, सर्वभूतहिते, रताः।।4।।

अनुवाद : (तु) परंतु (ये) जो (इन्द्रियग्रामम्) इन्द्रियोंके समुदायको (सन्नियम्य) भली प्रकारसे वशमें करके (अचिन्त्यम्) मन-बुद्धिसे परे, अर्थात् तत्वज्ञान के अभाव से (सर्वत्रगम्) सर्वव्यापी (च)

और (कूटस्थम्) सदा एकरस रहनेवाले (ध्रुवम्) नित्य (अचलम्) अचल (अव्यक्तम्) अदृश (अक्षरम्) अविनाशी परमात्मा को (अनिर्देश्यम्) शास्त्रों के निर्देश के विपरीत अर्थात् शास्त्रविधि त्यागकर (पर्युपासते) निरंतर एकीभावसे ध्यान करते हुए भजते हैं (ते) वे (सर्वभूतहिते) सम्पूर्ण भूतोंके हितमें (रताः) रत और (सर्वत्र) सबमें (समबुद्धयः) समानभाववाले योगी (माम्) मुझको (एव) ही (प्राप्नुवन्ति) प्राप्त होते हैं। (4)

अध्याय 12 का श्लोक 5

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते । ५ ।

क्लेशः, अधिकतरः, तेषाम्, अव्यक्तासक्तचेतसाम्,
अव्यक्ता, हि, गतिः, दुःखम्, देहवद्भिः, अवाप्यते।।5।।

अनुवाद : (तेषाम्) उन (अव्यक्तासक्तचेतसाम्) अदृश ब्रह्ममें आसक्तचित्तवाले पुरुषोंके साधनमें (क्लेशः) वाद-विवाद रूपी क्लेश अर्थात् कष्ट (अधिकतरः) विशेष है (हि) क्योंकि (देहवद्भिः) देहाभिमानियों के द्वारा (अव्यक्ता) अव्यक्तविषयक (गतिः) गति (दुःखम्) दुःखपूर्वक (अवाप्यते) प्राप्त की जाती है। (5)

विशेष :-- इस श्लोक 5 में क्लेश अर्थात् कष्ट का भावार्थ है कि पूर्ण परमात्मा की साधना मन के आनन्द से विपरित चल कर की जाती है। मन चाहता है शराब पीना, तम्बाखु पीना, मांस खाना, नाचना, गाना आदि इन को त्यागना ही क्लेश कहा है। परमेश्वर की भक्ति विधि का यथार्थ ज्ञान न होने के कारण आपस में वाद-विवाद करके दुःखी रहते हैं। एक दूसरे से अपने ज्ञान को श्रेष्ठ मानकर अन्य से इर्षा करते है जिस कारण से क्लेश होता है।

अध्याय 12 का श्लोक 6

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते। ६ ।

ये, तु, सर्वाणि, कर्माणि, मयि, सन्न्यस्य, मत्पराः,
अनन्येन, एव, योगेन, माम्, ध्यायन्तः, उपासते।।6।।

अनुवाद : (तु) परंतु (ये) जो (मत्पराः) मतावलम्बी मेरे परायण रहनेवाले भक्तजन (सर्वाणि) सम्पूर्ण (कर्माणि) कर्मोको (मयि) मुझमें (सन्न्यस्य) अर्पण करके (माम्) मुझ सगुणरूप परमेश्वरको (एव) ही (अनन्येन) अनन्य (योगेन) भक्तियोगसे (ध्यायन्तः) निरन्तर चिन्तन करते हुए (उपासते) भजते हैं। (6)

अध्याय 12 का श्लोक 7

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्। ७ ।

तेषाम्, अहम्, समुद्धर्त्ता, मृत्युसंसारसागरात्,
भवामि, नचिरात्, पार्थ, मयि, आवेशितचेतसाम्।।7।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (तेषाम्) उन (मयि) मुझमें (आवेशितचेतसाम्) चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका (अहम्) मैं (नचिरात्) शीघ्र ही (मृत्युसंसारसागरात्) मृत्युरूप संसारसमुद्रसे (समुद्धर्त्ता) उद्धार करनेवाला (भवामि) होता हूँ। (7)

अध्याय 12 का श्लोक 8

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः। ८ ।

मयि, एव, मनः, आधत्स्व, मयि, बुद्धिम् निवेशय,
निवसिष्यसि, मयि, एव, अतः, ऊर्ध्वम्, न, संशयः।।8।।

अनुवाद : (मयि) मुझमें (मनः) मनको (आधत्स्व) लगा और (मयि) मुझमें (एव) ही (बुद्धिम्) बुद्धिको (निवेशय) लगा (अतः) इसके (ऊर्ध्वम्) उपरान्त तू (मयि) मुझमें (एव) ही (निवसिष्यसि) निवास करेगा इसमें कुछ भी (संशयः) संश्य (न) नहीं है। (8)

अध्याय 12 का श्लोक 9

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय। ९ ।

अथ, चित्तम्, समाधातुम्, न, शक्नोषि, मयि, स्थिरम्,
अभ्यासयोगेन, ततः, माम्, इच्छ, आप्तुम्, धनजय।। 9।।

अनुवाद : (अथ) यदि तू (चित्तम्) मनको (मयि) मुझमें (स्थिरम्) अचल (समाधातुम्) स्थापन करनेके लिये (न, शक्नोषि) समर्थ नहीं है (ततः) तो (धनजय) हे अर्जुन! (अभ्यासयोगेन) अभ्यासरूप योगके द्वारा (माम्) मुझको (आप्तुम्) प्राप्त होनेके लिए (इच्छ) इच्छा कर। (9)

अध्याय 12 का श्लोक 10

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि। १०।

अभ्यासे, अपि, असमर्थः, असि, मत्कर्मपरमः, भव,
मदर्थम्, अपि, कर्माणि, कुर्वन्, सिद्धिम्, अवाप्स्यसि।।10।।

अनुवाद : (अभ्यासे) अभ्यासमें (अपि) भी (असमर्थः) असमर्थ (असि) है तो केवल (मत्कर्मपरमः) मेरे प्रति शास्त्रानुकूल शुभ कर्म करने वाला (भव) हो (मदर्थम्) मेरे लिए (कर्माणि) कर्मोंको (कुर्वन्) करता हुआ (अपि) भी (सिद्धिम्) सिद्धि अर्थात् उद्देश्यको (अवाप्स्यसि) प्राप्त होगा। (10)

अध्याय 12 का श्लोक 11

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्। ११।

अथ, एतत्, अपि, अशक्तः, असि, कर्तुम्, मद्योगम्, आश्रितः,
सर्वकर्मफलत्यागम्, ततः, कुरु, यतात्मवान्।।11।।

अनुवाद : (अथ) यदि (मद्योगम्) मेरे मतानुसार कर्म योगके (आश्रितः) आश्रित होकर (एतत्) उपर्युक्त साधनको (कर्तुम्) करनेमें (अपि) भी तू (अशक्तः) असमर्थ (असि) है (ततः) तो (यतात्मवान्) प्रयत्नशील हो कर (सर्वकर्मफलत्यागम्) सब कर्मोंके फलका त्याग (कुरु) कर। (11)

अध्याय 12 का श्लोक 12

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्। १२।

श्रेयः, हि, ज्ञानम्, अभ्यासात्, ज्ञानात्, ध्यानम्, विशिष्यते,
ध्यानात्, कर्मफलत्यागः, त्यागात्, शान्तिः, अनन्तरम्।।12।।

अनुवाद : (अभ्यासात्) तत्वज्ञान के अभाव से शास्त्रविधि को त्याग कर मनमाने अभ्यास से (ज्ञानम्) ज्ञान (श्रेयः) श्रेष्ठ है (ज्ञानात्) शास्त्रों में वर्णित साधना न करके केवल ज्ञान ही ग्रहण करके विद्वान प्रसिद्ध होने वाले के ज्ञानसे (ध्यानम्) सहज ध्यान अर्थात् सहज समाधि (विशिष्यते) श्रेष्ठ है और (ध्यानात्) ध्यानसे भी (कर्मफलत्यागः) कर्मोंके फल का त्याग करके नाम जाप करना श्रेष्ठ है (हि) क्योंकि (त्यागात्) कर्म फल त्याग कर भक्ति करने के कारण उस त्याग से (अनन्तरम्) तत्काल ही (शान्तिः) शान्ति होती है। (12)

अध्याय 12 का श्लोक 13.14

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी।१३।

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।१४।

अद्वेष्टा, सर्वभूतानाम्, मैत्रः, करुणः, एव, च,
निर्ममः, निरहंकारः, समदुःखसुखः, क्षमी।।13।।
सन्तुष्टः, सततम्, योगी, यतात्मा, दृढनिश्चयः,
मयि, अर्पितमनोबुद्धिः, यः, मद्भक्तः, सः, मे, प्रियः।।14।।

अनुवाद : (यः) जो (सर्वभूतानाम्) सब प्राणियों में (अद्वेष्टा) द्वेष-भावसे रहित (मैत्रः) प्रेमी (च) और (करुणः) दयालु है (एव) तथा (निर्ममः) ममतासे रहित (निरहंकारः) अहंकारसे रहित (समदुःखसुखः) सुख दुःख में सम और (क्षमी) क्षमावान् हैं (योगी) वह योगी (सततम्) निरन्तर (सन्तुष्टः) संतुष्ट है। (यतात्मा) निर्विकारी अर्थात् मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है (दृढनिश्चयः) दृढ़ निश्चयवाला है (सः) वह (मयि) मुझमें (अर्पितमनोबुद्धिः) अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला (मद्भक्तः) नियमानुसार भक्ति करने वाला मेरा भक्त (मे) मुझको (प्रियः) प्रिय है। (13,14)

अध्याय 12 का श्लोक 15

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।१५।

यस्मात्, न, उद्विजते, लोकः, लोकात्, न, उद्विजते, च, यः,
हर्षामर्षभयोद्वेगैः, मुक्तः, यः, सः, च, मे, प्रियः।।15।।

अनुवाद : (यस्मात्) जिससे (लोकः) कोई भी जीव (न,उद्विजते) उद्वेगको प्राप्त नहीं होता (च) और (यः) जो स्वयं भी (लोकात्) किसी जीवसे (न, उद्विजते) उद्वेगको प्राप्त नहीं होता (च) तथा (यः) जो (हर्षामर्षभयोद्वेगैः) हर्ष, अमर्ष भय और उद्वेगादिसे (मुक्तः) रहित है (सः) वह भक्त (मे) मुझको (प्रियः) प्रिय है। (15)

अध्याय 12 का श्लोक 16

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।१६।

अनपेक्षः, शुचिः, दक्षः, उदासीनः, गतव्यथः,
सर्वारम्भपरित्यागी, यः, मद्भक्तः, सः, मे, प्रियः।।16।।

अनुवाद : (यः) जो (अनपेक्षः) आकांक्षासे रहित (शुचिः) बाहर-भीतरसे शुद्ध (दक्षः) चतुर (उदासीनः) पक्षपातसे रहित और (गतव्यथः) दुःखोंसे छूटा हुआ है (सः) वह (सर्वारम्भ परित्यागी) सब आरम्भोंका त्यागी अर्थात् जिसने शास्त्रविधि विरूद्ध भक्ति कर्म आरम्भ कर रखे थे। उनको त्यागकर शास्त्रविधि अनुसार करने वाला (मद्भक्तः) मतानुसार मेरा भक्त (मे) मुझको (प्रियः) प्रिय है। (16)

अध्याय 12 का श्लोक 17

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः। १७।

यः, न, हृष्यति, न, द्वेष्टि, न, शोचति, न, काङ्क्षति,
शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान्, यः, सः, मे, प्रियः।।17।।

अनुवाद : (यः) जो (न) न (हृष्यति) हर्षित होता है (न) न (द्वेष्टि) द्वेष करता है (न) न (शोचति) शोक करता है (न) न (काङ्क्षति) कामना करता है तथा (यः) जो (शुभाशुभ परित्यागी) शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है (सः) वह (भक्तिमान्) भक्तियुक्त (मे) मुझको (प्रियः) प्रिय है। (17)

अध्याय 12 का श्लोक 18

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः। १८।

समः, शत्रौ, च, मित्रे, च, तथा, मानापमानयोः,
शीतोष्णसुखदुःखेषु, समः, संगविवर्जितः।।18।।

अनुवाद : (शत्रौ, मित्रे) शत्रु-मित्रमें (च) और (मानापमानयोः) मान-अपमानमें (समः) सम है (तथा) तथा (शीतोष्णसुखदुःखेषु) सर्दी गर्मी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें (समः) सम है (च) और (संगविवर्जितः) आसक्तिसे रहित है। (18)

अध्याय 12 का श्लोक 19

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः। १९।

तुल्यनिन्दास्तुतिः, मौनी, सन्तुष्टः, येन, केनचित्,
अनिकेतः, स्थिरमतिः, भक्तिमान्, मे, प्रियः, नरः।।19।।

अनुवाद : (तुल्यनिन्दास्तुतिः) निन्दा स्तुति को समान समझनेवाला (मौनी) मननशील और (येन,केनचित्) जिस किसी प्रकारसे (सन्तुष्टः) संतुष्ट है और (अनिकेतः) ममता और आसक्तिसे रहित है वह (स्थिरमतिः) स्थिरबुद्धि (भक्तिमान्) भक्तिमान् (नरः) मनुष्य (मे) मुझको (प्रियः) प्रिय है। (19)

अध्याय 12 का श्लोक 20

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः। २०।

ये, तु, धर्म्यामृतम्, इदम्, यथा, उक्तम्, पर्युपासते,
श्रद्दधानाः, मत्परमाः, भक्ताः, ते, अतीव, मे, प्रियाः।।20।।

अनुवाद : (तु) परंतु (ये) जो (श्रद्दधानाः) श्रद्धायुक्त पुरुष (मत्परमाः) मेरे से उत्तम परमात्मा को शास्त्रानुकूल साधना के परायण होकर (इदम्) इस (यथा, उक्तम्) ऊपर कहे हुए (धर्म्यामृतम्) धर्ममय अमृतको (पर्युपासते) पूर्ण श्रद्धा से पूजा अर्थात् उपासना करते हैं (ते) वे (भक्ताः) भक्त (मे) मुझको (अतीव) अतिशय (प्रियाः) प्रिय हैं। (20)

(इति अध्याय बारहवाँ)

❑❑❑

तेरहवां अध्याय

।। सारांश।।

पूर्ण परमात्मा की व्याख्या

।। क्षेत्र व क्षेत्रज्ञ की परिभाषा।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 1 से 6 तक वर्णन है कि शरीर तथा इस शरीर में विकारों (काम, क्रोध, लोभ-मोह, अहंकार आदि) तथा निराकार स्थिति में तथा दश इन्द्रियों तथा उनमें विद्यमान विषय शब्द-स्पर्श-रूप-रस व गंध आदि का विवरण है। जो इन सर्व कारणों को जानता है वह क्षेत्रज्ञ (पंडित) कहलाता है। गीता बोलने वाला भगवान कह रहा है कि क्षेत्रज्ञ भी मुझे जान।

पिंड का अर्थ है शरीर (क्षेत्र यहाँ शरीर को कहा है) तथा क्षेत्रज्ञ का अर्थ है शरीर के बारे में जानने वाला कि इसमें कमलों में कौन परमात्मा कहाँ-2 पर स्थित हैं तथा सुषमना द्वार कहाँ है? कमलों की जानकारी हो उसे क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीर को जानने वाला क्षेत्रज्ञ (पंडित) कहा है। इसका विवरण छन्दों (वेदों के मन्त्रों) में तथा बहुत से ऋषियों ने भी किया है।

।। आन उपासना को व्याभिचारिणी भक्ति बताना।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 7 से 11 तक कहा है कि जो कोई मान-सम्मान से दुःखी व सुखी ने हो कर आडम्बर पूजा रहित, अहिंसा वादी, क्षमा स्वभाव युक्त गुरु जी की सेवा श्रद्धा भक्ति से करते हुए तथा शुद्धि पूर्वक अन्तःकरण में स्थित आत्मा को सही स्थिर करके तथा पूर्ण वैराग्य (प्रत्येक वस्तु से आसक्ति को हटा कर) होकर स्त्री-पुत्र-धन आदि में कोई आस्था न रहे और ममता, उपास्य देव व अनउपास्य देव की प्राप्ति या न प्राप्ति में ईश्वरिय रजा में अर्थात् इष्ट वादिता को छोड़ कर श्रेष्ठ ज्ञान के आश्रित समचित रह कर केवल मेरी अव्याभिचारिणी भक्ति {केवल एक इष्ट की उपासना, अन्य देवताओं की साधना को व्यभिचारिणी, वैश्या, जैसी बताई है जो एक पति पर स्थाई न होकर मन भटकाती है। वह कहीं आदर नहीं पाती} *ऐसे एक पूर्ण परमात्मा को न भज कर सब की पूजा को व्यभिचारिणी (वैश्या) जैसी भक्ति की संज्ञा दी है। आम व्यक्ति जो भक्ति भाव का न हो उनसे प्रेम न करना, आध्यात्म ज्ञान (भक्ति का ज्ञान) का नित्य चिंतन सर्व को तत्व ज्ञान रूप से देखना (समभाव रखना) यह तो श्रेष्ठ ज्ञान है। इसके विपरीत सब अज्ञान है। नशा करना, शराब, तम्बाखू, मांस, भांग प्रयोग करना, राग द्वेष रखना, आन उपासना (देवी-देताओं की पूजा, व्रत, तीर्थ, गंगा स्नान, गोवर्धन 'गिरीराज' की फेरी, मन्दिर में मूर्ति की पूजा) करना आदि अज्ञान कहा है तथा व्याभिचारिणी भक्ति कहा है।*

।। पूर्ण परमात्मा ही जानने व भक्ति योग्य है।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 12 से 18 में भगवान (काल-ब्रह्म) कह रहा है कि जो जानने योग्य है जिसको जान कर परमानन्द (अमर पद) को प्राप्त होता है, उस पूर्ण परमात्मा के ज्ञान को भली भाँति कहूँगा। वह अनादि वाला (जिसकी उत्पत्ति न हो) परम अक्षर ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा/सतपुरुष) न तो सत और न असत कहा जा सकता है। {सत का अर्थ अक्षर (अविनाशी) तथा असत का अर्थ क्षर (नाशवान) ही कहा जा सकता है। क्योंकि यह परमात्मा तो अन्य ही है। जैसा गीता जी के

अध्याय 15 के श्लोक 16 में कहा है कि दो भगवान हैं- एक क्षर (असत/नाशवान) और दूसरा अक्षर (अविनाशी/सत)।

फिर अध्याय 15 के 17वें श्लोक में कहा है कि वास्तव में अविनाशी तो इनसे भी भिन्न अन्य ही है जिसे अविनाशी परमेश्वर इस नाम से कहा गया है जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है। (कृप्या देखें गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 16 व 17 में)}

वह सब ओर हाथ-पैर, तथा सिर-नेत्र वाला, सब ओर कान वाला है का तात्पर्य है कि वह सर्वव्यापक है अर्थात् उसकी पहुँच से तथा दृष्टि से कोई बाहर नहीं है। वही सबको अपने में समाये हुए स्थित हैं गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि -

जाके अर्ध रूम पर सकल पसारा, ऐसा पूर्ण ब्रह्म हमारा।

गरीब, अनन्त कोटि ब्रह्मण्ड का, एक रति नहीं भार। सतगुरु पुरुष कबीर हैं, कुल के सिरजन हार।।

वही परमात्मा (पूर्णब्रह्म) सब इन्द्रियों के जानने वाला है। चूंकि उसी मालिक ने ब्रह्म (काल) को भी उत्पन्न किया। {गीता जी के अध्याय 3 के श्लोक 14,15 में कहा है कि सर्व प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न वर्षा से होता है, वर्षा यज्ञ से, यज्ञ शुभकर्मों से होती है, कर्म ब्रह्म (काल) से हुए। ब्रह्म (काल) अविनाशी (परम अक्षर) भगवान से उत्पन्न हुआ। वही परम अक्षर ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा) सब यज्ञों में प्रतिष्ठित (विद्यमान है, पूज्य है, यज्ञों का फल देने वाला अधियज्ञ) है।} *वह इन्द्रियों से रहित आसक्ति रहित, सबका धारण पोषण करने वाला और सत्यलोक में रहते हुए तथा यहाँ अपनी निराकार शक्ति से सर्व का संचालक होते हुए गुणों को भोगने वाला, सर्व प्राणियों के अन्दर व बाहर और चर-अचर (सर्व का मूल कारण होने), निराकार शक्ति रूप में सूक्ष्म (अदृश्य) होने से न जाना जाने वाला (अविज्ञय) है अर्थात् उस अविनाशी परमात्मा (सतपुरुष) को कोई नहीं जान सकता। निराकार शक्ति से सर्व कार्य करने वाला होने से वह नजदीक से नजदीक सब प्राणियों के हृदय में (कार्य सिद्धि के लिए तुरन्त लाभ दे देता है, इसलिए दूर नहीं) और दूर सतलोक में भी है। {उस परमेश्वर (सतपुरुष) का भेद न होने से दूर भी है क्योंकि उसके दर्शन पूर्ण गुरु सतनाम व सारनाम दाता से नाम ले कर आजीवन गुरु मर्यादा में रह कर किए जा सकते हैं अन्यथा नहीं}*

एक सर्व शक्तिमान होने के कारण (अविभक्तम् = विभागरहित) उस परमेश्वर की शक्ति सर्व प्राणियों (असंख ब्रह्मण्डों में सर्वशक्तिमान तथा सर्वव्यापक) में स्थित है। वही (परमात्मा) जानने योग्य है जो सर्व ब्रह्मण्डों, जिसमें काल ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्मण्ड जिनमें श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु, श्री शिव के लोक सहित 14 लोक, स्वर्ग, मृत्यु तथा पाताल लोक और परब्रह्म के सात संख ब्रह्मण्डों सहित का पालन कर्त्ता और उत्पन्न करने वाला वह परमात्मा माया धारी काल से अन्य कहा जाता है।

ज्ञान सागर अति उजागर, निर्विकार निरंजनम।
ब्रह्म ज्ञानी महा ध्यानी, सत सुकृत दुःख भंजनं।

आदरणीय गरीबदास जी महाराज अपनी अमृत वाणी 'ब्रह्मवेदी' में उसी पूर्ण परमात्मा के विषय में कहते हैं गीता अध्याय 13 श्लोक 17 में कहा है कि वही पूर्ण परमात्मा सबके हृदय में विशेष रूप में स्थित है। जैसे सूर्य एक स्थान पर होते हुए भी सर्व प्राणियों को अपने साथ ही दिखाई देता है, परन्तु आँखे उसे देख सकती हैं इसलिए कह सकते हैं कि सूर्य आँखों में ही विशेष रूप से विद्यमान है क्योंकि आँखें ही प्रकाश देख सकती हैं। जो ऊष्णता (सूर्य) का विशेष रूप में गुण है। उसे केवल महसूस किया जा सकता है। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा सत्यलोक में रह कर भी प्रत्येक प्राणी के हृदय कमल में जीव के साथ सूर्य की ऊष्णता की तरह अपनी निराकार शक्ति द्वारा अभेद भी रहता है।

गीता अध्याय 13 श्लोक 18 में क्षेत्र (शरीर) तथा जानने योग्य (परमात्मा-पूर्णब्रह्म) उत्तम ज्ञान संक्षेप में कहा है। (मद्भक्त) - मत्भक्त विचारों पर चलने वाला भक्त उसी विचारों वाला हो जाता है। यदि श्रीमद्भगवद् का सन्धि छेद करें तो श्री-मत-भगवत्-गीता। यहाँ 'श्रीमत' का अर्थ है कि अति उत्तम विचार (मत्) जो भगवान ने दिए, गीता का अर्थ ज्ञान है। इसलिए श्रीमद्भगवद् गीता का अर्थ है जो श्रेष्ठ विचार भगवान ने स्वयं दिए वह ज्ञान है। मद्भक्त का भावार्थ 'मत (विचार) भक्त (साधक)' बनता है अर्थात् ऊपर के ज्ञान (मत) विचारों को जान कर वह मद्भक्त उन्हीं विचारों (मत वाला) के भाव वाला हो जाता है। प्रकरण वश मत् का अर्थ मेरा भी होता है जो भगवत भक्त इस उत्तम ज्ञान को जान कर उन्हीं विचारों अनुरूप हो जाता है तथा काल (ब्रह्म) के जाल से निकल जाता है। यहां तक कि गीता जी के अध्याय 7 के श्लोक 24 में कहा है कि बुद्धिहीन मेरे अनुत्तम (गन्दे) अटल (अविनाशी) काल भाव कि मैं अदृश्य हूँ कभी आकार में सर्व के समक्ष नहीं आता को नहीं जानते। इसलिए मुझे व्यक्ति (कृष्ण) रूप में ही समझते हैं अर्थात् मैं व्यक्ति (आकार) रूप में कभी नहीं आता।

अन्य अनुवाद कर्त्ताओं ने इस श्लोक के टीका में जो अनुत्तम शब्द है का अर्थ किसी ने ज्यों का त्यों लिख दिया - अनुत्तम = अनुत्तम। किसी-किसी ने अनुत्तम = सर्व श्रेष्ठ किया है। उत्तम का अर्थ अच्छा (श्रेष्ठ) और अनुत्तम का अर्थ बुरा (गन्दा) अर्थात् अश्रेष्ठ हुआ।

विशेष :-- कुछ श्रद्धालु कहते हैं कि समास में अनुत्तम का अर्थ उत्तम ही होता है। यदि ऐसा माने तो गीता ज्ञान दाता ने पूर्ण शान्ति तथा स्थाई स्थान की प्राप्ति के लिए किसी अन्य परमात्मा की शरण में जाने के लिए क्यों कहा प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 62,66 अध्याय 15 श्लोक 4 तथा अपने से अन्य परमात्मा के विषय में ज्ञान किसलिए बताया है। प्रमाण गीता अध्याय 13 श्लोक 12 से 17,22 से 24, 27-28,30-31-34 अध्याय 15 श्लोक 16-17 अध्याय 5 श्लोक 6,10,13 से 21 तथा 24-25-26 अध्याय 3 श्लोक 15-19 अध्याय 6 श्लोक 7,19-20-25-26-27 अध्याय 4 श्लोक 31-32 अध्याय 17 श्लोक 23-25-27 अध्याय 8 श्लोक 1-3,8 से 10,17 से 22

यह सब पूर्ण ज्ञान न होने के कारण तथा भावना वश इष्टवादिता वश होकर स्वयं भी अंधेरे में तथा पाठक भी अज्ञान को ही प्राप्त होते हैं। अर्थ का अनर्थ किया है। अनुत्तम का सर्वश्रेष्ठ अर्थ किया है। इसी प्रकार गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में व्रज का अर्थ आना किया है जबकि व्रज का अर्थ जाना होता है। ऐसे अन्य अनुवाद कर्त्ताओं ने अर्थ का अनर्थ किया है।

।। पूर्ण परमात्मा तथा राष्ट्री प्रकृति दोनों अनादि ।।

गीता अध्याय 13 श्लोक 19 में कहा है कि राष्ट्री प्रकृति (प्रथम माया अर्थात् जिसे राजेश्वरी शक्ति भी कहते हैं, जिससे परमेश्वर ने सर्व ब्रह्मण्डों को ठहराया है) और पुरुष (पूर्ण परमात्मा) इन दोनों को ही अनादि (सदा रहने वाला और जिसकी उत्पत्ति न हुई हो) जान। चूंकि पुरुष (परमात्मा-पूर्णब्रह्म) पहले अनामी लोक में अकेला रहता था। सर्व आत्माएं प्रभु के शरीर में समाई थी। बाद में कविर्देव पूर्ण परमात्मा ने नीचे के तीन लोक अगम लोक, अलख लोक तथा सतलोक की रचना अपनी शब्द शक्ति से की तथा स्वयं भी अपनी शब्द शक्ति से सतपुरुष सतलोक में स्वयं प्रकट हुआ, इसीलिए स्वयंभू कहलाता है तथा आदि माया (प्रकृति) को परम हंस से हंस शब्द शक्ति से बनाया तथा सर्व जीव प्रकृति में प्रवेश किए। इसलिए जब परब्रह्म (अक्षर पुरुष) महाप्रलय करता है उस समय ज्योति निरंजन औंकार को सर्व लोकों समेत समाप्त करेगा। उस समय प्रकृति को

उसी रूप में सुक्ष्म बना कर परब्रह्म लोक में रखा जाता है और ब्रह्म (ज्योति निरंजन काल) बीज रूप में रखा जाता है तथा इसकी उत्पत्ति फिर होती है। यही प्रकृति लड़की रूप में इसके साथ होती है। काल (ब्रह्म) के नीचे के लोक रचे जाते हैं। तीनों परमात्माओं (श्रेष्ठ आत्माओं) को ब्रह्म (ज्योति निरंजन) भगवान अपनी प्रकृति (अष्टंगी) से रति क्रिया करके उत्पन्न करता है उनको श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु, श्री महेश की उपाधी देता है। ये नई श्रेष्ठ आत्माएँ होती है। पहले वाले विष्णु, ब्रह्मा, शिव चौरासी लाख योनियों में चले जाते हैं।

क्योंकि यही काल भगवान ब्रह्म लोक में तीन रूपों (महाविष्णु- महाब्रह्मा-महाशिव) में रहता है। और वहां पर तीनों बच्चों की उत्पत्ति करके उन्हें चेतनाहीन रख कर पालन करता रहता है। जवान होने पर अलग-2 जगह पर रख देता है। जिससे इन्हें मालूम ही नहीं कि हम कहाँ से आए। इसलिए इसी अध्याय के श्लोक 19 में प्रकृति व पूर्ण परमात्मा को अनादि कहा है और विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग-द्वेष) को, गुणों (रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिव) को भी प्रकृति (आदिमाया- प्रकृति) से उत्पन्न जान।

गीता अध्याय 13 श्लोक 20 में कहा है कि जगत की उत्पत्ति का कारण तथा कर्म (कार्य) के लिए प्रकृति ही मुख्य है तथा पुरुष (सतपुरुष) अपने भक्त का सुख-दुःख का कारण कहा जाता है क्योंकि पूर्ण ब्रह्म (परम अक्षर पुरुष) सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान व सर्व जीवों में स्थित होते हुए भी उन जीवों के कष्ट को बिना नियमित साधना (पूर्ण गुरु जो सतनाम व सारनाम दाता को मिले बिना) दूर नहीं कर सकता। जीव को शक्ति दे कर जीव स्थिति में चला रहा वही पूर्ण परमात्मा इस सुख-दुःख का कारण कहा है।

गीता अध्याय 13 श्लोक 21 में कहा है कि प्रकृति में रहने वाला भगवान (सतपुरुष सूर्य की तरह सर्वव्यापक होने से प्रकृति में भी स्थित) ही प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुणों रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शिव जी की उपासना का भी भोग लगाने वाला मूल परमात्मा ही है। सर्व को कर्म आधार पर नियमानुसार फल देने वाला भी वही पूर्ण ब्रह्म ही है। इसलिए गुणों का भोक्ता कहा है। गुणों का संग (उपासना) करने से अच्छी-बुरी योनियों में (प्राणी) जन्म लेते हैं। गीता अध्याय 13 श्लोक 22 में कहा है कि यही सतपुरुष (पूर्ण परमात्मा) उपद्रष्टा (सब को बाहर-भीतर से देखने वाला) तथा अनुमन्ता (कर्म अनुसार कर्म की अनुमति देने वाला), धारण करने वाला और सर्वस्वा होने के कारण महेश्वर (पूर्णब्रह्म) है जो इस शरीर (क्षेत्र) में भी है। इसी को क्षेत्री व शरीरी भी कहा है। उसे परमात्मा (अकाल पुरुष) कहा गया है।

श्लोक 23 में कहा है कि इस प्रकार जो कोई परमात्मा (पूर्णब्रह्म) तथा प्रकृति (अष्टंगी) को गुणों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) सहित उचित जान लेता है। वह सब प्रकार से पूर्णब्रह्म की उपासना करके वर्तमान में भी फिर नहीं जन्मता अर्थात् उसी समय इसी जीवन में अपनी भक्ति को सुचारू करके (पूर्ण गुरु तत्वदर्शी संत की तलाश करके) मुक्त हो जाता है।

।। मनमुखी साधना व्यर्थ ।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 24 में कहा है कि आत्मतत्व में पहुँचने के लिए कुछ तो आत्मध्यान (मैडिटेशन) के द्वारा दूसरे कुछ ज्ञान योग (केवल कीर्तन व पाठ करके) से, दूसरे जो वे कर्मयोग से आत्म दर्शन करते हैं। क्योंकि परमात्मा पूर्णब्रह्म को पाने के लिए आत्म शुद्धि की जाती है। उसके तरीके ऊपर वर्णन किए हैं। आत्म शुद्धि तो समझो खेत (क्षेत्र) संवार दिया। यदि उसमें

सत्यनाम बीज नहीं बोया तथा सारनाम रूपी कलम नहीं चढ़ाई तो भी केवल आत्म शुद्धि से भी बात नहीं बनेगी अर्थात् मुक्ति नहीं। इसलिए काल भगवान सत्यनाम की जानकारी नहीं देता। केवल एक अक्षर ओंकार (ॐ) मन्त्र का जाप बताता है। यह मन्त्र (बीज) है। इस मन्त्र से केवल स्वर्ग-महास्वर्ग तथा फिर जन्म-मरण ही प्राप्त हो सकता है अर्थात् पूर्ण मुक्ति नहीं। यहाँ पर ज्ञान तो दे दिया आम के पौधे (पूर्णब्रह्म-पूर्णपुरुष) का परंतु बीज (मन्त्र-नाम) दे दिया बबूल (काल-ब्रह्म) का। इस लिए जीव आम का फल (पूर्ण मुक्ति) प्राप्त नहीं कर पाते तथा अंत में तप्त शिला पर काल भूनता है उस समय पछताते हैं। फिर क्या बने?

कबीर, करता था तो क्यों रह्या, अब कर क्यों पछताय। बोवै पेड़ बबूल का, आम कहाँ से खाय।।

विशेष :-- *गीता अध्याय 13 श्लोक 24 का भावार्थ है कि जो सांख्य योगी अर्थात् तत्वज्ञानी शिक्षित व्यक्ति हैं वे अपनी साधना तत्वज्ञान के आधार से दूध और पानी छानकर प्रारम्भ करते हैं। दूसरे कर्म योगी अर्थात् जो ज्ञानी व शिक्षित हैं। उनको शिक्षित व्यक्ति जैसी सलाह देता है वे उनके कहने पर कर्मयोग आधार से अर्थात् ज्ञान की कांट छांट न करके भक्ति कर्म में लग जाते हैं। वे कर्मयोगी कार्य करते-2 साधना करते हैं। गीता अध्याय 5 श्लोक 4-5 में कहा है कि दोनों प्रकार के साधक (सांख्य योगी व कर्मयोगी) समान भक्ति फल प्राप्त करते हैं।*

।। भक्ति के लिए अक्षर ज्ञान आवश्यक नहीं।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 25 में कहा है कि परंतु इनसे अन्य भक्त स्वयं विद्वान न होने से दूसरों से सुनकर उपासना करते हैं तथा वे सुन कर मार्ग पर लगने वाले (श्रुति परायण:) भी यदि उनकी भक्ति पूर्ण संत के अनुसार है (सतनाम व सारनाम की करते हैं) तो मृत्यु (जन्म-मरण) से तर जाते हैं मुक्त हो जाते हैं, चाहे वे विद्वान भी न हों अर्थात् भक्ति मुक्ति के लिए पढ़ा लिखा अर्थात् विद्वान होना आवश्यक नहीं है। उसकी साधना शास्त्र विधि अनुसार होनी चाहिए।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 26 में वर्णन है कि हे अर्जुन! जितने भी स्थावर जंगम जीव हैं वे क्षेत्र (शरीर रूप खेत) तथा क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म) के संयोग से ही उत्पन्न समझ। क्योंकि इस मिट्टी आदि पांच तत्व के पुतले को पूर्ण पुरुष सतपुरुष की शक्ति ही चला रही है तथा काल अपनी प्रकृति (दुर्गा) के संयोग से जीव उत्पन्न करता है।

।।पूर्ण ज्ञानी वही है जो केवल पूर्ण परमात्मा को अविनाशी मानता है।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 27 का भाव है कि परमात्मा (पूर्णब्रह्म) को जो अविनाशी रूप से जानता है वह (साधक) सही जानने वाला है कि जीव स्थूल शरीर में नष्ट होता नजर आता है परंतु सूक्ष्म शरीर में जीवित रहता है। वह भी परमात्मा की शक्ति से ही जीवित है। उसकी शक्ति के बिना जीव निष्क्रिय है। जैसे देवी भागवत् महापुराण में प्रकृति देवी (अष्टंगी) कहती है कि हे ब्रह्मा, विष्णु, महेश! तुम और सर्व प्राणी मेरी शक्ति से चल रहे हो। यदि मैं अपनी शक्ति वापिस ले लूं तो तुम, जगत तथा सर्व प्राणी शुन्य (असहाय) हो जायेंगे। देखें देवी भागवद् महापुराण। फिर इस प्रकृति (माया) को शक्ति सतपुरुष से ही प्राप्त है। इसलिए शक्ति का मूल श्रोत पूर्ण परमात्मा होने का कारण कहा है कि उसी शक्ति से क्षेत्रज्ञ (काल) के द्वारा जीव उत्पन्न होते हैं।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 28 में कहा है कि जो साधक उसी परमात्मा को समान भाव से सर्वत्र स्थित मानता है वह आत्मघात नहीं कर रहा है। (सूर्य दूर स्थान पर होते हुए भी उसकी ऊष्णता निराकार रूप में सर्वव्यापक है)सत्य ज्ञान होने से सही मार्ग पर लग कर पूर्ण गुरु (जो

पूर्णब्रह्म के सतनाम व सारनाम का दाता है) से नाम ले कर मुक्त हो जाता है। इससे परमगति (पूर्ण मुक्ति) को प्राप्त होता है। क्योंकि पूर्ण परमात्मा सतपुरुष की भक्ति न करके तीन लोक (ब्रह्मा, विष्णु, शिव व माई-प्रकृति व काल-ब्रह्म) की साधना से जीव की लख चौरासी जूनियों में भ्रमणा-भटकणा नहीं मिटती। इसलिए यह साधना व्यर्थ है। यह काल साधना तो सर्व जीव बहुत बार कर चुके हैं। इन्द्र, कुबेर, ईश (भगवान पद ब्रह्मा, विष्णु, शिव) जैसी अच्छी उपाधी काल (ब्रह्म) साधना से अनेकों बार प्राप्त की। परंतु पूर्ण संत न मिलने से पूर्ण परमात्मा (परमेश्वर) का ज्ञान नहीं हुआ। इसलिए उत्तम साधना नहीं मिली। पूर्ण मुक्ति (परमगति) नहीं हुई। अध्याय 13 में सारे अध्याय में पूर्ण परमात्मा की जानकारी दी है कि उस परमात्मा की भक्ति से जीव पूर्ण मोक्ष अर्थात् अनादि मोक्ष प्राप्त कर सकता है। परंतु गीता जी में पूर्ण पुरुष की भक्ति कैसे करें? यह जानकारी कहीं नहीं। वह जानकारी केवल पूर्ण संत (सतगुरु) अर्थात् तत्वदर्शी संत ही दे सकते हैं। जिसका विवरण गीता अध्याय 4 मंत्र 34 में है। इसलिए गीता जी के अध्याय 13 के श्लोक 28 में कहा है कि जिसको उस परमात्मा की वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो गया वह (आत्मना आत्मानम्, न हिनस्ति) आत्म घात से बच गया। इसमें स्पष्ट है कि काल (ब्रह्म) स्वयं कहता है कि यदि मेरी भक्ति साधक करता है तो कुछ समय के लिए जन्म-मरण (कल्प अंत तक) मैं भी समाप्त कर सकता हूँ। मेरी भक्ति भी तीनों गुणों (ब्रह्मा-रजगुण, विष्णु-सतगुण, शिव-तमगुण) से ऊपर उठ कर (अर्थात् इन भगवानों की भक्ति को भी त्याग कर) केवल एक अक्षर ''ॐ'' का जाप करें। परंतु पूर्ण मुक्ति के लिए उस परमात्मा (पूर्ण ब्रह्म) की भक्ति पूर्ण आचार्य (गुरु) से नाम मन्त्र लेकर उसकी सेवा श्रद्धा से करके प्राप्त कर सकते हैं। इससे स्वसिद्ध है कि जो पूर्णब्रह्म की भक्ति करता है वह आत्मघात (आत्म हत्या) से बच जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि इस भक्ति के अतिरिक्त जो आन देव (ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवी-देवताओं, जिनकी भक्ति तो पहले ही ब्रह्म साधना में भी बाधक है इससे आगे ब्रह्म-काल) की साधना करना भी आत्मघात के समान अर्थात् व्यर्थ है। इसी का प्रमाण यजुर्वेद अध्याय 40 में भी है। कबीर साहेब कहते हैं -

कबीर, जो यम (काल) को कर्त्ता (भगवान) भाखै (कहे)। तजै सुधा (अमृत) नर विष (जहर) को चाखै।।

इस वाणी का भावार्थ है कि जो कोई साधक ब्रह्म (काल/यम) को भगवान जान कर पूजता है तथा वह अमृत (सतपुरुष) को छोड़ कर जहर (काल की साधना से जन्म-मरण, चौरासी लाख योनियों की पीड़ा रुपी जहर) को चाख रहा है। अर्थात् पूर्ण परमात्मा के पूर्ण मोक्ष का आनन्द न मिल कर काल (ब्रह्म) साधना से होने वाले जन्म-मरण व अन्य प्राणियों के कष्टमय जीवन को आनन्द समझ रहा है। इसलिए उस परमात्मा (पूर्णब्रह्म) की साधना करो तथा सतलोक में जहाँ सुख का सागर है अर्थात् कोई कष्ट नाम की वस्तु नहीं है, न जन्म-मरण है, वहाँ चलो!

।। शब्द ।।

मन तू चलि रे सुख के सागर। जहां शब्द सिंध रत्नागर।।टेक।।
कोटि जन्म जुग भरमत हो गये, कुछ नहीं हाथि लग्या रे।
कूकर (कुत्ता) शुकर (सूअर) खर (गधा) भया बौरे, कौआ हंस बुगा रे।।1।।
कोटि जन्म जुग राजा किन्हा, मिटि न मन की आशा।
भिक्षुक होकर दर–दर हांढा, मिल्या न निरगुण रासा।।2।।
इन्द्र कुबेर ईश की पदवी, ब्रह्मा वरूण धर्मराया।
विष्णु नाथ के पुर कूं पहुँचा, बहुरि अपूठा आया।।3।।
असंख जन्म जुग मरते होय गये, जीवित क्यौं न मरै रे।

द्वादश मधि महल मठ बौरे, बहुरि न देह धरै रे।।4।।
दोजिख भिसति सबै तैं देखें, राज पाट के रसिया।
त्रिलोकी से त्रिपति नांहि, यौह मन भोगी खसिया।।5।।
सतगुरु मिलैं तो इच्छा मेटैं, पद मिलि पदह समाना।
चल हंसा उस देश पठाऊं, आदि अमर अस्थाना।।6।।
च्यारि मुक्ति जहां चंपी करि हैं, माया होय रही दासी।
दास गरीब अभै पद परसै, मिले राम अविनासी।।7।।

कृपया इस शब्द को ध्यान पूर्वक विचारें। इसमें आदरणीय गरीबदास जी महाराज कह रहे हैं कि हे मन! तू सुख के सागर सतलोक चल। इस काल (ब्रह्म) लोक में असंखों जन्म मरते-जन्मते हो गए। अभी तक कुछ भी हाथ नहीं आया। चौरासी लाख योनियों का कष्ट करोड़ों बार उठाया। कुकर (कुत्ता) सुकर (सुअर) खर (गधा) जैसी कष्टमई योनियों में तंग पाया। आगे कहा है कि ब्रह्म (काल) साधना करके - ऊँ जाप, तप, यज्ञ, हवन, दान आदि करके राजा बना। इन्द्र (स्वर्गका राजा) बना और ब्रह्मा, विष्णु, महेश के उत्तम पद पर भी रहा। कुबेर (धनका देवता) भी बना, वरुण (जल का देवता) भी बना और उत्तम लोक विष्णु जी के लोक में भी विष्णु (कृष्ण, राम आदि) की साधना करके कुछ समय पुण्य कर्मों के भोग को भोगकर वापिस जन्म-मरण, नरक के चक्र में गिर गया।

।। देवी-देवताओं का राजा इन्द्र भी गधा बनता है।।

एक समय मार्कण्डे ऋषि निरंकार ईश्वर मान कर ब्रह्म (काल) की कई वर्षो से साधना कर रहे थे। इन्द्र (जो स्वर्ग का राजा है) को चिंता बनी कि कहीं यह साधक अधिक तप करके इन्द्र की पदवी प्राप्त न करले। चूंकि इन्द्र की पदवी (पोस्ट) अधिक यज्ञ करके या अधिक तप करके प्राप्त की जाती है। उसका (इन्द्र का) शासन काल बहत्तर चौकड़ी (चतुर्युगी) युग का होता है। उसके शासन काल के दौरान यदि कोई साधक इन्द्र की पदवी पाने योग्य साधना कर लेता है तो उस वर्तमान इन्द्र (स्वर्ग के राजा) को बीच में ही पद से हटा कर नए साधक को इन्द्र पद दे दिया जाता है। इसलिए इन्द्र को यह चिंता बनी रहती है कि कोई तप या यज्ञ करके मेरे राज्य को न छीन ले। इसलिए वह उस साधक का तप या यज्ञ बीच में खण्ड करवा देता है।

इसी उद्देश्य से इन्द्र ने मार्कण्डे ऋषि के पास एक उर्वसी स्वर्ग से भेजी। उर्वसी ने अपनी सिद्धि शक्ति से सुहावना मौसम बनाया तथा खूब नाची-गाई। अंत में निवस्त्र हो गई। तब मार्कण्डे ऋषि ने कहा कि हे बहन! हे बेटी! हे माई! आप यहाँ किस लिए आई? इस पर उर्वसी ने कहा कि हे मार्कण्डे गुसांई! आप जीत गए मैं हार गई। आप एक बार इन्द्र लोक में चलो नहीं तो मेरा मजाक करेंगे और मुझे सजा दी जाएगी। मार्कण्डे बोले मैं जहाँ की साधना (महास्वर्ग-ब्रह्म लोक की साधना) कर रहा हूँ वहाँ पर जो नाचने वाली तथा गाने वाली हैं उनके पैर धोने वाली तेरे जैसी सात-2 बान्दियाँ हैं। फिर तेरे को क्या देखूं। तेरे से अगली कोई अधिक सुन्दर हो उसे भेज दे। इस पर उर्वसी ने कहा कि इन्द्र की पटरानी मैं ही हूँ अर्थात् मेरे से सुन्दर कोई नहीं है।

इस पर मार्कण्डे गोंसाई बोले कि जब इन्द्र मरेगा तब क्या करेगी? उर्वसी बोली मैं चौदह इन्द्र वरूंगी अर्थात् मैं तो एक बनी रहूँगी मेरे सामने चौदह इन्द्र अपनी-2 इन्द्र पदवी भोग कर मर जाएंगे। मेरी आयु स्वर्ग की पटरानी के रूप में है। (72 गुणा 14) 1008 चतुर्युग तक अर्थात् एक ब्रह्मा के दिन (एक कल्प) की आयु एक इन्द्र की पटरानी शची की है।

मार्कण्डे ऋषि बोले चौदह इन्द्र भी मरेंगे तब क्या करेगी? उर्वसी बोली जितने इन्द्र मैं भोगुंगी वे गधे बनेंगे तथा मैं गधी बनूंगी।

गरीब, एती उम्र, बुलंद मरेगा अंत रे। सतगुरु लगे न कान, न भेटैं संत रे।।

फिर इन्द्र आया तथा कहने लगा कि हे बन्द निवाज! आप जीत गए हम हार गए। चलो इन्द्र की गद्दी प्राप्त करो। इस पर मार्कण्डे ऋषि बोले- रे-रे इन्द्र क्या कह रहा है? इन्द्र का राज मेरे किस काम का। मैं तो ब्रह्म लोक की साधना कर रहा हूँ। वहाँ पर तेरे जैसे इन्द्र अलिलों (नील संख्या) में हैं उन्होंने मेरे चरण छुए। तू भी अनन्य मन से (नीचे की साधना - ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा देवी-देवताओं का त्याग करने को अनन्य मन कहते हैं) ब्रह्म की साधना कर ले। ब्रह्म लोक में साधक कल्पों तक मुक्त हो जाता है।

इस पर इन्द्र ने कहा ऋषि जी, फिर कभी देखेंगे। अब तो मौज मारने दो। यहाँ विशेष विचारने की बात है कि इन्द्र जी को मालूम है कि इस क्षणिक स्वर्ग के राज का सुख भोग कर गधा बनुंगा। फिर भी मन व इन्द्रियों के वश हुआ विकारों के आनन्द को नहीं त्यागना चाहता। इसी प्रकार जो शराब पीता है उसे उत्तम मान कर त्यागना नहीं चाहता। इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी अपनी पदवी को भोग कर मर जाएंगे और फिर चौरासी लाख योनियों को प्राप्त होगें। नई श्रेष्ठ (परम) आत्मा काल निरंजन के घर प्रकृति (अष्टंगी) के उदर से जन्म लेती है तथा उन्हें फिर तीन लोक का राज्य दे देता है- ब्रह्मा को शरीर बनाना, विष्णु को स्थिति और शिव को संहार (प्रलय)। चूंकि काल (ब्रह्म) शापवश प्रतिदिन एक लाख (मनुष्य-देव-ऋषि) शरीर धारी प्राणी खाता है। उसके लिए इसके तीनों पुत्र व्यवस्था बनाए रखते हैं।

आदरणीय गरीबदास साहेब जी कह रहे हैं कि हे नादान मन! असंख्यों जन्म हो गए इस काल लोक में कष्ट उठाते। अब जीवित मर ले। जीवित मरना है - न पृथ्वी के राज की चाह, न स्वर्ग के राज की, न ब्रह्मा-विष्णु-शिव बनने की चाह, न शराब-तम्बाखू-सुल्फा, न अफीम, न माँस प्रयोग की इच्छा तथा तीन लोक व ब्रह्म लोक की साधना को त्याग कर उस पूर्ण परमात्मा (पूर्णब्रह्म सतपुरुष) की साधना अनन्य (अव्याभिचारिणी) भक्ति करके सतलोक (सच्चखण्ड) चला जा। फिर तेरा जन्म-मरण सदा के लिए समाप्त हो जाएगा। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण पवित्र गीता जी के अध्याय 13 में तथा रह-रह कर प्रत्येक अध्याय में दिया है।

फिर कहा है कि कोई पूर्ण संत (सतगुरु) मिले तो सही ज्ञान (जो गीता जी के अध्याय 13 पूरे में है) बता कर उत्तम साधना सतनाम तथा सारनाम दे कर पार करे। जहाँ (सतलोक में) चार मुक्ति जो ब्रह्म साधना की अंतिम उपलब्धि है वहाँ (सतलोक के) के स्थाई सुख के सामने तुच्छ है तथा माया (सर्व सुविधा देने वाली) वहाँ आम भक्त (हंस) की सेवक है। अर्थात् हर सुविधा तथा सुख चरणों में पड़ा रहता है। इन्द्र का स्वर्ग राज, सतलोक की तुलना में कौवे की बीट (टटी) के समान है। तथा मिले राम अविनाशी (परम अक्षर ब्रह्म) की प्राप्ति हो जाएगी। उसको प्राप्त करके पूर्ण मुक्त (परम गति को प्राप्त) हो जाएगा।

।। क्षेत्र (शरीर) क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म) तथा क्षेत्री (परमात्मा-आत्मा सहित) को जान कर भक्त काल-जाल से मुक्त हो जाता है।।

अध्याय 13 के श्लोक 29 में कहा है कि जो कोई साधक सम्पूर्ण कर्मों को प्रकृति के वश किए जा रहे हैं ऐसे समझ लेता है व इस जीव को निर्दोष जानता है। फिर पूर्ण परमात्मा की साधना पूर्ण

गुरु रूपी वकील करके मुकदमा लड़ कर पार होने की चेष्टा करता है।

अध्याय 13 के श्लोक 30 में कहा है कि जब (कोई साधक) सम्पूर्ण प्राणियों के भिन्न-2 भाव को तथा विस्तार (उत्पत्ति) को एक ही में स्थित देखता है तब वह उस पूर्ण परमात्मा (ततः ब्रह्म) को प्राप्त हो जाता है। देखने का भाव है कि ज्ञान रूपी आँखों से मूल ज्ञान के आधार पर अपनी साधना बदल कर पूर्ण संत (गुरु) की शरण जा कर पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर जाता है। क्योंकि उसे काल (ब्रह्म) के जाल की पूर्ण जानकारी हो जाती है।

अध्याय 13 के श्लोक 31 में कहा है कि हे अर्जुन! अनादि (सदा एक रस तथा जिसकी उत्पत्ति कभी नहीं होती) होने से तथा निर्गुण होने से यह अविनाशी परमात्मा पूर्णब्रह्म शरीर में रहता हुआ भी न कुछ करता है तथा न लिप्त ही होता है। जैसे सूर्य का प्रकाश सर्व अच्छे बुरे पदार्थों पर पड़ता है, परन्तु लिप्त नहीं होता, इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा अपनी निराकार शक्ति से सर्व कार्य करता हुआ स्वयं कुछ करता नजर नहीं आता।

श्लोक 31 का भाव है कि जैसे सूर्य दूरस्थ होने से भी जल के घड़े में दृष्टिगोचर होता है तथा निर्गुण शक्ति अर्थात् ताप प्रभावित करता रहता है, इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा अपने सत्यलोक में रहते हुए भी प्रत्येक आत्मा में प्रतिबिम्ब रूप से रहता है। जैसे अवतल लैंस पर सूर्य की किरणें अधिक ताप पैदा कर देती हैं तथा उत्तल लैंस पर अपना स्वाभाविक प्रभाव ही रखती हैं। इसी प्रकार शास्त्र विधि अनुसार साधक अवतल लैंस बन जाता है। जिससे ईश्वरीय शक्ति का अधिक लाभ प्राप्त करता है तथा शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण करने वाला साधक केवल कर्म संस्कार ही प्राप्त करता है।

अध्याय 13 के श्लोक 32 में कहा है कि जैसे प्रकाश सब जगह पर व्याप्त है। फिर भी सुक्ष्म होने के कारण निर्लेप है। ऐसे ही शरीर में जीव आत्मा भी निर्लेप है। चूंकि परमात्मा में आत्मा ऐसे रहती है जैसे वायु में गंध। इसलिए दोनों ही शरीर में विद्यमान रहते हैं तथा आत्मा का गुण भी परमात्मा से मिलता जुलता है। शरीर में आत्मा जीव संज्ञा में है परंतु परमात्मा निर्लेप अर्थात् अविनाशी है।

अध्याय 13 के श्लोक 33 में कहा है कि हे अर्जुन! जिस प्रकार एक सूर्य इस सम्पूर्ण लोक (ब्रह्मण्ड) को प्रकाशित करता है उसी प्रकार एक ही पूर्ण परमात्मा (पूर्णब्रह्म) सम्पूर्ण क्षेत्र (ब्रह्मण्ड-पिंड) को प्रकाशित (शक्ति युक्त बनाता है जिससे यह पुतला चलता रहता है) करता है क्योंकि पिंड (शरीर/क्षेत्र) तथा ब्रह्मण्ड की रचना समान है जैसे एक आत्मा सर्व शरीर को शक्ति देती है ऐसे पूर्ण परमात्मा ब्रह्मण्ड को शक्ति देता है।

अध्याय 13 के श्लोक 34 में कहा है कि इस प्रकार क्षेत्र (शरीर) तथा क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म) के भेद को तत्व ज्ञान रूपी आँखों से अच्छी तरह जान लेता है। वे प्राणी प्रकृति (काल की शक्ति सहयोगिनी-माया-अष्टंगी) से मुक्त होकर पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् काल जाल से निकल जाते हैं। परम शांति (पूर्ण मुक्ति) को प्राप्त हो जाता है। गीता जी के अध्याय 13 के श्लोक 1,2 में स्पष्ट है कि जो क्षेत्र (शरीर-पिण्ड) को जानता है वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है तथा वह क्षेत्रज्ञ भी मुझे (काल को) ही जान। इसलिए अध्याय 13 के श्लोक 34 का भावार्थ है कि जो क्षेत्र (शरीर) तथा क्षेत्रज्ञ (काल) को जान लेता है वह पूर्ण परमात्मा को प्राप्त हो जाता है अर्थात् काल साधना त्याग कर पूर्ण परमात्मा की साधना करके माया व काल के जाल से मुक्त हो जाते हैं।

❑❑❑

।।तेरहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

अध्याय 13 का श्लोक 1 (''भगवान उवाच'')

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।१।

इदम्, शरीरम्, कौन्तेय, क्षेत्रम्, इति, अभिधीयते,
एतत्, यः, वेत्ति, तम्, प्राहुः, क्षेत्रज्ञः, इति, तद्विदः।।1।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (इदम्) यह (शरीरम्) शरीर (क्षेत्रम्) क्षेत्र (इति) इस नामसे (अभिधीयते) कहा जाता है और (एतत्) इसको (यः) जो (वेत्ति) जानता है (तम्) उसे (क्षेत्रज्ञः) क्षेत्रज्ञ (इति) इस नामसे (तद्विदः) तत्वको जाननेवाले ज्ञानीजन (प्राहुः) कहते हैं। (1)

अध्याय 13 का श्लोक 2

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम।२।

क्षेत्रज्ञम्, च, अपि, माम्, विद्धि, सर्वक्षेत्रेषु, भारत,
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः, ज्ञानम्, यत्, तत्, ज्ञानम्, मतम्, मम।।2।।

अनुवाद : (भारत) हे अर्जुन! तू (सर्वक्षेत्रेषु) सब क्षेत्रोंमें अर्थात् शरीरों में (क्षेत्रज्ञम्) जानने वाला (अपि) भी (माम्) मुझे ही (विद्धि) जान (च) ओर (क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः) क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका (यत्) जो (ज्ञानम्) तत्वसे जानना है (तत्) वह (ज्ञानम्) ज्ञान है (मम) मेरा (मतम्) मत अर्थात् विचार है। (2)

अध्याय 13 का श्लोक 3

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु।३।

तत्, क्षेत्रम्, यत्, च, यादृक्, च, यद्विकारि, यतः, च, यत्,
सः, च, यः, यत्प्रभावः, च, तत्, समासेन, मे, श्रृणु।।3।।

अनुवाद : (तत्) वह (क्षेत्रम्) क्षेत्र (यत्) जो (च) और (यादृक्) जैसा है (च) तथा (यद्विकारि) जिन विकारोंवाला है (च) ओर (यतः) जिस कारणसे (यत्) जो हुआ है (च) तथा (सः) वह (यः) जो (च) और (यत्प्रभावः) जिस प्रभाववाला है (तत्) वह सब (समासेन) संक्षेपमें (मे) मुझसे (श्रृणु) सुन। (3)

अध्याय 13 का श्लोक 4

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः।४।

ऋषिभिः, बहुधा, गीतम्, छन्दोभिः, विविधैः, पृथक्,

ब्रह्मसूत्रपदैः, च, एव, हेतुमद्भिः, विनिश्चितैः।।4।।

अनुवाद : (ऋषिभिः) ऋषियोंद्वारा (बहुधा) बहुत प्रकारसे (गीतम्) कहा गया है और (विविधैः) विविध (छन्दोभिः) वेदमन्त्रोंद्वारा भी (पृथक्) विभागपूर्वक (गीतम्) कहा गया है (च) तथा (विनिश्चितैः) भलीभाँति निश्चय किये हुए (हेतुमद्भिः) युक्तियुक्त (ब्रह्मसूत्रपदैः) ब्रह्मसूत्रके पदों द्वारा (एव) भी कहा गया है। (4)

अध्याय 13 का श्लोक 5

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः।५।

महाभूतानि, अहंकारः, बुद्धिः, अव्यक्तम्, एव, च,
इन्द्रियाणि, दश, एकम्, च, पच, च, इन्द्रियगोचराः।। 5।।

अनुवाद : (महाभूतानि) पाँच महाभूत (अंहकारः) अंहकार (बुद्धिः) बुद्धि (च) और (अव्यक्तम्) अप्रत्यक्ष (एव) भी (च) तथा (दश) दस (इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ, (एकम्) एक मन (च) और (पच) पाँच (इन्द्रियगोचराः) इन्द्रियोंके विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। (5)

अध्याय 13 का श्लोक 6

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्।६।

इच्छा, द्वेषः, सुखम्, दुःखम्, सङ्घातः, चेतना, धृतिः,
एतत्, क्षेत्रम्, समासेन, सविकारम्, उदाहृतम्।।6।।

अनुवाद : (इच्छा) इच्छा (द्वेषः) द्वेष (सुखम्) सुख (दुःखम्) दुःख (सङ्घातः) स्थूल देहका पिण्ड (चेतना) चेतना और (धृतिः) धृति इस प्रकार (सविकारम्) विकारों के सहित (एतत्) यह (क्षेत्रम्) क्षेत्र (समासेन) संक्षेपमें (उदाहृतम्) कहा गया है। (6)

अध्याय 13 का श्लोक 7

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः।७।

अमानित्वम्, अदम्भित्वम्, अहिंसा, क्षान्तिः, आर्जवम्,
आचार्योपासनम्, शौचम्, स्थैर्यम्, आत्मविनिग्रहः।।7।।

अनुवाद : (अमानित्वम्) अभिमानका अभाव (अदम्भित्वम्) दम्भाचरणका अभाव (अहिंसा) किसी भी प्राणीको किसी प्रकार भी न सताना (क्षान्तिः) क्षमाभाव (आर्जवम्) सरलता (आचार्योपासनम्) श्रद्धाभक्तिसहित गुरुकी सेवा (शौचम्) बाहर-भीतरकी शुद्धि (स्थैर्यम्) अन्तःकरणकी स्थिरता और (आत्मविनिग्रहः) आत्मशोध। (7)

अध्याय 13 का श्लोक 8

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ।८।

इन्द्रियार्थेषु, वैराग्यम्, अनहंकारः, एव, च,
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।।8।।

अनुवाद : (इन्द्रियार्थेषु) इन्द्रियों के आनन्दके भोगोंमें (वैराग्यम्) आसक्तिका अभाव (च) और (अनहंकारः,एव) अहंकारका भी अभाव (जन्ममृत्युजरा व्याधिदुःख, दोषानुदर्शनम्) जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदिमें दुःख और दोषोंका बार-बार विचार करना। (8)

अध्याय 13 का श्लोक 9

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु । ९ ।

असक्तिः, अनभिष्वङ्गः, पुत्रदारगृहादिषु,
नित्यम्, च, समचित्तत्वम्, इष्टानिष्टोपपत्तिषु।।9।।

अनुवाद : (पुत्रदारगृहादिषु) पुत्र-स्त्री-घर और धन आदिमें (असक्तिः) आसक्तिका अभाव (अनभिष्वङ्गः) ममताका न होना (च) तथा (इष्टानिष्टोपपत्तिषु) उपास्य देव-इष्ट या अन्य अनउपास्य देव की प्राप्ति या अप्राप्ति में अर्थात् इष्टवादिता को भूलकर (नित्यम्) सदा ही (समचित्तत्वम्) चितका सम रहना। (9)

अध्याय 13 का श्लोक 10

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ।१०।

मयि, च, अनन्ययोगेन, भक्तिः, अव्यभिचारिणी,
विविक्तदेशसेवित्वम्, अरतिः, जनसंसदि।।10।।

अनुवाद : (मयि) मुझे (अनन्ययोगेन) अनन्य भक्ति के द्वारा (अव्यभिचारिणी) केवल एक इष्ट पर आधारित (भक्तिः) भक्ति (च) तथा (विविक्तदेशसेवित्वम्) एकान्त और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव और (जनसंसदि) विकारी मनुष्योंके समुदायमें (अरतिः) प्रेमका न होना। (10)

अध्याय 13 का श्लोक 11

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।११।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम्, तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्,
एतत्, ज्ञानम्, इति, प्रोक्तम्, अज्ञानम्, यत्, अतः, अन्यथा।।11।।

अनुवाद : (अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम्) अध्यात्मज्ञानमें नित्य स्थिति और (तत्वज्ञानार्थदर्शनम्) तत्वज्ञानके हेतु देखना (एतत्) यहसब (ज्ञानम्) ज्ञान है और (यत्) जो (अतः) इससे (अन्यथा) विपरीत है (अज्ञानम्) वह अज्ञान है (इति) ऐसा (प्रोक्तम्) कहा है। (11)

अध्याय 13 का श्लोक 12

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।१२।

ज्ञेयम्, यत्, तत्, प्रवक्ष्यामि, यत्, ज्ञात्वा, अमृतम्, अश्नुते।
अनादिमत्, परम्, ब्रह्म, न, सत्, तत्, न, असत्, उच्यते।।12।।

अनुवाद : (यत्) जो (ज्ञेयम्) जानने योग्य है तथा (यत्) जिसको (ज्ञात्वा) जानकर मनुष्य (अमृतम्) परमानन्दको (अश्नुते) प्राप्त होता है (तत्) उसको (प्रवक्ष्यामि) भलीभाँति कहूँगा। (तत्) वह (अनादिमत्) अनादिवाला (परम्) परम (ब्रह्म) ब्रह्म (न) न (सत्) सत् ही (उच्यते) कहा जाता

है (न) न (असत्) असत् ही। (12)

अध्याय 13 का श्लोक 13

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति। १३।

सर्वतः पाणिपादम्, तत्, सर्वतोक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमत्, लोके, सर्वम्, आवृत्य, तिष्ठति।।13।।

अनुवाद : (तत्) वह (सर्वतःपाणिपादम्) सब ओर हाथ-पैरवाला (सर्वतोक्षिशिरोमुखम्) सब ओर नेत्र सिर और मुखवाला तथा (सर्वतःश्रुतिमत्) सब ओर कानवाला है। क्योंकि वह (लोके)संसारमें (सर्वम्) सबको (आवृत्य) व्याप्त करके (तिष्ठति) स्थित है। (13)

अध्याय 13 का श्लोक 14

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च। १४।

सर्वेन्द्रियगुणाभासम्, सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तम्, सर्वभृत्, च, एव, निर्गुणम्, गुणभोक्तृ, च।।14।।

अनुवाद : (सर्वेन्द्रियगुणाभासम्) सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है परंतु वास्तवमें (सर्वेन्द्रियविवर्जितम्) सब इन्द्रियोंसे रहित है (च) तथा (असक्तम्) आसक्तिरहित होनेपर (एव) भी (सर्वभृत्) सबका धारण-पोषण करनेवाला (च) और (निर्गुणम्) निर्गुण होनेपर भी (गुणभोक्तृ) गुणोंको भोगनेवाला है। (14)

अध्याय 13 का श्लोक 15

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्। १५।

बहिः, अन्तः, च, भूतानाम्, अचरम्, चरम्, एव, च।
सूक्ष्मत्वात्, तत्, अविज्ञेयम्, दूरस्थम्, च, अन्तिके, च, तत्।।15।।

अनुवाद : (भूतानाम्) चराचर सब भूतोंके (बहिः अन्तः) बाहर-भीतर परिपूर्ण है (च) और (चरम् अचरम्) चर-अचररूप (एव) भी वही है (च) और (तत्) वह (सूक्ष्मत्वात्) सूक्ष्म होनेसे (अविज्ञेयम्) अविज्ञेय है अर्थात् जिसकी सही स्थिति न जानी जाए। (च) तथा (अन्तिके) अति समीपमें (च) और (दूरस्थम्) दूरमें भी स्थित (तत्) वही है। (15)

अध्याय 13 का श्लोक 16

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च। १६।

अविभक्तम्, च, भूतेषु, विभक्तम्, इव, च, स्थितम्।
भूतभर्तृ, च, तत्, ज्ञेयम्, ग्रसिष्णु, प्रभविष्णु, च।।16।।

अनुवाद : (अविभक्तम्) विभागरहित होनेपर (च) भी (भूतेषु) प्राणियों में (विभक्तम् इव) विभक्त-सा (स्थितम्) स्थित है (च) तथा (तत्) वह (ज्ञेयम्) जाननेयोग्य परमात्मा (भूतभर्तृ) विष्णुरूपसे भूतों को धारण-पोषण करनेवाला (च) और (ग्रसिष्णु) संहार करनेवाला (च) तथा

(प्रभविष्णु) सबको उत्पन्न करनेवाला है। (16)

अध्याय 13 का श्लोक 17

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।१७।

ज्योतिषाम्, अपि, तत्, ज्योतिः, तमसः, परम्, उच्यते।
ज्ञानम्, ज्ञेयम्, ज्ञानगम्यम्, हृदि, सर्वस्य, विष्ठितम्।।17।।

अनुवाद : (तत्) वह पूर्णब्रह्म (ज्योतिषाम्) ज्योतियोंका (अपि) भी (ज्योतिः) ज्योति एवं (तमसः) मायाधारी काल से (परम्) अन्य (उच्यते) कहा जाता है वह परमात्मा (ज्ञानम्) बोधस्वरूप (ज्ञेयम्) जाननेके योग्य एवं (ज्ञानगम्यम्) तत्त्वज्ञानसे प्राप्त करनेयोग्य है और (सर्वस्य)सबके(हृदि)हृदयमें (विष्ठितम्)विशेषरूपसे स्थित है। (17)

अध्याय 13 का श्लोक 18

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते।१८।

इति, क्षेत्रम् तथा, ज्ञानम्, ज्ञेयम्, च, उक्तम्, समासतः।
मद्भक्तः, एतत्, विज्ञाय, मद्भावाय, उपपद्यते।।18।।

अनुवाद : (इति) इस प्रकार (क्षेत्रम्) शरीर (तथा) तथा (ज्ञेयम्) जानने योग्य परमात्मा का (ज्ञानम्) ज्ञान (समासतः) संक्षेपसे (उक्तम्) कहा है (च) और (मद्भक्तः) मत् भक्त अर्थात् इस मत् अर्थात् विचार को जानने वाला जिज्ञासु को मद्भक्त कहा है अर्थात् मेरे मत् को जानने वाला मेरा भक्त(एतत्) इसको (विज्ञाय) तत्त्वसे जानकर (मद्भावाय) मतावलम्बी अर्थात् मेरे उसी विचार भाव को (उपपद्यते) प्राप्त हो जाता है काल अर्थात् मेरे ब्रह्म साधना त्याग कर पूर्णब्रह्म अर्थात् सतपुरुष की साधना करके जन्म-मरण से पूर्ण रूप से मुक्त हो जाता है। (18)

विशेष :-- यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 9 में कहा है कि जो साधक पूर्व जन्मों में ब्रह्म साधना करता था। वह वर्तमान जन्म में भी उसी भाव से भावित रहता है। वह ब्रह्म साधना ही करता है। जब उसे तत्वदर्शी सन्त जो ब्रह्म व पूर्ण ब्रह्म की भक्ति की भिन्नता बताता है, मिल जाता है तो तुरन्त सत्य साधना पर लग जाता है।

अध्याय 13 का श्लोक 19

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।१९।

प्रकृतिम्, पुरुषम्, च, एव, विद्धि, अनादी, उभौ, अपि।
विकारान्, च, गुणान्, च, एव, विद्धि, प्रकृतिसम्भवान्।।19।।

अनुवाद : (प्रकृतिम्) प्रकृति अर्थात् प्रथम माया जिसे पराशक्ति भी कहते हैं (च) और (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा (उभौ) इन दोनोंको (एव) ही तू (अनादी) अनादि (विद्धि) जान (च) और (विकारान्) राग-द्वेषादि विकारोंको (च) तथा (गुणान्) त्रिगुणात्मक तीनों गुणों अर्थात् रजगुण ब्रह्मा,सतगुण विष्णु तथा तम्गुण शिव जी को (अपि) भी (प्रकृतिसम्भवान् एव) प्रकृतिसे ही उत्पन्न (विद्धि) जान। यही प्रमाण गीता अध्याय 14 श्लोक 5 में भी है कि तीनों गुण अर्थात् रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव जी प्रकृति से उत्पन्न हैं। (19)

अध्याय 13 का श्लोक 20

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते। २०।

कार्यकरणकर्तृत्वे, हेतुः, प्रकृतिः, उच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानाम्, भोक्तृत्वे, हेतुः, उच्यते।।20।।

अनुवाद : (कार्यकरणकर्तृत्वे) कार्य और करणको उत्पन्न करनेमें (हेतुः) हेतु (प्रकृतिः) प्रकृति (उच्यते) कही जाती है और (पुरुषः) सतपुरुष (सुखदुःखानाम्) सुख-दुःखोंके (भोक्तृत्वे) जीवात्मा को भोग भोगवाने के कारण भोगनेमें (हेतुः) हेतु (उच्यते) कहा जाता है। गीता अध्याय 18 श्लोक 16 में कहा है कि परमेश्वर सर्व प्राणियों को यन्त्र की तरह कर्मानुसार भ्रमण कराता हुआ सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित है। गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा तो गीता ज्ञान दाता से अन्य है। वही अविनाशी परमात्मा तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण पोषण करता है। (20)

अध्याय 13 का श्लोक 21

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु। २१।

पुरुषः, प्रकृतिस्थः, हि, भुङ्क्ते, प्रकृतिजान्, गुणान्।
कारणम्, गुणसंगः, अस्य, सदसद्योनिजन्मसु।।21।।

अनुवाद : (प्रकृतिस्थः) प्रकृतिमें स्थित (हि) ही (पुरुषः) पुरुष अर्थात् परमात्मा (प्रकृतिजान्) प्रकृतिसे उत्पन्न (गुणान्) त्रिगुणात्मक (भुङ्क्ते) जीवात्मा को कर्मानुसार भोग भोगवाने के कारण भोगता है और इन (गुणसंगः) गुणोंका संग ही (अस्य) इस जीवात्माके (सदसद्योनिजन्मसु)अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका(कारणम्)कारण है। यही प्रमाण गीता अध्याय 14 श्लोक 5 में भी है तथा अध्याय 18 श्लोक 16 में भी है। (21)

अध्याय 13 का श्लोक 22

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः। २२।

उपद्रष्टा, अनुमन्ता, च, भर्ता, भोक्ता, महेश्वरः।
परमात्मा, इति, च, अपि, उक्तः, देहे, अस्मिन्, पुरुषः, परः।।22।।

अनुवाद : (अस्मिन्) इस (देहे अपि) देहमें भी स्थित (पुरुषः) यह सतपुरुष अर्थात् पूर्ण ब्रह्म वास्तव में (परः) सर्वोपरि प्रभु तो गीता ज्ञान दाता से दूसरा अर्थात् अन्य ही है। वही (उपद्रष्टा) साक्षी होनेसे उपद्रष्टा (च) और (अनुमन्ता) यथार्थ सम्ति देनेवाला होनेसे अनुमन्ता (भर्ता) सबका धारण-पोषण करनेवाला होनेसे भर्ता (भोक्ता) जीवात्मा को भोग भोगवाने के कारण भोक्ता, (महेश्वरः) ब्रह्म व परब्रह्म आदिका भी स्वामी होनेसे महेश्वर (च) और (परमात्मा) परमात्मा (इति) ऐसा (उक्तः) कहा गया है। यही प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में है। (22)

अध्याय 13 का श्लोक 23

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते। २३।

यः, एवम्, वेत्ति, पुरुषम्, प्रकृतिम्, च, गुणैः, सह,
सर्वथा, वर्तमानः, अपि, न, सः, भूयः, अभिजायते।।23।।

अनुवाद : (एवम्) इस प्रकार (पुरुषम्) सतपुरुषको (च) और (गुणैः) गुणों अर्थात् रजगुण ब्रह्म, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव जी के (सह) सहित (प्रकृतिम्) माया अर्थात् दुर्गा को (यः) जो (वेत्ति) तत्त्वसे जानता है (सः) वह (सर्वथा) सब प्रकारसे (वर्तमानः) वर्तमान में शास्त्र विरुद्ध भक्ति साधना से मुड़ जाता है अर्थात् शास्त्र विधि अनुसार भक्ति कर्मों को वर्तमान में ही करता हुआ (अपि) भी (भूयः) फिर (न) नहीं (अभिजायते) जन्मता। (23)

अध्याय 13 का श्लोक 24

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।२४।

ध्यानेन, आत्मनि, पश्यन्ति, केचित्, आत्मानम्, आत्मना।
अन्ये, साङ्ख्येन, योगेन, कर्मयोगेन, च, अपरे।।24।।

अनुवाद : (आत्मानम्) परमात्माको (केचित्) कितने ही मनुष्य तो (आत्मना) अपनीदिव्य दृष्टि से (ध्यानेन) ध्यानके द्वारा (आत्मनि) अपने शरीर में अपने अन्तःकरण में (पश्यन्ति) देखते हैं, (अन्ये) अन्य कितने ही (साङ्ख्येन योगेन) ज्ञानयोग के द्वारा (च) और (अपरे) दूसरे कितने ही (कर्मयोगेन) कर्मयोगके द्वारा देखते हैं अर्थात् अनुभव करते हैं। गीता अध्याय 5 श्लोक 4-5 में भी प्रमाण है। (24)

अध्याय 13 का श्लोक 25

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः।२५।

अन्ये, तु, एवम्, अजानन्तः, श्रुत्वा, अन्येभ्यः, उपासते।
ते, अपि, च, अतितरन्ति, एव, मृत्युम्, श्रुतिपरायणाः।।25।।

अनुवाद : (तु) इसके विपरित (अन्ये) इनसे दूसरे (एवम्) इस प्रकार (अजानन्तः) न जानते हुए (अन्येभ्यः) दूसरोंसे अर्थात् तत्वके जाननेवाले पुरुषोंसे (श्रुत्वा) सुनकर ही तदनुसार (उपासते) उपासना करते हैं (च) और (ते) वे (श्रुतिपरायणाः) कही सुनी मानने वाले (अपि) भी (मृत्युम्) मृत्युरूप संसारसागरको (अतितरन्ति, एव) निःसन्देह तर जाते हैं। गीता अध्याय 5 श्लोक 4-5 में भी प्रमाण है। (25)

अध्याय 13 का श्लोक 26

यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ।२६।

यावत्, सजायते, किंचित, सत्त्वम्, स्थावरजंगमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्, तत्, विद्धि, भरतर्षभ।।26।।

अनुवाद : (भरतर्षभ) हे भरतर्षभ अर्जुन! (यावत्) यावन्मात्र (किंचित्) जितने भी (स्थावरजंगमम्) स्थावरजंगम (सत्त्वम्) प्राणी (सजायते) उत्पन्न होते हैं, (तत्) उन सबको तू (क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्) क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे ही उत्पन्न (विद्धि) जान। (26)

अध्याय 13 का श्लोक 27

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति। २७।

समम्, सर्वेषु, भूतेषु, तिष्ठन्तम्, परमेश्वरम्।
विनश्यत्सु, अविनश्यन्तम्, यः, पश्यति, सः, पश्यति।।27।।

अनुवाद : (यः) जो (विनश्यत्सु) नष्ट होते हुए (सर्वेषु) सब (भूतेषु) चराचर भूतोंमें (परमेश्वरम्) परमेश्वरको (अविनश्यन्तम्) नाशरहित और (समम्) समभावसे (तिष्ठन्तम्) स्थित (पश्यति)देखता है (सः)वही यथार्थ (पश्यति)देखता है अर्थात् वह पूर्णज्ञानी है। (27)

अध्याय 13 का श्लोक 28

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्। २८।

समम्, पश्यन्, हि, सर्वत्र, समवस्थितम्, ईश्वरम्।
न, हिनस्ति, आत्मना, आत्मानम्, ततः, याति, पराम्, गतिम्।।28।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (सर्वत्र) सबमें (समवस्थितम्) सर्वव्यापक (ईश्वरम्) उत्तम पुरूष अर्थात् परमेश्वरको (समम्) समान (पश्यन्) देखता हुआ (आत्मना) अपनेद्वारा (आत्मानम्) अपनेको (न हिनस्ति) नष्ट नहीं करता अर्थात् आत्मघात नहीं करता (ततः) इससे वह (पराम्) परम (गतिम्) गतिको (याति) प्राप्त होता है। (28)

अध्याय 13 का श्लोक 29

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति। २९।

प्रकृत्या, एव, च, कर्माणि, क्रियमाणानि, सर्वशः।
यः, पश्यति, तथा, आत्मानम्, अकर्तारम्, सः, पश्यति।।29।।

अनुवाद : (च) और (यः) जो साधक (कर्माणि) सम्पूर्ण कर्मोंको (सर्वशः) सब प्रकारसे (प्रकृत्या) प्रकृतिके द्वारा (एव) ही (क्रियमाणानि) किये जाते हुए (पश्यति) देखता है (तथा) और (आत्मानम्) परमात्माको (अकर्तारम्) अकर्त्ता देखता है (सः) वही यथार्थ (पश्यति) देखता है। (29)

अध्याय 13 का श्लोक 30

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा। ३०।

यदा, भूतपृथग्भावम्, एकस्थम्, अनुपश्यति।
ततः, एव, च, विस्तारम्, ब्रह्म, सम्पद्यते तदा।।30।।

अनुवाद : (यदा) जब कोई साधक (भूतपृथग्भावम्) प्राणियों के भिन्न-2 भावको (च) तथा (विस्तारम्) विस्तार को (अनुपश्यति) देखता है अर्थात् जान लेता है (तदा) तब वह भक्त (एकस्थम्) एक परमात्मा में स्थित (ततः ब्रह्म) उस पूर्ण परमात्मा को (एव) ही (सम्पद्यते) प्राप्त हो जाता है। (30)

अध्याय 13 का श्लोक 31

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते। ३१।

अनादित्वात्, निर्गुणत्वात्, परमात्मा, अयम्, अव्ययः।
शरीरस्थः, अपि, कौन्तेय, न, करोति, न, लिप्यते।।31।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (अनादित्वात्) अनादि होनेसे और (निर्गुणत्वात्) उसकी शक्ति निर्गुण होनेसे (अयम्) यह (अव्ययः) अविनाशी (परमात्मा) परमात्मा (शरीरस्थः) शरीरमें रहता हुआ (अपि) भी वास्तवमें (न) न तो (करोति) कुछ करता है और (न) न (लिप्यते) लिप्त ही होता है। (31)

भावार्थ - श्लोक 31 का भाव है कि जैसे सूर्य दूरस्थ होने से भी जल के घड़े में दृष्टिगोचर होता है तथा निर्गुण शक्ति अर्थात् ताप प्रभावित करता रहता है, इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा अपने सत्यलोक में रहते हुए भी प्रत्येक आत्मा में प्रतिबिम्ब रूप से रहता है। जैसे अवतल लैंस पर सूर्य की किरणें अधिक ताप पैदा कर देती हैं तथा उत्तल लैंस पर अपना स्वाभाविक प्रभाव ही रखती हैं। इसी प्रकार शास्त्र विधि अनुसार साधक अवतल लैंस बन जाता है। जिससे ईश्वरीय शक्ति का अधिक लाभ प्राप्त करता है तथा शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण करने वाला साधक केवल कर्म संस्कार ही प्राप्त करता है। उसे उत्तल लैंस जानो।

अध्याय 13 का श्लोक 32

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते। ३२।

यथा, सर्वगतम्, सौक्ष्म्यात्, आकाशम्, न, उपलिप्यते।
सर्वत्र, अवस्थितः, देहे, तथा, आत्मा, न, उपलिप्यते।।32।।

अनुवाद : (यथा) जिस प्रकार (सर्वगतम्) सर्वत्र व्याप्त (आकाशम्) आकाश (सौक्ष्म्यात्) सूक्ष्म होने के कारण (न, उपलिप्यते) लिप्त नहीं होता (तथा) वैसे ही (देहे) देहमें घड़े में सूर्य सदृश (सर्वत्र) सर्वत्र (अवस्थितः) स्थित (आत्मा) आत्मा सहित परमात्मा देहके गुणोंसे (न,उपलिप्यते) लिप्त नहीं होता। (32)

अध्याय 13 का श्लोक 33

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत। ३३।

यथा, प्रकाशयति, एकः, कृत्स्नम्, लोकम्, इमम्, रविः।
क्षेत्रम्, क्षेत्री, तथा, कृत्स्नम्, प्रकाशयति, भारत।।33।।

अनवुद : (भारत) हे अर्जुन! (यथा) जिस प्रकार (एकः) एक (रविः) सूर्य (इमम्) इस (कृत्स्नम्) सम्पूर्ण (लोकम्) ब्रह्मण्डको (प्रकाशयति) प्रकाशित करता है (तथा) उसी प्रकार (क्षेत्री) पूर्ण ब्रह्म (कृत्स्नम्) सम्पूर्ण (क्षेत्रम्) शरीर अर्थात् ब्रह्मण्डको (प्रकाशयति) प्रकाशित करता है। (33)

अध्याय 13 का श्लोक 34

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्। ३४।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः, एवम्, अन्तरम्, ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षम्, च, ये, विदुः, यान्ति, ते, परम्।।34।।

अनुवाद : (एवम्) इस प्रकार (क्षेत्र) शरीर (च) तथा (क्षेत्रज्ञयो) ब्रह्म कालके (अन्तरम्) भेदको (ये) जो (ज्ञानचक्षुषा) ज्ञान रूपी नेत्रों से अर्थात् तत्वज्ञान से (विदुः) अच्छी तरह जान लेता है, (ते भूत) वे प्राणी (प्रकृति) प्रकृति से अर्थात् काल की छोड़ी हुई शक्ति माया अष्टंगी से (मोक्षम्) मुक्त हो कर (परम्) गीता ज्ञान दाता से दूसरे पूर्णपरमात्माको (यान्ति) प्राप्त होते हैं। गीता अध्याय 13 श्लोक 1-2 में कहा है कि क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीर को जानने वाला क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। इसलिए क्षेत्रज्ञ भी मुझे ही जान। इससे सिद्ध हो कि क्षेत्रज्ञ ज्ञान दाता काल अर्थात् ब्रह्म है। (34)

(इति अध्याय तेरहवाँ)

❑❑❑

चौदहवां अध्याय

।। सारांश।।

।। ब्रह्म (काल) द्वारा अति उत्तम ज्ञान की जानकारी।।

अध्याय 14 के श्लोक 1,2 में भगवान (ब्रह्म) कह रहा है कि हे अर्जुन! सर्व ज्ञानों में अति उत्तम ज्ञान को फिर कहूंगा जिसको जान कर सर्व भक्त आत्मा (मुनिजन) अध्याय 13 के श्लोक 34 में कहे गीता ज्ञान दाता से अन्य अर्थात् दूसरे पूर्ण परमात्मा को प्राप्त हो गए। (क्योंकि जिनको पूर्ण ज्ञान हो जाता है वह पूर्ण परमात्मा का मार्ग अपना कर भक्ति करते हैं। ब्रह्म (काल), ब्रह्मा, विष्णु, शिव व देवी-देवताओं की साधना से ऊपर पूर्ण परमात्मा/सतपुरुष की भक्ति करते हैं। इसलिए परम धाम (सतलोक) में चले जाते हैं।) वह पूर्ण ब्रह्म का उपासक साधु गुणों से युक्त होकर प्रभु जैसी शक्ति (गुणों) वाला हो जाता है अर्थात् ब्रह्म के तुल्य हो जाता है तथा सत्य भक्ति पूर्णब्रह्म की करने वाले स्वभाव का हो जाता है, वह अन्य देवों की साधना नहीं करता।

गरीब, अनन्त कोटि ब्रह्मा हुए, अनन्त कोटि हुए ईश (ब्रह्म)।
साहिब तेरी बंदगी (भक्ति) से, जीव हो जावे जगदीश (ब्रह्म)।।

पूर्ण परमात्मा के क्या गुण होते हैं?

।। भगवान कृष्ण अर्थात् विष्णु जी भी परमात्मा हैं परंतु पूर्ण नहीं।।

जैसे भगवान कृष्ण तीन लोक के परमात्मा (विष्णु अवतार) हैं। वे भगवान के समान गुणों वाले हैं। श्री कृष्ण जी ने राजा मोरध्वज के इकलौते पुत्र ताम्रध्वज को आरे से चिरवा कर मरवाया तथा फिर जीवित कर दिया। ये ईश्वरीय गुणों में से एक गुण (सिद्धि) है। ये (श्री कृष्ण) भी परमात्मा हैं परंतु पूर्ण नहीं।

क्योंकि महाभारत के युद्ध में अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु मारा गया था जो भगवान का सगा (अपना) भानजा था। श्री कृष्ण की बहन सुभद्रा का अर्जुन से विवाह हुआ था। अभिमन्यु कृष्ण की बहन सुभद्रा का पुत्र था। भगवान श्री कृष्ण जी उसे जीवित नहीं कर सके। चूंकि ये परमात्मा तो हैं परंतु पूर्ण नहीं हैं। इसी प्रकार भगवान श्री कृष्ण के सामने (दुर्वासा के शापवश) भगवान श्री कृष्ण का सर्व यादव कुल नष्ट हो गया। जिसमें भगवान के पुत्र प्रद्युमन, पौत्र अनिरूद्ध आदि आपस में लड़ कर मर गए। भगवान कृष्ण नहीं बचा पाए और एक शिकारी ने प्रभास क्षेत्र में भगवान को तीर मार कर हत्या की। इससे सिद्ध हुआ कि श्री कृष्ण जी भी परमात्मा हैं परंतु पूर्ण परमात्मा नहीं। ये केवल तीन लोक में परमात्मा (श्रेष्ठ आत्मा) हैं।

साहेब कबीर(कविर्देव) पूर्ण परमात्मा है

।। मृतक गाय को जीवित करना।।

बन्दी छोड़ कबीर साहेब पूर्ण परमात्मा हैं। ये अनंत करोड़ ब्रह्मण्ड के विद्याता हैं। एक समय कबीर साहेब के सत उपदेश को सुन कर हिन्दु तथा मुसलमान उनसे नाराज हो गए और सिकंदर लौधी दिल्ली के बादशाह (जो काशी गया हुआ था) के पास बहु संख्या में इक्ट्ठे हो कर आ गए। कबीर साहेब की झूठी शिकायत की। मुसलमानों ने कहा कि यह कबीर हमारे धर्म की छवि धूमिल

करता है। कहता है मस्जिद में खुदा नहीं हैं। मैं ही खुदा हूँ। मांस खाने वाले पापी प्राणी हैं। उनको खुदा सजा देगा और वे नरक में जाएंगे।

कबीर, मांस अहारी मानई, प्रत्यक्ष राक्षस जानि।
ताकी संगति मति करै, होइ भक्ति में हानि।।1।।
कबीर, मांस मछलिया खात हैं, सुरापान से हेत।
ते नर नरकै जाहिंगे, माता पिता समेत।।3।।
कबीर, मांस मांस सब एक है, मुरगी हिरनी गाय।
जो कोई यह खात है, ते नर नरकहिं जाय।।6।।
कबीर, जीव हनै हिंसा करै, प्रगट पाप सिर होय।
निगम पुनि ऐसे पाप तें, भिस्त गया नहिंकोय।।14।।
कबीर, तिलभर मछली खायके, कोटि गऊ दै दान।
काशी करौत ले मरै, तौ भी नरक निदान।।16।।
कबीर, बकरी पाती खात है, ताकी काढी खाल।
जो बकरीको खात है, तिनका कौन हवाल।।18।।
कबीर, अंडा किन बिसमिल किया, घुन किन किया हलाल।
मछली किन जबह करी, सब खानेका ख्याल।।20।।
कबीर, मुला तुझै करीम का, कब आया फरमान।
घट फोरा घर घर दिया, साहब का नीसान।।21।।
कबीर, काजी का बेटा मुआ, उरमैं सालै पीर।
वह साहब सबका पिता, भला न मानै बीर।।22।।
कबीर, पीर सबनको एकसी, मूरख जानैं नाहिं।
अपना गला कटायकै, भिश्त बसै क्यों नाहिं।।23।।
कबीर, जोरी करि जबह करै, मुखसों कहै हलाल।
साहब लेखा मांगसी, तब होसी कौन हवाल।।28।।
कबीर, जोर कीयां जुलूम है, मागै ज्वाब खुदाय।
खालिक दर खूनी खडा, मार मुही मुँह खाय।।29।।
कबीर, गला काटि कलमा भरै, कीया कहै हलाल।
साहब लेखा मांगसी, तब होसी कौन हवाल।।30।।
कबीर, गला गुसाकों काटिये, मियां कहरकौ मार।
जो पांचू बिस्मिल करै, तब पावै दीदार।।31।।
कबीर, कबिरा सोई पीर हैं, जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानि है, सो काफिर बेपीर।।36।।
कबीर, कहता हूं कहि जात हूं, कहा जो मान हमार।
जाका गला तुम काटि हो, सो फिर काटै तुम्हार।।38।।
कबीर, हिन्दू के दाया नहीं, मिहर तुरकके नाहिं।
कहै कबीर दोनूं गया, लख चौरासी मांहि।।39।।
कबीर, मुसलमान मारै करद सों, हिंदू मारे तरवार।
कह कबीर दोनूं मिलि, जावैं यमके द्वार।।40।।
कबीर, पानी पृथ्वी के हते, धूंआं सुनि के जीव।
हुक्के में हिंसा घनी, क्योंकर पावै पीव।।8।।
कबीर, छाजन भोजन हक्क है, और दोजख देइ।

आपन दोजख जात है, और दोजख देइ।।9।।

यह कबीर काफिर है। मांस मिट्टी भी नहीं खाता। इसके दिल में दया नहीं है। यह धर्म के विपरीत साधना करता है और करवाता है। सिंकदर लौधी राजा ने कहा कि लाओ उस कबीर को पकड़ कर। इतना कहना था कि दस सिपाही गए तथा साहेब कबीर को बाँध लाए। राजा के सामने खड़ा कर दिया। साहेब कबीर चुप-चाप खड़े हैं। सिंकदर लौधी ने पूछा कौन है तू? बोलता क्यों नहीं? तू अपने आपको खुदा कहता है।

तब साहेब कबीर ने कहा मैं ही अलख अल्लाह हूँ। इस सच्चाई से दुःख मान कर सिकंदर लौधी ने एक गऊ के तलवार से दो टुकड़े कर दिये। गऊ को गर्भ था और बच्चे के भी दो टुकड़े हो गए। तब सिकंदर लौधी राजा ने कहा कि कबीर, यदि तू खुदा है तो इस गऊ को जीवित कर दे अन्यथा तेरा सिर भी कलम कर (काट) दिया जाएगा। साहेब कबीर ने एक बार हाथ गऊ के दोनों टुकड़ों को लगाया तथा दूसरी बार उसके बच्चे के टुकड़ों को लगाया। उसी समय दोनों माँ-बेटा जीवित हो गए। साहेब कबीर ने गऊ से दूध निकाल कर बहुत बड़ी देग (बाल्टी) भर दी तथा कहा -

गऊ अपनी अम्मा है, इस पर छुरी न बाह।
गरीबदास घी दूध को, सब ही आत्म खाय।।
कबीर, दिनको रोजा रहत हैं, रात हनत हैं गाय।
यह खून वह बंदगी, कहुं क्यों खुशी खुदाय।।33।।
कबीर, खूब खाना है खीचडी, मांहीं परी टुक लौन।
मांस पराया खायकै, गला कटावै कौन।।37।।
मुसलमान गाय भखी, हिन्दु खाया सूअर।
गरीबदास दोनों दीन से, राम रहिमा दूर।।
गरीब, जीव हिंसा जो करत हैं, या आगै क्या पाप।
कंटक जूनि जिहान में, सिंह भेढिया और सांप।।

जब साहेब कबीर खड़े हुए तो उनके शरीर से असंख्यों बिजलियों जैसा प्रकाश दिखाई देने लगा। राजा सिकंदर लौधी ने साहेब कबीर के चरणों में गिर कर क्षमा याचना की तथा कहा कि -

आप कबीर अल्लाह हैं, बख्सो इबकी बार। दासगरीब शाह कुं, अल्लाह रूप दीदार।।

हे कबीर साहेब! आप वास्तव में भगवान हो। मुझे क्षमा करो। दिल्ली के बादशाह सिकंदर लौधी ने साहेब कबीर को पालकी में बैठा कर साहेब कबीर के घर भिजवाया।

★सिकंदर लौधी का जलन का रोग ठीक किया।

★श्री रामानन्द जी का सिकंदर लौधी ने तलवार से सिर कलम (कत्ल) कर दिया था परमेश्वर कबीर जी ने उसे जीवित कर दिया।

।। मृत लड़के कमाल को जीवित करना।।

एक लड़के का शव (लगभग 12 वर्ष का) नदी में बहता हुआ आ रहा था। सिकंदर लौधी के धार्मिक गुरु (पीर) शेखतकी ने कहा कि मैं तो कबीर साहेब को तब खुदा मानूं जब मेरे सामने इस मुर्दे को जीवित कर दे। साहेब ने सोचा कि यदि यह शेखतकी मेरी बात को मान लेगा और पूर्ण परमात्मा को जान लेगा तो हो सकता है सर्व मुसलमानों को सतमार्ग पर लगा कर काल के जाल से मुक्त करवा दे। सिकंदर लौधी राजा तथा सैकड़ों सैनिक उस दरिया पर विद्यमान थे। तब साहेब

परमेश्वर कबीर जी द्वारा मृत लड़के कमाल को जीवित करना

परमेश्वर कबीर जी द्वारा कब्र से निकाल कर मृत लड़की कमाली को जीवित करना

कबीर ने कहा कि शेख जी - पहले आप प्रयत्न करें, कहीं बाद में कहो कि यह तो मैं भी कर सकता था। इस पर शेखतकी ने कहा कि ये कबीर तो सोचता है कि कुछ समय पश्चात यह मुर्दा बह कर आगे निकल जाएगा और मुसीबत टल जाएगी। साहेब कबीर ने उसी समय कहा कि हे जीवात्मा! जहाँ भी है कबीर हुक्म से इस शव में प्रवेश कर और बाहर आजा। तुरंत ही वह बारह वर्षीय लड़का जीवित हो कर बाहर आया और साहेब के चरणों में दण्डवत् प्रणाम की। सब उपस्थित व्यक्तियों ने कहा कि साहेब ने कमाल कर दिया। उस लड़के का नाम 'कमाल' रख दिया तथा साहेब ने उसे अपने बच्चे के रूप में अपने साथ रखा। इस घटना की चर्चा दूर-2 तक होने लगी। कबीर साहेब की महिमा बहुत हो गई। लाखों बुद्धिमान भक्त आत्मा एक परमात्मा (साहेब कबीर) की शरण में आ कर अपना आत्म कल्याण करवाने लगे। परंतु शेखतकी अपनी बेईज्जती मान कर साहेब कबीर से ईर्ष्या रखने लगा।

।। मृत लड़की कमाली को जीवित करना ।।

एक दिन शेखतकी अवसर पा कर बहु संख्या में मुसलमानों को बहका कर सिंकदर लौधी के पास ले गया। उस समय साहेब कबीर सिंकदर लौधी के विशेष आग्रह पर उनके मकान पर दिल्ली में ही थे। सिंकदर लौधी ने इतने व्यक्तियों के आने का कारण पूछा तो बताया कि शेखतकी कह रहा है कि यह कबीर काफिर है। कोई जादू जन्त्र जानता है। यदि यह कबीर मेरी लड़की जो मर चुकी है और लगभग 15 दिन से कब्र में दबा रखी है, को जीवित कर देगा तो मैं और सर्व उपस्थित व्यक्ति भी इस कबीर की शरण में आ जाएंगे अन्यथा इस काफिर को सजा दी जाएगी। साहेब कबीर यही सोच कर कि हो सकता है यह नादान आत्मा ऐसे ही सतमार्ग स्वीकार कर ले, अपना भी उद्धार कर ले और अन्य आत्माओं का भी कल्याण करवा दे। चूंकि ये सर्व प्राणी आज चाहे मुसलमान हैं चाहे हिन्दू हैं, चाहे सिक्ख हैं और चाहे ईसाई बने हुए हैं सब कबीर साहेब (पूर्ण परमात्मा) का ही अंश हैं। काल भगवान इनको भ्रमित किए हुए है। कबीर साहेब ने कहा कि आज से तीसरे दिन आपकी कब्र में दबी हुई लड़की जीवित हो जाएगी। निश्चित समय पर हजारों की संख्या में दर्शक कब्र के आस-पास खड़े हो गए। कबीर साहेब ने कहा हे शेखतकी! आप भी कोशिश करें। उपस्थित जनों ने कहा कि यदि शेखतकी के पास शक्ति होती तो अपनी बच्ची को कौन मरने दे? कृप्या आप ही दया करें। तब कबीर साहेब ने कब्र फुड़वा कर उस कई दिन पुराने शव को जीवित कर दिया। वह लगभग 13 वर्ष की लड़की का शव था। तब सभी उपस्थित व्यक्तियों ने कहा कि कबीर साहेब ने कमाल कर दिया - कमाल कर दिया। कबीर साहेब ने उस लड़की का नाम कमाली रखा। लड़की ने अपने पिता शेखतकी के साथ जाने से मना कर दिया तथा कहा कि हे नादान प्राणियों! यह स्वयं पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष) आए हैं। इनके चरणों में गिर कर अपना आत्म-कल्याण करवा लो। यह दयालु परमेश्वर हैं। हजारों व्यक्तियों ने साहेब के (मद्भक्त) मतावलम्बी अर्थात् साहेब कबीर के विचारों के अनुसार भक्त बन कर अपना कल्याण करवाया अर्थात् नाम दान लिया तथा कबीर साहेब ने उस कमाली लड़की को अपनी बेटी रूप में रखा।

।। मृत लड़के सेऊ को जीवित करना ।।

एक समय साहेब कबीर अपने भक्त सम्मन के यहाँ अचानक दो सेवकों (कमाल व शेखफरीद) के साथ पहुँच गए। सम्मन के घर कुल तीन प्राणी थे। सम्मन, सम्मन की पत्नी नेकी और सम्मन का पुत्र सेऊ। भक्त सम्मन इतना गरीब था कि कई बार अन्न भी घर पर नहीं होता था। सारा

परिवार भूखा सो जाता था। आज वही दिन था। भक्त सम्मन ने अपने गुरुदेव कबीर साहेब से पूछा कि साहेब खाने का विचार बताएँ, खाना कब खाओगे? कबीर साहेब ने कहा कि भाई भूख लगी है। भोजन बनाओ। सम्मन अन्दर घर में जा कर अपनी पत्नी नेकी से बोला कि अपने घर अपने गुरुदेव भगवान आए हैं। जल्दी से भोजन तैयार करो। तब नेकी ने कहा कि घर पर अन्न का एक दाना भी नहीं है। सम्मन ने कहा पड़ोस वालों से उधार मांग लाओ। नेकी ने कहा कि मैं मांगने गई थी लेकिन किसी ने भी उधार आटा नहीं दिया। उन्होंने आटा होते हुए भी जान बूझ कर नहीं दिया और कह रहे हैं कि आज तुम्हारे घर तुम्हारे गुरु जी आए हैं। तुम कहा करते थे कि हमारे गुरु जी भगवान हैं। आपके गुरु जी भगवान हैं तो तुम्हें माँगने की आवश्यकता क्यों पड़ी? ये ही भर देगें तुम्हारे घर को आदि-2 कह कर मजाक करने लगे। सम्मन ने कहा लाओ आपका चीर गिरवी रख कर तीन सेर आटा ले आता हूँ। नेकी ने कहा यह चीर फटा हुआ है। इसे कोई गिरवी नहीं रखता। सम्मन सोच में पड़ जाता है और अपने दुर्भाग्य को कोसते हुए कहता है कि मैं कितना अभागा हूँ। आज घर भगवान आए और मैं उनको भोजन भी नहीं करवा सकता। हे परमात्मा! ऐसे पापी प्राणी को पृथ्वी पर क्यों भेजा। मैं इतना नीच रहा हूँगा कि पिछले जन्म में कोई पुण्य नहीं किया। अब सतगुरु को क्या मुंह दिखाऊँ? यह कह कर अन्दर कोठे में जा कर फूट-2 कर रोने लगा। तब उसकी पत्नी नेकी कहने लगी कि हिम्मत करो। रोवो मत। परमात्मा आए हैं। इन्हें ठेस पहुँचेगी। सोचेंगे हमारे आने से तंग आ कर रो रहा है। सम्मन चुप हुआ। फिर नेकी ने कहा आज रात्री में दोनों पिता पुत्र जा कर तीन सेर (पुराना बाट किलो ग्राम के लगभग) आटा लाना। केवल संतों व भक्तों के लिए। तब लड़का सेऊ बोला माँ - गुरु जी कहते हैं चोरी करना पाप है। फिर आप भी मुझे शिक्षा दिया करती कि बेटा कभी चोरी नहीं करनी चाहिए। जो चोरी करते हैं उनका सर्वनाश होता है। आज आप यह क्या कह रही हो माँ? क्या हम पाप करेंगे माँ? अपना भजन नष्ट हो जाएगा। माँ हम चौरासी लाख योनियों में कष्ट पाएंगे। ऐसा मत कहो माँ। माँ आपको मेरी कसम। तब नेकी ने कहा पुत्र तुम ठीक कह रहे हो। चोरी करना पाप है परंतु पुत्र हम अपने लिए नहीं बल्कि संतों के लिए करेंगे। नेकी ने कहा बेटा - ये नगर के लोग अपने से बहुत चिड़ते हैं। हमने इनको कहा था कि हमारे गुरुदेव कबीर साहेब (पूर्ण परमात्मा) आए हुए हैं। इन्होंने एक मृतक गऊ तथा उसके बच्चे को जीवित कर दिया था जिसके टुकड़े सिंकदर लौधी ने करवाए थे। एक लड़के तथा एक लड़की को जीवित कर दिया। सिंकदर लौधी राजा का जलन का रोग समाप्त कर दिया तथा श्री रामानन्द जी (कबीर साहेब के गुरुदेव) जो सिंकदर लौधी ने तलवार से कत्ल कर दिया था वे भी कबीर साहेब ने जीवित कर दिए थे। इस बात का ये नगर वाले मजाक कर रहे हैं और कहते हैं कि आपके गुरु कबीर तो भगवान हैं तुम्हारे घर को भी अन्न से भर देंगे। फिर क्यों अन्न (आटे) के लिए घर घर डोलती फिरती हो?

बेटा ये नादान प्राणी हैं यदि आज साहेब कबीर इस नगरी का अन्न खाए बिना चले गए तो काल भगवान भी इतना नाराज हो जाएगा कि कहीं इस नगरी को समाप्त न कर दे। हे पुत्र! इस अनर्थ को बचाने के लिए अन्न की चोरी करनी है। हम नहीं खाएंगे। केवल अपने सतगुरु तथा आए भक्तों को प्रसाद बना कर खिलाएगें। यह कह कर नेकी की आँखों में आँसू भर आए और कहा पुत्र नाटियो मत अर्थात् मना नहीं करना। तब अपनी माँ की आँखों के आँसू पौंछता हुआ लड़का सेऊ कहने लगा - माँ रो मत, आपका पुत्र आपके आदेश का पालन करेगा। माँ आप तो बहुत अच्छी हो न।

अर्ध रात्री के समय दोनों पिता (सम्मन) पुत्र (सेऊ) चोरी करने के लिए चले दिए। एक सेठ

की दुकान की दीवार में छिद्र किया। सम्मन ने कहा कि पुत्र मैं अन्दर जाता हूँ। यदि कोई व्यक्ति आए तो धीरे से कह देना मैं आपको आटा पकड़ा दूंगा और ले कर भाग जाना। तब सेऊ ने कहा नहीं पिता जी, मैं अन्दर जाऊँगा। यदि मैं पकड़ा भी गया तो बच्चा समझ कर माफ कर दिया जाऊँगा। सम्मन ने कहा पुत्र यदि आपको पकड़ कर मार दिया तो मैं और तेरी माँ कैसे जीवित रहेंगे? सेऊ प्रार्थना करता हुआ छिद्र द्वार से अन्दर दुकान में प्रवेश कर जाता है। तब सम्मन ने कहा पुत्र केवल तीन सेर आटा लाना, अधिक नहीं। लड़का सेऊ लगभग तीन सेर आटा अपनी फटी पुरानी चद्दर में बाँध कर चलने लगा तो अंधेरे में तराजू के पलड़े पर पैर रखा गया। जोर दार आवाज हुई जिससे दुकानदार जाग गया और सेऊ को चोर-चोर करके पकड़ लिया और रस्से से बाँध दिया। इससे पहले सेऊ ने वह चद्दर में बँधा हुआ आटा उस छिद्र से बाहर फैंक दिया और कहा पिता जी मुझे सेठ ने पकड़ लिया है। आप आटा ले जाओ और सतगुरु व भक्तों को भोजन करवाना। मेरी चिंता मत करना। आटा ले कर सम्मन घर पर गया तो सेऊ को न पा कर नेकी ने पूछा लड़का कहाँ है? सम्मन ने कहा उसे सेठ जी ने पकड़ कर थम्ब से बाँध दिया। तब नेकी ने कहा कि आप वापिस जाओ और लड़के सेऊ का सिर काट लाओ। क्योंकि लड़के को पहचान कर अपने घर पर लाएंगे। फिर सतगुरु को देख कर नगर वाले कहेंगे कि ये हैं जो चोरी करवाते हैं। हो सकता है सतगुरु देव को परेशान करें। हम पापी प्राणी अपने दाता को भोजन के स्थान पर कैद न दिखा दें। यह कह कर माँ अपने बेटे का सिर काटने के लिए अपने पति से कह रही है वह भी गुरुदेव जी के लिए। सम्मन ने हाथ में कर्द (लम्बा छुरा) लिया तथा दुकान पर जा कर कहा सेऊ बेटा, एक बार गर्दन बाहर निकाल। कुछ जरूरी बातें करनी हैं। कल तो हम नहीं मिल पाएंगे। हो सकता है ये आपको मरवा दें। तब सेऊ उस सेठ (बनिए) से कहता है कि सेठ जी बाहर मेरा बाप खड़ा है। कोई जरूरी बात करना चाहता है। कृप्या करके मेरे रस्से को इतना ढीला कर दो कि मेरी गर्दन छिद्र से बाहर निकल जाए। तब सेठ ने उसकी बात को स्वीकार करके रस्सा इतना ढीला कर दिया कि गर्दन आसानी से बाहर निकल गई। तब सेऊ ने कहा पिता जी मेरी गर्दन काट दो। यदि आप मेरी गर्दन नहीं काटोगे तो आप मेरे पिता नहीं हो। सम्मन ने एक दम कर्द मारी और सिर काट कर घर ले गया। सेठ ने लड़के का कत्ल हुआ देख कर उसके शव को घसीट कर साथ ही एक पजावा (ईटें पकाने का भट्ठा) था उस खण्डहर में डाल गया।

जब नेकी ने सम्मन से कहा कि आप वापिस जाओ और लड़के का धड़ भी बाहर मिलेगा उठा लाओ। जब सम्मन दुकान पर पहुँचा उस समय तक सेठ ने उस दुकान की दीवार के छिद्र को बंद कर लिया था। सम्मन ने शव की घसीट (चिन्हों) को देखते हुए शव के पास पहुँच कर उसे उठा लाया। ला कर अन्दर कोठे में रख कर ऊपर पुराने कपड़े (गुदड़) डाल दिए और सिर को अलमारी के ताख (एक हिस्से) में रख कर खिड़की बंद कर दी।

कुछ समय के बाद सूर्य उदय हुआ। नेकी ने स्नान किया। फिर सतगुरु व भक्तों का खाना बनाया। फिर सतगुरु कबीर साहेब जी से भोजन करने की प्रार्थना की। नेकी ने साहेब कबीर व दोनों भक्त (कमाल तथा शेख फरीद), तीनों के सामने आदर के साथ भोजन परोस दिया। साहेब कबीर ने कहा इसे छः दौनों में डाल कर आप तीनों भी साथ बैठो। यह प्रेम प्रसाद पाओ। बहुत प्रार्थना करने पर भी साहेब कबीर नहीं माने तो छः दौनों में प्रसाद परोसा गया। पाँचों प्रसाद के लिए बैठ गए। तब साहेब कबीर ने कहा --

आओ सेऊ जीम लो, यह प्रसाद प्रेम। शीश कटत हैं चोरों के, साधों के नित्य क्षेम।।

साहेब कबीर ने कहा कि सेऊ आओ भोजन पाओ। सिर तो चोरों के कटते हैं। संतों (भक्तों) के नहीं। उनको तो क्षमा होती है। साहेब कबीर ने इतना कहा था उसी समय सेऊ के धड़ पर सिर लग गया। कटे हुए का कोई निशान भी गर्दन पर नहीं था तथा पंगत (पंक्ति) में बैठ कर भोजन करने लगा। बोलो कबीर साहेब (कविरमितौजा) की जय।

सम्मन तथा नेकी ने देखा कि गर्दन पर कोई चिन्ह भी नहीं है। लड़का जीवित कैसे हुआ? अन्दर जा कर देखा तो वहाँ शव तथा शीश नहीं था। केवल रक्त के छीटें लगे थे जो इस पापी मन के संश्य को समाप्त करने के लिए प्रमाण बकाया था। सत साहिब।।

ऐसी-2 बहुत लीलाएँ साहेब कबीर (कविरग्नि) ने की हैं जिनसे यह स्वसिद्ध है कि ये ही पूर्ण परमात्मा हैं। सामवेद संख्या नं. 822 में कहा है कि कविर्देव अपने विधिवत् साधक साथी की आयु बढ़ा देता है।

।। ब्रह्म (काल) व प्रकृति (दुर्गा) से सर्व प्राणी व ब्रह्मा, विष्णु, शिव की उत्पत्ति।।

अध्याय 14 के श्लोक 3 में हे अर्जुन! मेरी प्रकृति तो योनि (गर्भाधान स्थान है) तथा (अहम् ब्रह्म) मैं ब्रह्म (काल) उसमें गर्भ स्थापन करता हूँ। उससे सर्व प्राणियों की उत्पत्ति होती है। अध्याय 14 के श्लोक 4 में कहा है कि हे अर्जुन! सब योनियों में जितनी मूर्ति (शरीरधारी प्राणी) उत्पन्न होती हैं। प्रकृति तो उन सब की गर्भधारण करने वाली माता है और मैं ब्रह्म (काल) उसमें बीज स्थापना करने वाला पिता हूँ।

।। तीनों ब्रह्मा (रजगुण), विष्णु (सतगुण), शिव (तमगुण) आत्मा को शरीर में बाँधते हैं अर्थात् मुक्त नहीं होने देते।।

अध्याय 14 के श्लोक 5 में कहा है कि हे अर्जुन! सत्वगुण (विष्णु) रजोगुण (ब्रह्मा) तमोगुण (शिव) ये प्रकृति (दुर्गा) से उत्पन्न तीनों गुण अविनाशी जीव आत्मा को शरीर में बाँधते हैं अर्थात् पूर्ण मुक्ति बाधक हैं।

अध्याय 14 के श्लोक 6 में कहा है कि उन तीनों गुणों में सतगुण (विष्णु) निर्मल होने के कारण प्रकाश करने वाला (यह नकली अनामी लोक काल द्वारा बनाया हुआ) सुखदायक ज्ञान के सम्बन्ध में जीव को बाँधता है। पार नहीं होने देता। चौरासी में डालता है। एक बहुत ही भावुक भक्त आत्मा से मैंने भगवान काल की सृष्टि तथा उसके द्वारा दी जाने वाली चौरासी लाख योनियों में कष्ट तथा एक लाख प्राणियों का काल द्वारा प्रतिदिन भक्षण करना समझाया तथा आगे सतलोक व परम गति का मार्ग बताया। नहीं तो आपको व सर्व देवताओं को काल खाएगा। इस पर उस पुण्य आत्मा ने कहा कि मैं तो बिल्कुल सतलोक नहीं जाऊँगा। चूंकि यदि मैं सतलोक चला गया तो भगवान की भूख कौन बुझाएगा? यहाँ पर वह प्राणी सतगुण प्रधान है जो उसके सतमार्ग का बाधक बन गया। विवेक बिना सतगुणी उदारात्मा होने पर भी काल के जाल से नहीं बच पाती।

।। ब्रह्मा (रजोगुण) की उपासना से उपलब्धि।।

अध्याय 14 के श्लोक 7 में कहा है कि हे अर्जुन! राग-रूप रजोगुण (ब्रह्मा) भी जीव को कर्म तथा उसके फल भोग की कामना के कारण बाँधे रखता है अर्थात् मुक्त नहीं होने देता। विषयों के भोगों के कारण मौज करने के वश हो कर काल जाल से नहीं निकल पाता।

एक समय मार्कण्डे ऋषि ने इन्द्र जी (स्वर्ग के राजा) से कहा कि आपको मालूम भी है कि इन्द्र का राज भोगकर गधे की जूनी में जाओगे। इसलिए इस इन्द्र के राज को त्याग कर ब्रह्म का भजन कर। तेरा चौरासी से पीछा छूट जाएगा। इस पर इन्द्र जी ने कहा कि फिर कभी देखेंगे। अब तो मौज मनाने दो ऋषि जी।

विचार करें :-- फिर कब देखेंगे? क्या गधा बनने के बाद? फिर तो गधे को कुम्हार देखेगा। एक क्विंटल वजन कमर पर, ऊपर से डण्डा लगेगा। ज्ञान होते हुए भी रजोगुणवश प्राणी भी काल जाल से मुक्त नहीं हो पाता।

।। शिव (तमोगुण) की उपासना से प्राप्ति।।

अध्याय 14 के श्लोक 8 का अनुवाद : हे अर्जुन! सब शरीर धारियोंको मोहित करनेवाले तमोगुणको तो अज्ञानसे उत्पन्न जान। वह इस जीवात्माको प्रमाद आलस्य और निंद्राके द्वारा बाँधता है।

लंकापति राजा रावण ने भगवान शिव (तमगुण) की कठिन साधना व भक्ति की। यहाँ तक कि उसने अपने शरीर को भी काट कर समर्पित कर दिया। उसके बदले में भगवान शिव ने रावण को दश सिर व बीस भुजा प्रदान की। जब रावण को श्री राम ने मारा तो दश बार सिर काटे थे। रावण की भक्ति के परिणाम स्वरूप उसे फिर दश बार सिर वापिस लगे थे अर्थात् दश बार गर्दन कटने पर भी मरा नहीं। फिर गर्दन नई लग जाती थी। परंतु तमोगुण (अहंकार) समाप्त नहीं हुआ जिससे इतना अज्ञानी (अंधा) हो गया कि अपनी ही माता (जगत जननी) सीता का अपहरण कर लिया। तमोगुण ने उसका ज्ञान हर लिया तथा सर्वनाश को प्राप्त हुआ। यह तमगुण (शिव शंकर) की साधना का परिणाम है। गीता जी में भगवान ब्रह्म (काल) बताना चाहते हैं कि इन तीनों गुणों की भक्ति से भी जीव पार नहीं हो सकता। इससे अच्छी तो मेरी (ब्रह्म) साधना है परंतु यह भी पूर्ण मुक्ति दायक नहीं है। वह घटिया मुक्ति भगवान ब्रह्म (काल) ने स्वयं अध्याय 7 के श्लोक 18 में कही है। अध्याय 14 के श्लोक 9 में कहा है कि हे अर्जुन (भारत)! सतगुण सुख में लगाता है तथा रजोगुण कर्म में और तमोगुण ज्ञान को ढक कर प्रमाद (उल्ट मार्ग) में भी लगाता है। अध्याय 14 के श्लोक 10 से 17 तक कहा है कि एक गुण दूसरे को दबा कर अपना प्रभाव प्राणी पर बनाए रखता है।

एक भला व्यक्ति किसी लावारिस (जिसका कोई नाती जीवित नहीं था) रोगी को (सतगुण बढ़ा हुआ था तथा अन्य दोनों गुण दबे हुए थे) सतगुणी भाव से यह कह कर घर ले आया कि मैं आप की सेवा भी करूंगा तथा आपका ईलाज भी कराऊँगा। आप मुझे अपना पुत्र ही समझो। घर लाकर रजोगुण के बढ़ जाने पर (दोनों गुण दबे रहने पर) बढ़िया कपड़े सिलवाए, ईलाज करवाना प्रारम्भ कर दिया। एक दिन उस रोगी ने उसके चिप्स के फर्श पर थूक दिया। उस दिन उठाकर उस रोगी को घर से बाहर पटक दिया। तब तमोगुण बढ़ा हुआ था, दोनों गुण दबे हुए थे।

।। विष्णु (सतोगुण) की उपासना से प्राप्ति।।

अध्याय 14 के श्लोक 18 में कहा है कि सतगुण में स्थित (अर्थात् विष्णु उपासक) स्वर्ग आदि उच्च लोकों में चला जाता है। फिर जन्म-मरण, नरक, चौरासी लाख योनियों में चला जाता है। रजगुण उपासक (ब्रह्मा का साधक) मनुष्य लोक (पृथ्वी लोक) पर मनुष्य का एक आध जन्म प्राप्त कर फिर नरक व चौरासी लाख जूनियों में चला जाता है। तमगुण प्रधान (शिव उपासक) अधोगति

(नरक तथा लख चौरासी जूनियों) को सीधा प्राप्त होता है।

।। ब्रह्मा, विष्णु, शिव कर्त्ता नहीं।।

अध्याय 14 के श्लोक 19 में वर्णन है कि इस सर्व ज्ञान को तत्व से जान कर तीन गुणों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) को कर्त्ता नहीं जानता। इन गुणों से श्रेष्ठ (परम) शक्ति को विशेष दृष्टिकोण से कर्त्ता जानता है। वह मेरे मतावलम्बी भाव को प्राप्त होता है अर्थात् वह साधक अध्याय 13 में दिए मत (विचारों) का अनुसरण करने वाला है। उसे मत-भावम् (मद्भावम्) कहा जाता है (अध्याय 3 के श्लोक नं. 31,32 में अपना मत कहा है) तथा पूर्ण परमात्मा की भक्ति करता है।

।। ब्रह्मा, विष्णु, शिव की साधना त्याग कर पूर्ण परमात्मा की साधना करनी चाहिए।।

अध्याय 14 के श्लोक 20 में कहा है कि वह जीवात्मा इस शरीर (दुःख की जड़) की उत्पत्ति अर्थात् जन्म-मरण का कारण गुणों को समझ लेता है तथा वह तीनों गुणों को उलंघ कर अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश की भक्ति छोड़ कर, जन्म-मरण, बुढापा व सर्व दुःखों से मुक्त होकर (पूर्ण मुक्ति पूर्ण परमात्मा प्राप्ति करके) परमानन्द को प्राप्त हो जाता है। अध्याय 14 के श्लोक 21 में अर्जुन पूछता है कि हे भगवन! इन तीनों गुणों से अतीत हुए भक्त के क्या लक्षण होते हैं? तथा कैसे आचरण वाला होता है? कैसे इन तीनों गुणों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) से अतीत (परे) होता है?

।। तीनों गुणों से अतीत अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव की भक्ति से ऊपर उठे भक्त के लक्षण।।

अध्याय 14 के श्लोक 22 से 25 में कहा है कि जो भक्त किसी देव की महिमात्मक प्रशंसा सुन कर उस पर आसक्त नहीं होता क्योंकि उसे पूर्ण ज्ञान है कि यह देव (गुण) केवल इतनी ही महिमा रखता है जो जीव के उद्धार के लिए पर्याप्त नहीं है। जैसे भगवान कृष्ण (विष्णु-सतगुण) ने कंश-केशि, शिशुपाल आदि मारे तथा सुदामा को धन दे दिया। आम जीव के कल्याण के लिए पर्याप्त नहीं है। क्योंकि भगवान विष्णु (सतगुण) का उपासक केवल स्वर्ग आदि उत्तम लोकों में जा सकता है। फिर चौरासी लाख जूनियों का संकट बना रहेगा। इसलिए वह साधक अपने विचार स्थिर रखता है तथा अपना स्वभाव मोह वश नहीं बदलता और न ही उन देवों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) से द्वेष करता। न ही उनकी आकांक्षा (इच्छा) करता जो उनकी शक्ति से परिचित है, उनको वहीं तक समझता है तथा अविचलित स्थित एक रस इनसे भी परे परमात्मा में लीन रहता है तथा सुख-दुःख, मिट्टी-सोना, प्रिय-अप्रिय, निन्दा-स्तुति में सम भाव में रहता है। मान-अपमान, मित्र-वैरी को समान समझता है तथा सर्व प्रथम अभिमान का त्याग करता है। वह (भक्त) गुणातीत कहा जाता है।

।। ब्रह्म (काल) की उपासना का लाभ - देवी-देवताओं व ब्रह्मा, विष्णु, शिव की भक्ति त्याग कर ही होता है।।।

अध्याय 14 के श्लोक 26 में कहा है कि - और जो (भक्त) अव्याभिचारिणी भक्ति योग के द्वारा अर्थात् केवल एक इष्ट की साधना (अन्य देवी-देवताओं, भूतों-पित्रों तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव की पूजा त्याग कर) करता है वह आत्मा अव्याभिचारी है। जैसे कोई स्त्री अपने पति के साथ-2 अन्य

पुरुष का संग करती है वह व्याभिचारिणी स्त्री कहलाती है जो अपने एक पति पर आश्रित नहीं हुई। इसलिए व्याभिचारी भक्त हैं जो एक इष्ट पर आधारित नहीं हैं।, जो अनन्य मन से (केवल एक इष्ट की आशा से) भक्ति करते हैं और जो एक इष्ट पर आधारित हैं वे अव्याभिचारिणी भक्ति करने वाले कहे हैं।

ऐसा भक्त केवल मुझे (काल-ब्रह्म को एक अक्षर ऊँ मन्त्र से) भजता है वह साधक तीनों गुणों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) की भक्ति त्याग कर जो काल (ब्रह्म) को अनन्य मन से केवल ऊँ मन्त्र से भजता है, वह साधक उस पूर्ण परमात्मा (परम अक्षर ब्रह्म, परम अविनाशी भगवान) को प्राप्त होने के योग्य होता है।

।। पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति में ब्रह्म (काल) सहयोगी।।

अध्याय 14 के श्लोक 27 में ब्रह्म काल कह रहा है कि पूर्ण परमात्मा के अविनाशी अमृत का तथा शाश्वत् धर्म का और एकान्तिक सुख की पहली अवस्था (प्रतिष्ठा) मैं ही हूँ। यह काल ही सत्यनाम उपासक भक्त को पार होने के लिए अपना सिर झुका कर रास्ता देता है। तब कबीर हंस उस काल के सिर पर पैर रख कर सतलोक जाता है। काल ने कबीर साहेब से कहा है कि - ''जो भी भक्त होवै तुम्हारा। मम सिर पग दे होवै पारा।।''

परमात्मा की तीन अवस्था (प्रतिष्ठा) है। तीन ही परमात्मा हैं -

गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में ओं-तत्-सत् इस तीन मन्त्र के जाप से पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति कही है।

1. क्षर काल ब्रह्म है इसका ओम् नाम है 2. अक्षर अर्थात् परब्रह्म है। इसका तत् जो सांकेतिक मन्त्र है 3. परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पूर्णब्रह्म है इसका सत् मन्त्र है जो सांकेतिक है।

पहली प्रतिष्ठा अर्थात् अवस्था ब्रह्म है। ब्रह्म लोक को पार करके परब्रह्म (अक्षर पुरुष) का लोक आता है। जब कबीर साहेब का उपासक हंस सतलोक जाता है तो पहली अवस्था (प्रतिष्ठा) काल ब्रह्म के लोक को पार करना है। यह प्रथम अवस्था भी तब होगी जबोऊँ मन्त्र का जाप काल के दुःख को ध्यान में रखते हुए करता है। जैसे सतनाम में (क्षर-ब्रह्म का मन्त्र ऊँ है तथा अक्षर पुरुष/परब्रह्म का मन्त्र सोहं) दोनों मन्त्रों का स्वांसों द्वारा जाप करना होता है। पूर्ण गुरु से ले कर ऊँ मन्त्र का जाप काल के ऋण से मुक्त करता है। तब काल (ब्रह्म) अपनी हद (21 ब्रह्मण्ड) से स्वयं अपने सिर पर पैर रखवा कर परब्रह्म लोक में जाने देता है। क्योंकि जिस भक्त आत्मा के पास सतनाम के साथ सार नाम भी है तथा वह अंतिम स्वांस तक गुरुदेव जी की शरण में रहता है उसमें इतनी भक्ति शक्ति हो जाती है कि काल (क्षर/ब्रह्म/ज्योति निरंजन) विवश हो जाता है तथा उस हंस के सामने अपना सिर झुका देता है। फिर वह भक्त उसके सिर पर पैर रख कर परब्रह्म लोक में चला जाता है। यह पहली प्रतिष्ठा (अवस्था) हुई।

दूसरी अवस्था (प्रतिष्ठा) है कि परब्रह्म के अर्थात् अक्षर पुरुष के लोक को पार करना है। यह दूसरी अवस्था (प्रतिष्ठा) है। उसके लिए अक्षर पुरुष का जाप सोहं मन्त्र है। यदि इसके साथ सार नाम नहीं मिला तो भी अधूरा काम है। सोहं मन्त्र का जाप का अभ्यास अधिक हो जाने पर सारनाम दिया जाता है। सारनाम के जाप के अभ्यास की कमाई की शक्ति से परब्रह्म का लोक पार हो जाता है। क्योंकि सोहं मन्त्र के जाप अभ्यास (कमाई) से परब्रह्म का यात्रा ऋण मुक्त हो जाता है। अक्षर पुरुष के लोक को पार करने के बाद सोहं मन्त्र भी नहीं रहता। फिर केवल सारनाम सुरति निरति

का जाप है। जिसको सार शब्द गुरु जी से प्राप्त हो गया, वह सार शब्द प्राप्त हंस उस शब्द की कमाई से उत्पन्न ध्वनि के आधार पर सतलोक में अपने सही स्थान पर चला जाता है। (जो ध्वनि शरीर में सुनती है, यह तो काल जाल ही है) यह तीसरी अवस्था (प्रतिष्ठा) हुई। यहाँ पर पूर्ण मुक्त हंस रहते हैं।

अध्याय 14 के श्लोक 27 में ब्रह्म (ज्योति निरंजन) ने कहा है कि उस पूर्ण परमात्मा के सच्चे आनन्द को प्राप्त कराने में मैं (काल) ही प्रतिष्ठा अर्थात् आश्रय हूँ का साधारण सा भाव पाठक इस प्रकार समझे कि जैसे किसी ने डोमिसाईल (प्रमाण पत्र) बनवाना हो तो उसका प्रथम प्रतिष्ठा (अवस्था) पटवारी होता है। वह लिख कर देता है कि यह इस क्षेत्र तथा गाँव का रहने वाला है परंतु डोमिसाईल बनाने वाला अन्य उच्च अधिकारी होता है। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करने में काल भगवान पहली प्रतिष्ठा है।

❑❑❑

।।चौदहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

अध्याय 14 का श्लोक 1

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः।१।

परम्, भूयः, प्रवक्ष्यामि, ज्ञानानाम्, ज्ञानम्, उत्तमम्,
यत्, ज्ञात्वा, मुनयः, सर्वे, पराम्, सिद्धिम्, इतः, गताः।।1।।

अनुवाद :(ज्ञानानाम्) ज्ञानोंमें भी (उत्तमम् तत्) अति उत्तम उस (परम्) अन्य परम (ज्ञानम्) ज्ञानको मैं (भूयः) फिर (प्रवक्ष्यामि) कहूँगा, (यत्) जिसको (ज्ञात्वा) जानकर (सर्वे) सब (मुनयः) मुनिजन (इतः) इस संसारसे मुक्त होकर (पराम्) परम (सिद्धिम्) सिद्धिको (गताः) प्राप्त हो गये हैं अर्थात् पूर्ण परमात्मा को प्राप्त हो गए हैं। (1)

अध्याय 14 का श्लोक 2

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ।२।

इदम्, ज्ञानम्, उपाश्रित्य, मम, साधर्म्यम्, आगताः,
सर्गे, अपि, न, उपजायन्ते, प्रलये, न, व्यथन्ति, च।।2।।

अनुवाद : (इदम्) इस (ज्ञानम्) ज्ञानको (उपाश्रित्य) आश्रय करके अर्थात् धारण करके (मम) मेरे (साधर्म्यम्) जैसे गुणों को (आगताः) प्राप्त हुए साधक (सर्गे) सृष्टिके आदिमें (न उपजायन्ते) उत्पन्न नहीं होते (च) और (प्रलये) प्रलयकालमें (अपि) भी (न व्यथन्ति) व्याकुल नहीं होते। (2)

अध्याय 14 का श्लोक 3

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ।३।

मम, योनिः, महत्, ब्रह्म, तस्मिन्, गर्भम्, दधामि, अहम्,
सम्भवः, सर्वभूतानाम्, ततः, भवति, भारत।।3।।

अनुवाद : (भारत) हे अर्जुन! (मम) मेरी (महत्) मूल प्रकृति अर्थात् दुर्गा तो सम्पूर्ण प्राणियोंकी (योनिः) योनि है अर्थात् गर्भाधानका स्थान है और (अहम् ब्रह्म) मैं ब्रह्म-काल (तस्मिन्) उस योनिमें (गर्भम्) गर्भको (दधामि) स्थापन करता हूँ (ततः) उस संयोगसे (सर्वभूतानाम्) सब प्राणियों की (सम्भवः) उत्पत्ति (भवति) होती है। (3)

अध्याय 14 का श्लोक 4

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।४।

सर्वयोनिषु, कौन्तेय, मूर्तयः, सम्भवन्ति, याः,

तासाम्, ब्रह्म, महत्, योनिः, अहम्, बीजप्रदः, पिता।।4।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (सर्वयोनिषु) सब योनियोंमें (याः) जितनी (मूर्तयः) मूर्तियाँ अर्थात् शरीरधारी प्राणी (सम्भवन्ति) यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 10 उत्पन्न होते हैं, (महत्) मूल प्रकृति तो (तासाम्) उन सबकी (योनिः) गर्भ धारण करनेवाली माता है और (अहम् ब्रह्म) मैं (बीजप्रदः) बीजको स्थापन करनेवाला (पिता) पिता हूँ। (4)

अध्याय 14 का श्लोक 5

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।५।

सत्त्वम्, रजः, तमः, इति, गुणाः, प्रकृतिसम्भवाः,
निबध्नन्ति, महाबाहो, देहे, देहिनम्, अव्ययम्।।5।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे अर्जुन! (सत्त्वम्) सत्त्वगुण, (रजः) रजोगुण और (तमः) तमोगुण (इति) ये (प्रकृतिसम्भवाः) प्रकृतिसे उत्पन्न (गुणाः) तीनों गुण (अव्ययम्) अविनाशी (देहिनम्) जीवात्माको (देहे) शरीरमें (निबध्नन्ति) बाँधते हैं। (5)

अध्याय 14 का श्लोक 6

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ।६।

तत्र, सत्त्वम्, निर्मलत्वात्, प्रकाशकम्, अनामयम्,
सुखसंगेन, बध्नाति, ज्ञानसंगेन, च, अनघ।।6।।

अनुवाद : (अनघ) हे निष्पाप! (तत्र) उन तीनों गुणोंमें (सत्त्वम्) सत्वगुण तो (निर्मलत्वात्) निर्मल होनेके कारण (प्रकाशकम्) प्रकाश करनेवाला और (अनामयम्) नकली अनामी है वह (सुखसंगेन) सुखके सम्बन्धसे (च) और (ज्ञानसंगेन) ज्ञानके सम्बन्धसे अर्थात् उसके अभिमानसे (बध्नाति) बाँधता है। (6)

अध्याय 14 का श्लोक 7

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्। ७

रजः, रागात्मकम्, विद्धि, तृष्णासंगसमुद्भवम्,
तत्, निबध्नाति, कौन्तेय, कर्मसंगेन, देहिनम्।।7।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (रागात्मकम्) रागरूप (रजः) रजोगुणको (तृष्णासंगसमुद्भवम्) कामना और आसक्तिसे उत्पन्न (विद्धि) जान (तत्) वह (देहिनम्) इस जीवात्माको (कर्मसंगेन) कर्मोंके और उनके फलके सम्बन्धसे (निबध्नाति) बाँधता है। (7)

अध्याय 14 का श्लोक 8

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत। ८

तमः, तु, अज्ञानजम्, विद्धि, मोहनम्, सर्वदेहिनाम्,
प्रमादालस्यनिद्राभिः, तत्, निबध्नाति, भारत।।8।।

अनुवाद : (भारत) हे अर्जुन! (सर्वदेहिनाम्) सब शरीरधारियोंको (मोहनम्) मोहित करनेवाले (तमः) तमोगुणको (तु) तो (अज्ञानजम्) अज्ञानसे उत्पन्न (विद्धि) जान। (तत्) वह इस जीवात्माको (प्रमादालस्यनिद्राभिः) प्रमाद आलस्य और निंद्राके द्वारा (निबध्नाति) बाँधता है। (8)

अध्याय 14 का श्लोक 9

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत। ९

सत्त्वम्, सुखे, सजयति, रजः, कर्मणि, भारत,
ज्ञानम्, आवृत्य, तु, तमः, प्रमादे, सजयति, उत।। 9।।

अनुावद : (भारत) हे अर्जुन! (सत्त्वम्) सत्वगुण (सुखे) सुखमें (सजयति) लगाता है और (रजः) रजोगुण (कर्मणि) कर्ममें तथा (तमः) तमोगुण (तु) तो (ज्ञानम्) ज्ञानको (आवृत्य) ढककर (प्रमादे) प्रमादमें (उत) भी (सजयति) लगाता है। (9)

अध्याय 14 का श्लोक 10

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा। १०

रजः, तमः, च, अभिभूय, सत्त्वम्, भवति, भारत,
रजः, सत्त्वम्, तमः, च, एव, तमः, सत्त्वम्, रजः, तथा।।10।।

अनुवाद : (भारत) हे अर्जुन! (रजः) रजोगुण (च) और (तमः) तमोगुणको (अभिभूय) दबाकर (सत्त्वम्) सत्वगुण, (सत्त्वम्) सत्वगुण (च) और (तमः) तमोगुणको दबाकर (रजः) रजोगुण (तथा) वैसे (एव) ही (सत्त्वम्) सत्वगुण और (रजः) रजोगुणको दबाकर (तमः) तमोगुण (भवति) होता है अर्थात् बढ़ता है। (10)

अध्याय 14 का श्लोक 11

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत। ११

सर्वद्वारेषु, देहे, अस्मिन्, प्रकाशः, उपजायते,
ज्ञानम्, यदा, तदा, विद्यात्, विवृद्धम्, सत्त्वम्, इति, उत।।11।।

अनुवाद : (यदा) जिस समय (अस्मिन्) इस (देहे) देहमें तथा (सर्वद्वारेषु) अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें (प्रकाशः) चेतनता और (ज्ञानम्) विवेकशक्ति (उपजायते) उत्पन्न होती है (तदा) उस समय (इति) ऐसा (विद्यात्) जानना चाहिए (उत) कि (सत्त्वम्) सत्वगुण (विवृद्धम्) बढ़ा है। (11)

अध्याय 14 का श्लोक 12

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ। १२

लोभः, प्रवृत्तिः, आरम्भः, कर्मणाम्, अशमः, स्पृहा,
रजसि, एतानि, जायन्ते, विवृद्धे, भरतर्षभ।।12।।

अनुवाद : (भरतर्षभ) हे अर्जुन! (रजसि) रजोगुणके (विवृद्धे) बढ़ने पर (लोभः) लोभ (प्रवृत्तिः) प्रवृति स्वार्थबुद्धिसे (कर्मणाम्) कर्मोंका सकाम-भावसे (आरम्भः) आरम्भ (अशमः) अशान्ति और (स्पृहा) विषय-भोगोंकी लालसा (एतानि) ये सब (जायन्ते) उत्पन्न होते हैं। (12)

अध्याय 14 का श्लोक 13

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन।१३।

अप्रकाशः, अप्रवृत्तिः, च, प्रमादः, मोहः, एव, च,
तमसि, एतानि, जायन्ते, विवृद्धे, कुरुनन्दन।।13।।

अनुवाद : (कुरुनन्दन) हे अर्जुन! (तमसि) तमोगुणके (विवृद्धे) बढ़नेपर अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें (अप्रकाशः) अप्रकाश (अप्रवृत्तिः) कर्तव्य-कर्मोंमें अप्रवृति (च) और (प्रमादः) प्रमाद अर्थात् व्यर्थ चेष्टा (च) और (मोहः) निन्द्रादि अन्तःकरणकी मोहिनी वृतियाँ (एतानि) ये सब (एव) ही (जायन्ते) उत्पन्न होते हैं। (13)

अध्याय 14 का श्लोक 14

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते।१४।

यदा, सत्त्वे, प्रवृद्धे, तु, प्रलयम्, याति, देहभृत्,
तदा, उत्तमविदाम्, लोकान्, अमलान्, प्रतिपद्यते।।14।।

अनुवाद : (यदा) जब (देहभृत्) यह मनुष्य (सत्त्वे) सत्वगुणकी (प्रवृद्धे) वृद्धिमें (प्रलयम्) मृत्युको (याति) प्राप्त होता है (तदा) तब (तु) तो (उतमविदाम्) उत्तम कर्म करनेवालोंके (अमलान्) निर्मल दिव्य स्वर्गादि (लोकान्) लोकोंको (प्रतिपद्यते) प्राप्त होता है। (14)

अध्याय 14 का श्लोक 15

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते।१५।

रजसि, प्रलयम्, गत्वा, कर्मसंगिषु, जायते,
तथा, प्रलीनः, तमसि, मूढयोनिषु जायते।।15।।

अनुवाद : (रजसि) रजोगुणके बढ़नेपर (प्रलयम्) मृत्युको (गत्वा) प्राप्त होकर (कर्मसंगिषु) कर्मोंकी आसक्तिवाले मनुष्योंमें (जायते) उत्पन्न होता है (तथा) तथा (तमसि) तमोगुणके बढ़नेपर (प्रलीनः) मरा हुआ मनुष्य कीट, पशु आदि (मूढयोनिषु) मूढयोनियोंमें (जायते) उत्पन्न होता है। (15)

अध्याय 14 का श्लोक 16

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्।१६।

कर्मणः, सुकृतस्य, आहुः, सात्त्विकम्, निर्मलम्, फलम्,
रजसः, तु, फलम्, दुःखम्, अज्ञानम्, तमसः, फलम्।।16।।

अनुवाद : (सुकृतस्य) श्रेष्ठ (कर्मणः) कर्मका तो (सात्त्विकम्) सात्विक अर्थात् सुख, ज्ञान और वैराग्यादि (निर्मलम्) निर्मल (फलम्) फल (आहुः) कहा है (तु) किन्तु (रजसः) राजस कर्मका (फलम्) फल (दुःखम्) दुःख एवम् (तमसः) तामस कर्मका (फलम्) फल (अज्ञानम्) अज्ञान कहा है। (16)

अध्याय 14 का श्लोक 17

सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च।१७।

सत्त्वात्, सजायते, ज्ञानम्, रजसः, लोभः, एव, च
प्रमादमोहौ, तमसः, भवतः, अज्ञानम्, एव, च।।17।।

अनुवाद : (सत्त्वात्) सत्वगुणसे (ज्ञानम्) ज्ञान (सजायते) उत्पन्न होता है (च) और (रजसः) रजोगुणसे (एव) निःसंदेह ही (लोभः) लोभ (च) तथा (तमसः) तमोगुणसे (प्रमादमोहौ) प्रमाद और मोह (भवतः) उत्पन्न होते हैं और (अज्ञानम्) अज्ञान (एव) ही होता है। (17)

अध्याय 14 का श्लोक 18

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।१८।

ऊर्ध्वम्, गच्छन्ति, सत्त्वस्थाः, मध्ये, तिष्ठन्ति, राजसाः,
जघन्यगुणवृत्तिस्थाः, अधः, गच्छन्ति, तामसाः।।18।।

अनुवाद : (सत्त्वस्थाः) सत्वगुणमें स्थित पुरुष अर्थात् विष्णु उपासक (ऊर्ध्वम्) ऊपर वाले स्वर्गादि लोकोंको (गच्छन्ति) जाते हैं रजोगुणमें स्थित (राजसाः) राजस पुरुष अर्थात् ब्रह्मा उपासक (मध्ये) मध्य वाले पृथ्वी लोक में अर्थात् मनुष्यलोकमें ही (तिष्ठन्ति) रहते हैं और (जघन्यगुणवृत्तिस्थाः) तमोगुणके कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्यादिमें स्थित (तामसाः) तामस पुरुष अर्थात् शिव उपासक (अधः) नीचे वाले पताल अर्थात् नरकों तथा अधोगति अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनियों को (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं। उदाहरण - रावण, भष्मासुर आदि। (18)

अध्याय 14 का श्लोक 19

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।१९।

न, अन्यम्, गुणेभ्यः, कर्तारम्, यदा, द्रष्टा, अनुपश्यति,
गुणेभ्यः, च, परम्, वेत्ति, मद्भावम्, सः, अधिगच्छति।।19।।

अनुवाद : (यदा) जिस समय (द्रष्टा) विवेक शील साधक (गुणेभ्यः) तीनों गुणों - ब्रह्मा, विष्णु, शिव से (अन्यम्) अन्य को (कर्तारम्) करतार अर्थात् भगवान (न) नहीं (अनुपश्यति) देखता (सः) वह (च) और (गुणेभ्यः) तीनों गुणों अर्थात् रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तम्गुण शिव जी से (परम्) दूसरे पूर्ण परमात्मा को (वेत्ति) तत्वसे जानता है (मद्भावम्) वह मेरे मता अनुकूल विचारों को (अधिगच्छति) प्राप्त होता है। (19)

भावार्थ - श्लोक 19 का भावार्थ है कि जो साधक भक्ति तो तीनों प्रभुओं की ही करता है, अन्य को नहीं मानता तथा यह भी समझ लेता है कि वास्तव में भक्ति तो परमेश्वर की ही करनी चाहिए तो वह कभी न कभी सत्य भक्ति स्वीकार कर लेता है।

अध्याय 14 का श्लोक 20

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ।२०।

गुणान्, एतान्, अतीत्य, त्रीन्, देही, देहसमुद्भवान्,
जन्ममृत्युजरादुःखै, विमुक्तः, अमृतम्, अश्नुते।।20।।

अनुवाद : वह (देही) जीवात्मा (देहसमुद्भवान्) शरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप (एतान्) इन (त्रीन्) तीनों (गुणान्) गुणों अर्थात् तीनों रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी का(अतीत्य) उल्लंघन करके तथा पूर्ण परमात्मा की शास्त्र विधि अनुसार पूजा करके (जन्ममृत्युजरा दुःखैः) जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकारके दुःखोंसे (विमुक्तः) मुक्त हुआ (अमृतम्) परमानन्दको अर्थात् पूर्ण मुक्त होकर अमरत्व को (अश्नुते) प्राप्त होता है। (20)

अध्याय 14 का श्लोक 21(अर्जुन उवाच)

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते। २१।

कैः, लिंगैः, त्रीन्, गुणान्, एतान्, अतीतः, भवति, प्रभो,
किमाचारः, कथम्, च, एतान्, त्रीन्, गुणान्, अतिवर्तते।।21।।

अनुवाद : (एतान्) इन (त्रीन्) तीनों (गुणान्) गुणोंसे (अतीतः) अतीत भक्त (कैः) किन-किन (लिंगैः) लक्षणोंसे युक्त होता है (च) और (किमाचारः) किस प्रकारके आचरणोंवाला (भवति) होता है तथा (प्रभो) हे प्रभो! मनुष्य (कथम्) कैसे (एतान्) इन (त्रीन्) तीनों (गुणान्) गुणोंसे (अतिवर्तते) अतीत होता है अर्थात् ऊपर उठ जाता है। (21)

अध्याय 14 का श्लोक 22(भगवान उवाच)

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति। २२।

प्रकाशम्, च, प्रवृत्तिम्, च, मोहम्, एव, च, पाण्डव,
न, द्वेष्टि, सम्प्रवृत्तानि, न, निवृत्तानि, काङ्क्षति।।22।।

अनुवाद : (पाण्डव) हे अर्जुन! जो साधक (प्रकाशम्) सत्वगुणके कार्यरूप प्रकाशको (च) और (प्रवृत्तिम्) रजोगुणके कार्यरूप प्रवृतिको (च) तथा (मोहम्) तमोगुणके कार्यरूप मोहको (एव) ही (न) न (सम्प्रवृत्तानि) प्रवृत होनेपर उनसे (द्वेष्टि) द्वेष करता है (च) और (न) न (निवृत्तानि) निवृत होनेपर उनकी (काङ्क्षति) आकांक्षा करता है। (22)

अध्याय 14 का श्लोक 23

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते। २३।

उदासीनवत्, आसीनः, गुणैः, यः, न, विचाल्यते,
गुणाः, वर्तन्ते, इति, एव, यः, अवतिष्ठति, न, इंगते।।23।।

अनुवाद : (यः) जो (उदासीनवत्) सर्व पदार्थों के भोग से उदास हुआ होता है उस उदासीन अर्थात् साक्षीके सदृश (आसीनः) स्थित हुआ (गुणैः) गुणोंके द्वारा (न,विचाल्यते) विचलित नहीं किया जा सकता और (गुणाः,एव) गुण ही गुणोंमें (वर्तन्ते) बरतते हैं (इति) ऐसा समझता हुआ (यः) जो सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे (अवतिष्ठति) स्थित रहता है एवं (न,इंगते) उस स्थितिसे कभी विचलित नहीं होता। (23)

भावार्थ - श्लोक 23 का भावार्थ है कि जो साधक पूर्ण परमात्मा के तत्वज्ञान से पूर्ण परिचित

हो जाता है वह फिर तीनों गुणों अर्थात् तीनों प्रभुओं श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी से मिलने वाले क्षणिक सुख से प्रभावित नहीं होता। इनकी स्थिति व शक्ति से परिचित है। जैसे गीता अध्याय 2 श्लोक 46 में प्रमाण है कि पूर्ण रूप से परिपूर्ण जल से भरे हुए बहुत बड़े जलाशय अर्थात् झील के प्राप्त हो जाने पर छोटे जलाशय में जितनी श्रद्धा रह जाती है, छोटे जलाशय बुरे नहीं लगते परन्तु उनकी क्षमता से परिचित हो जाने से बड़े जलाशय में पूर्ण आस्था बन जाती है। इसी प्रकार पूर्ण ब्रह्म के ज्ञान के पश्चात् अन्य प्रभुओं से घृणा नहीं बनती, परन्तु पूर्ण आस्था उस पूर्ण परमात्मा में स्वत् बन जाती है।

अध्याय 14 का श्लोक 24

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः। २४।

समदुःखसुखः, स्वस्थः, समलोष्टाश्मकाचनः,
तुल्यप्रियाप्रियः, धीरः, तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।।24।।

अनुवाद : (स्वस्थः) अपने तत्व ज्ञान पर आधारित (समदुःखसुखः) दुःख सुखको समान समझनेवाला (समलोष्टाश्मकाचनः) मिट्टी पत्थर और स्वर्णमें समान भाववाला (धीरः) तत्व ज्ञानी (तुल्यप्रियाप्रियः) प्रिय तथा अप्रियको एक सा माननेवाला और (तुल्यनिन्दात्म संस्तुतिः) अपनी निन्दास्तुतिमें भी समान भाववाला है। (24)

अध्याय 14 का श्लोक 25

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते। २५।

मानापमानयोः, तुल्यः, तुल्यः, मित्रारिपक्षयोः,
सर्वारम्भपरित्यागी, गुणातीतः, सः, उच्यते।।25।।

अनुवाद : (मानापमानयोः) जो मान और अपमानमें (तुल्यः) सम है (मित्रारिपक्षयोः) मित्र और वैरीके पक्षमें भी (तुल्यः) सम है एवं (सर्वारम्भपरित्यागी)राग वश किसी का लाभ करने वाले तथा द्वेष वश किसी को हानि करने वाले सम्पूर्ण आरम्भों का त्यागी है (सः) वह भक्त (गुणातीतः) तीनों भगवानों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तम् गुण शिव जी की निराकार शक्ति से प्रभावित नहीं होता वह) गुणातीत (उच्यते) कहा जाता है। (25)

अध्याय 14 का श्लोक 26

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते। २६।

माम्, च, यः, अव्यभिचारेण, भक्तियोगेन, सेवते,
सः, गुणान्, समतीत्य, एतान्, ब्रह्मभूयाय, कल्पते।।26।।

अनुवाद : (च) और (यः) जो भक्त (अव्यभिचारेण) अव्यभिचारी (भक्तियोगेन) भक्तियोगके द्वारा (माम्) मुझको निरन्तर (सेवते) भजता है (सः) वह भी (एतान्) इन (गुणान्) तीनों गुणोंको (समतीत्य) भलीभाँति लाँघकर (ब्रह्मभूयाय) सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त होनेके लिये (कल्पते) योग्य बन जाता है अर्थात् उसी एक पूर्ण परमात्मा की ही कल्पना करता है। (26)

भावार्थ :-- गीता अध्याय 14 श्लोक 26 का भावार्थ है कि जो व्यक्ति पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति

के तत्वज्ञान से परिचित होने के पश्चात् मेरी पूजा करने वाला अथार्त् ब्रह्म का साधक यदि श्री ब्रह्मा जी (रजगुण) श्री विष्णु जी (सतगुण) तथा श्री शिव जी (तम्गुण) की भी साधना साथ-2 करता है तो वह पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति के लिए तीनों भगवानों (गुणों) का उल्लंघन कर देता है अर्थात् इस से अपनी आस्था तुरन्त हटाकर सत्य साधना में अव्यभिचारिणी भक्ति अर्थात् एक पूर्ण परमात्मा में ही पूर्ण आस्था करके उसको प्राप्त करने योग्य बन जाता है। वह गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में वर्णित ओम्-तत्-सत् मन्त्र का जाप करता है।

अध्याय 14 का श्लोक 27

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।२७।

ब्रह्मणः, हि, प्रतिष्ठा, अहम्, अमृतस्य, अव्ययस्य, च,
शाश्वतस्य, च, धर्मस्य, सुखस्य, ऐकान्तिकस्य, च।।27।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि उस (अव्ययस्य) अविनाशी (ब्रह्मणः) पूर्ण परमात्मा का (च) और (अमृतस्य) अमृतका (च) तथा (शाश्वतस्य) नित्य (धर्मस्य) पूजाका (च) और (ऐकान्तिकस्य) अखण्ड एकरस के (सुखस्य) आनन्दकी (प्रतिष्ठा) अवस्था अर्थात् भूमिका (अहम्) मैं हूँ अर्थात् उस परमात्मा की प्राप्ति भी मेरे माध्यम से ही होती है। (27)

(इति अध्याय चौदहवाँ)

❑❑❑

❁ पंद्रहवां अध्याय ❁

।। सारांश।।

।। सृष्टि रूपी वृक्ष का वर्णन।।

अध्याय 15 के श्लोक 1 में कहा है कि ऊपर को पूर्ण परमात्मा रूपी जड़ वाला नीचे को तीनों गुण (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिवजी) रूपी शाखा वाला संसार रूपी एक अविनाशी विस्तृत वृक्ष है। जैसे पीपल का वृक्ष होता है। उसकी नाना डार व साखाएँ होती हैं। जिसके छोटे-छोटे हिस्से (टहनियाँ) पत्ते आदि हैं उस संसार रूपी वृक्ष को जो इस प्रकार जानता है वह पूर्ण ज्ञानी अर्थात् तत्वदर्शी संत है। कबीर परमेश्वर जी कहते हैं :--

अक्षर पुरुष एक पेड़ है, निरंजन (ब्रह्म) वाकि डार। तीनों देवा शाखा हैं, पात रूप संसार।।

यह उल्टे लटके हुए संसार रूपी वृक्ष की रचना है। ऊपर को जड़ें (पूर्णब्रह्म परमात्मा-परम अक्षर पुरुष) सतपुरुष है, अक्षर पुरुष (परब्रह्म) जमीन से बाहर दिखाई देने वाला तना है तथा ज्योति निरंजन (ब्रह्म/क्षर) डार है और तीनों देवा (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) शाखा हैं। छोटी टहनियाँ और पत्ते देवी-देवता व आम जीव जानों। अध्याय 15 के श्लोक 2 में कहा है कि उस (अक्षर पुरुष रूपी वृक्ष) की नीचे और ऊपर गुणों (ब्रह्मा-रजगुण, विष्णु-सतगुण, शिव-तमगुण) रूपी फैली हुई विषय विकार (काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार) रूपी कोपलें व डाली (ब्रह्मा-विष्णु-शिव रूपी)। इस जीवात्मा को कर्मोंके अनुसार बाँधने का मुख्य कारण है तथा नीचे पाताल लोक में, ऊपर स्वर्ग लोक में व्यवस्थित किए हुए हैं। (गीता जी के अध्याय 14 के श्लोक 5 में प्रमाण है कि – हे महाबाहो (अर्जुन)! सतगुण, रजगुण, तथा तमगुण जो प्रकृति (माया) से उत्पन्न हुए हैं। ये तीनों गुण जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं।) *अध्याय 15 के श्लोक 3 में गीता बोलने वाला ब्रह्म कह रहा है कि इस (रचना) का न तो शुरु का ज्ञान, न अंत का और न ही वैसा स्वरूप (जैसा दिखाई देता है) पाया जाता है तथा यहाँ विचार काल में अर्थात् तेरे मेरे इस गीता ज्ञान संवाद में मुझे भी इसकी अच्छी तरह स्थिति का ज्ञान नहीं है। इस स्थाई स्थिति वाले मजबूत संसार रूपी वृक्ष अर्थात् सृष्टि रचना को पूर्ण ज्ञान रूप (सुक्ष्म वेद के ज्ञान से) शस्त्र से काट कर अर्थात् अच्छी तरह जान कर काल (ब्रह्म) व ब्रह्मा-विष्णु-शिव तीनों गुणों व पित्रों- भूतों- देवी- देवताओं, भैरों, गूगा पीर आदि से मन हट जाता है। इसलिए इस संसार रूपी वृक्ष को काटना कहा है।*

अध्याय 15 के श्लोक 4 में बताया है कि उपरोक्त तत्वदर्शी संत जिसका गीता अध्याय 15 श्लोक1 व अध्याय4 श्लोक 34 में भी वर्णन है मिलने के पश्चात उस स्थान (सतलोक-सच्चखण्ड) की खोज करनी चाहिए जिसमें गए हुए साधक फिर लौट कर (जन्म-मरण में) इस संसार में नहीं आते अर्थात् अनादि मोक्ष प्राप्त करते हैं और जिस परमात्मा से आदि समय से चली आ रही सृष्टि उत्पन्न हुई है। मैं काल भी उसी अविगत पूर्ण परमात्मा की शरण में हूँ। उसी पूर्ण परमात्मा की ही भक्ति पूर्ण निश्चय के साथ करनी चाहिए, अन्य की नहीं। इसी का प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 18 मंत्र 62 में भी है।

''तत्वदर्शी सन्त की पहचान'' :-- उपरोक्त गीता अध्याय 15 श्लोक 1 में कहा है कि जो सन्त संसार रूपी वृक्ष के सर्व भागों को भिन्न-2 बताए वह तत्वदर्शी सन्त है। जो आप जी ने ऊपर पढ़ा कि संसार रूपी वृक्ष की जड़े (मूल)तो परम अक्षर ब्रह्म है, तना अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म है, डार

क्षरपुरूष अर्थात् ब्रह्म (काल) है तथा तीनों शाखाऐं रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शिवजी है तथा पत्ते रूपी प्राणी हैं। दूसरी पहचान :-- गीता अध्याय 8 श्लोक 16 में कहा है कि ब्रह्मलोक से लेकर सर्व लोक नाश्वान हैं। गीता अध्याय 8 श्लोक 17 में कहा है कि परब्रह्म का एक दिन एक हजार युग का होता है इतनी ही रात्री होती है। जो इस अवधी को जानता है व काल को तत्व से जानने वाला है अर्थात् तत्वदर्शी सन्त है। कृप्या देखें गीता अध्याय 8 श्लोक 17 के अनुवाद में :--

।। पूर्ण परमात्मा की जानकारी ।।

अध्याय 15 के श्लोक 5 में कहा है कि जिनकी आसक्ति प्रत्येक वस्तु से हटकर प्रभु प्राप्ति में लग गई वही साधक उस अविनाशी परमेश्वर को प्राप्त करते हैं तथा श्लोक 6 में कहा है कि स्वयं काल भगवान कह रहा है कि जिस सतलोक में गए साधक लौट कर संसार में नहीं आते उस सतलोक को न सूर्य, न अग्नि और न चन्द्रमा प्रकाशित कर सकते हैं। वह सत्यलोक मेरे लोक से श्रेष्ठ है तथा मेरा परम धाम है। क्योंकि काल (ब्रह्म) भी उसी सतलोक से निष्कासित है। इसलिए कहता है कि मेरा परम धाम (वास्तविक ठिकाना) भी वही सतलोक है।

अध्याय 15 के श्लोक 7 में कहा है कि इस मृतलोक में आदि परमात्मा अंश जीवात्मा ही प्रकृति में स्थित मन (काल का दूसरा स्वरूप मन है) इन्द्रियों सहित ये छःओं द्वारा सताई जाती हैं (कृषित की जाती हैं)।

अध्याय 15 के श्लोक 8 में कहा है कि जैसे गन्ध का मालिक वायु गन्ध को साथ रखती है (ले जाती है)। ऐसे ही पूर्ण परमात्मा अपनी जीवात्मा का स्वामी होने के कारण उसे एक शरीर से दूसरे में जो उसे (जीवात्मा को) प्राप्त हुआ है में ले जाता है अर्थात् अलग नहीं होता।

अध्याय 15 के श्लोक 9 में कहा है कि यह परमात्मा (जो आत्मा के साथ है) कान-आँख और त्वचा, जिह्वा, नाक और मन के माध्यम से ही विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) का सेवन करता है। अध्याय 15 के श्लोक 10 में कहा है कि मूर्ख व्यक्ति (इसी परमात्मा सहित आत्मा) को शरीर छोड़ कर जाते हुए (त्याग करते हुए) तथा शरीर में स्थित तथा गुणों के भोगता (आनन्द लेने वाले) को नहीं जानते। जिनको सृष्टि रूपी वृक्ष का पूर्ण ज्ञान हो गया उन्हें ज्ञान नेत्रों वाले अर्थात् पूर्ण ज्ञानी कहते हैं। वे ही जानते हैं। विशेष प्रमाण के लिए देखें गीता जी के अध्याय 13 के श्लोक 22 से 27 में । अध्याय 15 के श्लोक 11 में कहा है कि भगवत् प्राप्ति का यत्न करने वाले (प्रयत्नशील) योगी (साधक) अपनी आत्मा में स्थित परमात्मा को सही प्रकार से जानते हैं (देखते हैं) और जिनके अन्तःकरण शुद्ध नहीं हैं वे अज्ञानीजन यत्न करने पर भी इस परमात्मा को सही नहीं जानते (देखते)। पूर्ण ज्ञान होने पर प्रतिदिन महसूस होता है कि उस पूर्ण परमात्मा की आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता अर्थात् सर्व प्राणियों का आधार परमेश्वर ही है। जो नादान हैं वे सोचते हैं कि मैं कर रहा हूँ। जब यह प्राणी पूर्ण परमात्मा की शरण में आ जाता है तब पूर्ण ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा कविर्देव) उस प्यारे भक्त के सर्व सम्भव तथा असम्भव कार्य करता है। नादान भक्तों को ज्ञान नहीं होता, जो ज्ञानवान हैं उन्हें पता होता है कि यह सर्व कार्य पूर्णब्रह्म समर्थ ही कर सकता है, जीव के वश में नहीं है। जैसे एक छोटा-सा बच्चा दीवार के साथ खड़े मूसल (काष्ठ का भारी गोल कड़ी जैसा होता है) को उठाने की चेष्टा करता है। पिता जी मना करता है तो रोने लगता है। फिर उस बच्चे को प्रसन्न करने के लिए उस मूसल को ऊपर से पकड़ कर पिता जी स्वयं उठा लेता है तथा वह अबोध बालक केवल हाथों से पकड़ कर चल देता है। पिता जी कहता है कि देखो मेरे पुत्र ने

मूसल उठा लिया। फिर वह बच्चा गर्व से हंसता हुआ चलता है। मान रहा है कि मैंने मूसल उठा लिया। परन्तु जो समझदार होता है वह जान जाता है कि मूसल उठाना बच्चे के वश से बाहर की बात है।

अध्याय 15 के श्लोक 12,13 में कहा है कि जो सूर्य चन्द्रमा-अग्नि आदि में प्रकाश है यह मेरा ही समझ और मैं (काल उस परमात्मा के नौकर की तरह) पृथ्वी में प्रवेश करके उसी परमात्मा की शक्ति से सब प्राणियों को धारण करता हूँ। चन्द्रमा होकर औषधियों में रस (गुण) को प्रवेश करता हूँ (पुष्ट करता हूँ)। आदरणीय गरीबदास साहेब जी महाराज (साहेब कबीर जी के शिष्य) कहते हैं कि -

गरीब, काल (ब्रह्म) तो पीसे पीसना, जौरा है पनिहार।
ये दो असल मजूर (नौकर) हैं, मेरे सतगुरु (अर्थात् कबीर) के दरबार।।

ब्रह्म भगवान तो पूर्ण ब्रह्म का आटा पीसता है और जौरा (मौत) पूर्ण ब्रह्म कबीर साहेब का पानी भरती है अर्थात् ये दोनों मेरे कबीर सतगुरु (पूर्णब्रह्म) के नौकर (मजदूर) हैं। इन्हीं (कविरग्नि) के आदेशानुसार चलते हैं।

विशेष : स्वयं काल (ब्रह्म) कह रहा है कि अध्याय 15 के श्लोक 4 में कहा है कि मैं (ब्रह्म-काल) उसी परमात्मा की शरण हूँ, आश्रित हूँ।

अध्याय 15 के श्लोक 14 में कहा है कि मैं (ब्रह्म) सब प्राणियों के शरीर में शरण (आश्रितः) लेकर महाब्रह्मा-महाविष्णु-महाशिव रूप से सर्व कमलों में निवास करके नौकर की तरह प्राण व अपान (वायु) के आधार से संयुक्त जठराग्नि हो कर चार प्रकार से अन्न को पचाता हूँ।

अध्याय 15 के श्लोक 15 का अनुवाद है कि मैं सब प्राणियों के हृदय में शास्त्रानुकूल विचार (मत) स्थित करता हूँ। मैं ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन (संश्य निवारण कर्त्ता) और वेदान्त कर्त्ता अर्थात् चारों वेदों को मैं ही प्रकाशित करता हूँ। भावार्थ है कि काल ब्रह्म कह रहा है कि वेद ज्ञान का दाता भी मैं ही हूँ और वेदों को जानने वाला मैं ही सब वेदों द्वारा जानने योग्य हूँ।

इस श्लोक में ब्रह्म भगवान कह रहा है कि मैं प्राणियों के हृदय में अपना शास्त्रानुकूल ज्ञान स्थापित करता हूँ तथा उन सर्व शास्त्रों, वेद ज्ञान, स्मृति आदि को मैं (ब्रह्म) जानता हूँ तथा उनमें मेरा ही विशेष ज्ञान है। इसलिए लोक व वेद में मुझको ही श्रेष्ठ भगवान जानने योग्य मानते हैं। गीता अध्याय 13 श्लोक 17 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा सर्व प्राणियों के हृदय में विशेष रूप से स्थित है। यही प्रमाण अध्याय 18 श्लोक 61 में है। इस से सिद्ध है कि सर्व प्रभु (ब्रह्मा,विष्णु, शिव व ब्रह्म तथा पूर्ण ब्रह्म)शरीर में भिन्न-2 स्थानों पर दिखाई देते हैं। जबकि सर्व प्रभु जीव के शरीर से बाहर हैं।

।। ब्रह्म (काल) नाशवान है।।

अध्याय 15 के श्लोक 16 का भाव है कि इस पृथ्वी वाले लोक (ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्मण्ड तथा परब्रह्म के सात शंख ब्रह्मण्ड दोनों ही पृथ्वी वाला लोक कहलाता है, जैसे मिट्टी के चाहे प्याले, प्लेट, थाली, घड़े आदि बने हो, कहलाते हैं मिट्टी वाले ही) में दो प्रकार के भगवान (पुरुष) हैं।

1 क्षर - नाशवान भगवान (ब्रह्म-काल) है।

2 अक्षर - परब्रह्म अविनाशी है तथा इन दोनों प्रभुओं के लोकों में दो ही स्थिति जीव की है। जो पंच भौतिक स्थूल शरीर है यह नाशवान है। उसमें जीव आत्मा को अविनाशी कहा है।

।। वास्तव में अविनाशी पूर्ण परमात्मा।।

क्षर पुरुष (ब्रह्म-काल) की तथा इसके इक्कीस ब्रह्मण्डों में प्राणियों की स्थिति ऐसी जानों जैसे सफेद प्याला चाय पीने वाला, वह तो स्पष्ट नाशवान दिखाई देता है। हाथ से छूटते ही जमीन पर गिरते ही टुकड़े-टुकडे हो जाता है।

दूसरा अक्षर पुरुष (कुछ अविनाशी परब्रह्म) है। जैसे स्टील (इस्पात) का बना कप हो जो अविनाशी (स्थाई) नजर आता है। कितनी बार गिरे टुकड़े-2 नहीं होता, इसलिए स्थाई धातु माना जाता है। परन्तु वास्तव में अविनाशी धातु इस्पात भी नहीं है। बहुत समय उपरान्त स्टील को जंग लगेगा तथा विनाश को प्राप्त होगा। इस प्रकार अक्षर पुरुष (परब्रह्म) को अविनाशी भी कहा है क्योंकि एक हजार बार ब्रह्म की मृत्यु हो जाएगी तब एक दिन परब्रह्म (अक्षर पुरुष) का पूरा होगा। फिर इतनी ही रात्री। इस पर तीस दिन-रात का एक महीना तथा 12 महीने का एक वर्ष तथा 100 वर्ष की आयु परब्रह्म (अक्षर पुरुष) की है। इस लिए परब्रह्म को अक्षर पुरुष कहा है, परन्तु सौ वर्ष पूरे होने पर इसकी मृत्यु होगी तथा सर्व ब्रह्मण्डों का विनाश होगा। फिर नए सिरे से परब्रह्म (अक्षर पुरुष) तथा ब्रह्म (क्षर पुरुष) के सर्व ब्रह्मण्डों की रचना पूर्ण ब्रह्म कविर्देव (कबीर परमेश्वर) ही कर देगा।

तीसरी धातु सोना (स्वर्ण) है, जिसको जंग नहीं लगता। वास्तव में स्थाई (अविनाशी) धातु इन उपरोक्त दोनों मिट्टी तथा इस्पात से अन्य है। इसी प्रकार गीता अध्याय 15 मंत्र 17 में कहा है कि वास्तव में अविनाशी परमात्मा तो उपरोक्त दोनों पुरुषों (प्रभुओं) क्षर पुरुष (ब्रह्म) तथा अक्षर पुरुष (परब्रह्म) से भी अन्य ही है जो वास्तव में अविनाशी परमात्मा परमेश्वर कहा जाता है। वही तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण-पोषण करता है।

अध्याय 15 के श्लोक 17 का भाव है कि श्रेष्ठ परमात्मा (पूर्ण ब्रह्म) तो कोई और ही है जो अविनाशी ईश्वर(पूर्ण ब्रह्म) नाम से जाना जाता है तथा तीनों लोकों में प्रवेश करके सब का धारण व पालन पोषण भी वही करता है।

जैसे कबीर साहेब कहते हैं कि -

कबीर, अक्षर पुरुष (परब्रह्म) एक पेड़ है, निरंजन (ब्रह्म) वाकि डार।
तीनों देवा (ब्रह्मा–विष्णु–महेश) साखा हैं, पात रूप संसार।।

इसमें स्पष्ट है कि अक्षर पुरुष तो पेड़ (तना) जो जमीन से ऊपर नजर आता है फिर उसके कोई मोटी डाली (डार) क्षर (काल-ब्रह्म) जानों। तीनों देवता ब्रह्मा-विष्णु-शंकर शाखा और छोटी टहनियाँ हैं तथा पत्ते रूप में सर्व संसार है।

यहां पर मूल (जड़) निःअक्षर (अविनाशी परमात्मा पूर्ण ब्रह्म जो दिखाई नहीं देता) है। इसलिए आगे कबीर साहेब कहते हैं :--

कबीर, एकै साधै सब सधै, सब साधै सब जाय।
माली सीचैं मूल को, फूलै–फलै अघाय।।

इस वाणी का भाव है कि एक जड़ (मूल) रूपी पूर्णब्रह्म की सेवा साधना से सर्व वृक्ष प्रफूलित (हरा-भरा)रहता है। तना (परब्रह्म-अक्षर) व डार (ब्रह्म) साखा (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) की पूजा से (पानी डालने से) वह सारा पौधा सूख जाएगा अर्थात् साधना व्यर्थ जाएगी। आदरणीय गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि --

कर्म भ्रम भारी लगे, संसा सूल बंबूल।
डाली पानों डोलते, परसत नाहीं मूल।।

इसलिए एक ही परमेश्वर (सतपुरुष, कबीर साहेब) की शरण लेकर पूर्ण मुक्त हो सकते हैं व काल जाल से बच सकते हैं।

इसी का प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 में वृक्ष का उदाहरण देकर कहा है।

अध्याय 15 के श्लोक 16,17 का भावार्थ जानने के लिए यह उपरोक्त उदाहरण ध्यान से पढ़े फिर सोचें। क्योंकि काल, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर व माई से ज्यादा शक्तिशाली (एक हजार भुजाओं का) है इसलिए तीन लोक के प्राणी इसे (काल को) ही पुरुषोत्तम मानते हैं। केवल इसी लिए श्लोक 18 में पुरुषोत्तम कहा है।

अध्याय 15 के श्लोक 18 का भाव है कि काल (ब्रह्म) कह रहा है कि मैं पंच भौतिक स्थूल शरीर में जो नाशवान (क्षर) प्राणि है उनसे तथा जीवात्मा (जो अविनाशी है) से शक्तिशाली हूँ। इसलिए मुझ (काल-ब्रह्म) को ही श्रेष्ठ (पुरुषोत्तम) भगवान जानते हैं। वास्तव में पूर्ण अविनाशी व उत्तम पुरुष तो अन्य ही है। जिसका वर्णन उपरोक्त श्लोक 17 में है।

मेरे इक्कीस ब्रह्मण्डों में सर्व प्राणियों से शक्तिशाली हूँ। वे चाहे स्थूल शरीर में नाशवान गुणों वाले हैं तथा चाहे जीवात्मा में अविनाशी गुणों युक्त हैं। इन सर्व का मालिक हूँ, इसलिए लोक वेद के आधार पर मुझे पुरुषोत्तम मानते हैं। परन्तु वास्तव में पुरुषोत्तम तो कोई और ही है। जिसका वर्णन उपरोक्त श्लोक 17 में है।

लोक वेद :- लोकवेद क्षेत्रीय सुने सुनाए शास्त्र विरुद्ध ज्ञान को कहते हैं। जैसे किसी क्षेत्र में दुर्गा जी की पूजा का महत्व ज्यादा है। किसी क्षेत्र में श्री हनुमान जी की, किसी क्षेत्र में श्री गणेश जी की, किसी क्षेत्र में श्री खाटू श्याम जी की, किसी में श्री राम और किसी में श्री कृष्ण जी की पूजा का जोर केवल लोकवेद के आधार पर होता है। जैसे अभी तक एक ब्रह्मण्ड का भी ज्ञान पूर्ण नहीं था। न ब्रह्मा जी को, न श्री विष्णु जी को व न श्री शिव जी को एक ब्रह्म की भी पूर्ण जानकारी नहीं थी। श्री देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कंद में अपने पुत्र श्री नारद जी के पूछने पर कि एक ब्रह्मण्ड की उत्पत्ति कैसे हुए, श्री ब्रह्मा जी ने बताया कि बेटा नारद मुझे नहीं मालूम मैं कमल के फूल पर कैसे उत्पन्न हुआ? मुझे पैदा करने वाला कौन है? फिर तीनों ब्रह्मा - विष्णु - शिव जी को दुर्गा ने एक विमान में बैठाकर ब्रह्मलोक में भेजा। वहाँ एक-एक ब्रह्मा - विष्णु - शिव और देखकर आश्चर्य में पड़ गए। फिर देवी के पास जाकर ब्रह्मा जी - विष्णु जी - शिव जी स्वयं स्वीकार कर रहे हैं कि हम तो जन्म तथा मृत्यु में नाशवान हैं, हम अविनाशी नहीं हैं। हमारा तो आविर्भाव (जन्म) तथा तिरोभाव (मृत्यु) होता है। इसके विपरित लोक वेद के आधार पर इन्हीं तीनों प्रभुओं को अजर-अमर, सर्वेश्वर, महेश्वर, अजन्मा, वासुदेव, इनके माता-पिता नहीं आदि उपमा से जानते थे। इन्हीं की पूजा को अन्तिम मान रखा था। जबकि पवित्र गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तक तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव जी) की पूजा करने वालों को मूर्ख - राक्षस स्वभाव वाले, मनुष्यों में नीच, दुष्कर्म करने वाले कहा है। लोक वेद (क्षेत्रीय शास्त्र विरुद्ध ज्ञान) के आधार पर वेदों को पढ़ने वाले ऋषि जिनको तत्वदर्शी संत नहीं मिला स्वयं ही निष्कर्ष निकाल कर ब्रह्म (काल) को पुरुषोत्तम कहते रहे। पूर्ण परमात्मा कविर् देव स्वयं ही अपनी महिमा बताते हैं तथा सत्य ज्ञान (स्वस्थ ज्ञान) को स्वयं संदेशवाहक बन कर लाते हैं। (यजुर्वेद अध्याय 29 मंत्र 25 में प्रमाण है।) तब स्वयं ही साधक, प्रभु तथा सतगुरु की भूमिका अदा करते हैं। दोहा :

कबीर पीछे लागा जाऊँ था, लोक वेद के साथ। रस्ते में सतगुरु मिलें, दीपक दे दिया हाथ।।

उपरोक्त अमृतवाणी का भावार्थ है :- यह दास पहले श्री हनुमान जी, श्री खाटू श्याम जी तथा

श्री विष्णु जी अर्थात् श्री कृष्ण जी, श्री रामचन्द्र जी आदि का पक्का पूजारी था। व्रत रखना आदि सर्व शास्त्र विधि रहित साधना कर रहा था। 17 फरवरी सन् 1988 के शुभ दिन तत्वदर्शी परम संत पूज्य गुरुदेव स्वामी रामदेवानन्द जी महाराज ने यह तत्वज्ञान रूपी दीपक प्रदान कर दिया जिसकी रोशनी से पता चला कि गलत मार्ग जा रहा था। सर्व पूजा अपने ही पवित्र शास्त्रों (पवित्र गीता जी व पवित्र चारों वेदों) के विपरित कर रहा था जो लोक वेद के आधार पर ही कर रहा था। इसलिए उपरोक्त अमृतवाणी में प्रभु कबीर साहेब जी हमें समझाने के लिए कह रहे हैं कि तुम लोकवेद के आधार पर शास्त्र विरुद्ध साधना कर रहे हो, अब इस तत्वज्ञान के आधार पर शास्त्र विधि अनुसार पूर्ण संत से उपदेश प्राप्त करके अपनी आत्मा का कल्याण करवाओ। व्यर्थ साधना मत करो।

पूर्ण परमात्मा एक भोले - भाले साधक की भूमिका करके कह रहे हैं कि मैं पहले लोकवेद (शास्त्र विरुद्ध सुना सुनाया ज्ञान) के आधार से साधना कर रहा था, पूर्ण संत (तत्वदर्शी संत) मिले, जिन्होंने वास्तविक पूजा विधि तथा तत्वज्ञान रूपी दीपक प्रदान कर दिया। अब तत्वज्ञान के प्रकाश में मार्ग नहीं भूलेंगे।

गीता अध्याय 15 श्लोक 19 का भावार्थ है कि हे अर्जुन जो ज्ञानी आत्मा तत्वदर्शी सन्त के अभाव से मुझे श्लोक संख्या 18 के आधार से पुरूषोत्तम जानता है वह मुझे ही पूर्ण प्रभु, जानकर भजता है। इसलिए गीता ज्ञान दाता प्रभु ने गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में कहा है कि ये सर्व ज्ञानी आत्मा है तो उद्धार परन्तु तत्वदर्शी सन्त के अभाव से मुझे पूर्ण परमात्मा जानकर भजते हैं। जिस कारण से मेरी अनुत्तम भक्ति गति अर्थात् अश्रेष्ठ गति अर्थात् अश्रेष्ठ मोक्ष साधना में ही लीन हैं।

।। काल का टेढ़ा जाल।।

अध्याय 15 के श्लोक 20 में कहा है कि हे निष्पाप अर्जुन! यह अति रहस्ययुक्त ज्ञान (शास्त्र) मेरे द्वारा कहा गया है। इसको सही तरीके से जो जान लेता है वह तत्वदर्शी सन्त के पास जाकर ज्ञानवान (पूर्ण ज्ञानी) हो जाएगा तथा (काल-जाल से निकल जाएगा) धन्य-धन्य हो जाता है।

अध्याय 15 के श्लोक 20 का भाव है कि निष्पाप अर्जुन! मैंने यह अति गोपनीय (गुप्त से भी गुप्त) ज्ञान कहा है। विवेक शील साधक इसे समझ कर धन्य हो जाएगा। वह गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में वर्णित तत्वदर्शी सन्त की खोज करके धन्य हो जाएगा। पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष) को प्राप्त करने की विधि काल भगवान ने कहीं पर नहीं कही है। जो यज्ञों व ऊँ मन्त्र के जाप का वर्णन है वह केवल स्वर्ग प्राप्ति तथा महास्वर्ग प्राप्ति का है न कि पूर्णब्रह्म व पूर्ण मुक्ति का। इसलिए वह ज्ञानी पुरुष जो यह जान भी लेगा कि कोई पालनकर्त्ता तथा दयालु भगवान तो अन्य ही है। लेकिन पहुँच से बाहर होने के कारण फिर काल साधना करता हुआ काल के जाल में ही रहेगा। उस पूर्ण परमात्मा की भक्ति विधि व पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करने के लिए गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में, फिर अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 में संकेत किया है कि तत्वदर्शी संत की तलाश कर, मैं गीता ज्ञान दाता नहीं जानता।

जैसे किसी ने दस मंजिल ऊँची ईमारत (कोठी) बना रखी है। उसमें चौथी मंजिल में रहता है तथा अपने नौकरों को कहता है कि मेरे पास आओ। तुम्हें मिठ्ठी गोली दूँगा। फिर कहता है कि मेरे से ऊपर एक और बैठा है वह बर्फी देगा और उससे भी ऊपर है जो सर्व भोग देगा तथा उसने अपने नौकरों को जौ तथा, मक्के की रोटी व आटा दे रखा है और पौड़ी (सिढ़ी) दे रखी है केवल दो मंजिल की जो तीसरी मंजिल के निचले हिस्से में समाप्त हो जाती है। अब ज्ञान तो पूरा दिया परंतु

पहुँचने का साधन तीसरी (स्वर्ग-महास्वर्ग) मंजिल तक है। अब आप पाठक जन विशेष रूप से समझें 'काल (ब्रह्म) का ज्ञान व जाल'।

प्रश्न : एक भक्त ने कहा कि फल तो टहनियों से ही मिलता है, जड़ (मूल) से नहीं?

उत्तर : फल तो टहनियों ने ही देने हैं परंतु सेवा (पूजा) जड़ (मूल) की ही करनी पड़ेगी। यदि जड़ में पानी नहीं डालेंगे तो भक्ति रूपी पौधा सूख जाएगा। इसलिए जड़ में खाद-पानी डालने से टहनियाँ अपने आप फल देंगी।

तत्वज्ञान के अभाव से सव्र श्रद्धालुओं ने भक्ति रूपी पौधे को टहनियों की तरफ से जमीन में लगा रखा था। मूल (जड़) ऊपर को कर रखी थी। इसलिए संकेत किया है कि भक्ति रूपी पौधे को सीधा लगाओ। जड़ (मूल) अर्थात् पूर्ण परमात्मा की पूजा करो जिससे खुराक तीनों गुण (रजगुण ब्रह्मा - सतगुण - विष्णु - तमगुण - शिव) रूपी टहनियों तक पहुँचेगी, फिर भक्ति रूपी फल लगेगा। बिना मांगे ही तीनों प्रभु आप को कर्माधार पर सर्व सुविधा प्रदान करेंगे। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 3 श्लोक 11 से 15 तक है कहा है कि परमात्मा सृष्टि उत्पन्न करके सब को यज्ञ (शास्त्रानुसार भक्ति कर्म) करने को कहा था तथा कहा था कि शास्त्रानुकूल साधना पूर्ण परमात्मा की करो जो यज्ञों में प्रतिष्ठित है जिस से ब्रह्म की उत्पति हुई। इस प्रकार इन देवताओं को उन्नत करो। वे उन्नत हुए देवता तुम्हे बिना मांगे ही सर्व सुख प्रदान करेंगे।

दूसरा उदाहरण :- मान लिजिए आपको सरकारी नौकरी चाहिए। आप अपने राजा (मुख्यमंत्री) की पूजा करोगे अर्थात् प्रार्थना-पत्र लिखोगे। फिर आप की प्रार्थना (पूजा) स्वीकार करके मुख्यमंत्री जी आपकी नौकरी किसी विभाग में लगा देगा। फिर भी पूजा - नौकरी (सेवा) मुख्यमंत्री जी की (सरकार की) ही करते रहोगे। परन्तु आप को मुख्यमंत्री जी द्वारा निर्धारित मेहनताना (आय) अधिकारी देंगे। वे भी उसी मालिक के उच्च नौकर होते हैं। यदि आप उन उच्च अधिकारियों की ही पूजा करते रहते तो वे आपको केवल चाय-पानी पिला सकते थे। जिससे आप का निर्वाह नहीं चलता। परन्तु साकार की पूजा (नौकरी)करने पर वे आप के जान-पहचान वाले अधिकारीगण आप को सर्व सुविधा प्रदान करेंगे, इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा (कविर्देव) की पूजा करने से तीनों देवता श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी आपको आपका केवल मेहनताना (किया कर्म) देते रहेंगे। यदि आपने पूर्ण परमात्मा की पूजा (नौकरी) त्याग दी तो सर्व सुविधाऐं बन्द हो जायेंगी। कृप्या देखें अगले पृष्ठ पर संसार रूपी वृक्ष का चित्र।

इसलिए पूर्णब्रह्म सतपुरुष ही पूजा के योग्य है। सर्व यज्ञों में प्रतिष्ठित अर्थात् सर्व धार्मिक कार्यों में उसी को मुख्य रख कर सर्वयज्ञ करनी चाहिये। फिर वही परमात्मा आपको सर्व सुविधाऐं प्रदान अपने अन्य प्रभुओं द्वारा करवाएगा। वह पूर्ण परमात्मा भाग्य से ज्यादा भी दे देता है। परन्तु अन्य प्रभु केवल कर्माधार ही प्रदान कर सकते हैं। जैसे अपने कर्मचारी को मुख्यमंत्री जी निर्धारित मेहनताना (आय) से अतिरिक्त बोनस भी दे देता है। परन्तु अधिकारी केवल निर्धारित तनख्वाह (आय) ही दे सकते हैं। ठीक इसी प्रकार तत्वज्ञान को जानकर पूर्ण संत की तलाश करके उपदेश प्राप्त करके आत्म कल्याण अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करें।

❑❑❑

ऊपर जड़ नीचे शाखा वाला उल्टा लटका हुआ संसार रूपी वृक्ष का चित्र

।।पंद्रहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

अध्याय 15 का श्लोक 1

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।१।

ऊर्ध्वमूलम्, अधःशाखम्, अश्वत्थम्, प्राहुः, अव्ययम्,
छन्दांसि, यस्य, पर्णानि, यः, तम्, वेद, सः, वेदवित्।।1।।

अनुवाद : (ऊर्ध्वमूलम्) ऊपर को पूर्ण परमात्मा आदि पुरुष परमेश्वर रूपी जड़ वाला (अधःशाखम्) नीचे को तीनों गुण अर्थात् रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु व तमगुण शिव रूपी शाखा वाला (अव्ययम्) अविनाशी (अश्वत्थम्) विस्तारित पीपल का वृक्ष है, (यस्य) जिसके (छन्दांसि) जैसे वेद में छन्द है ऐसे संसार रूपी वृक्ष के भी विभाग छोटे-छोटे हिस्से या टहनियाँ व (पर्णानि) पत्ते (प्राहुः) कहे हैं (तम्) उस संसाररूप वृक्षको (यः) जो (वेद) इसे विस्तार से जानता है (सः) वह (वेदवित्) पूर्ण ज्ञानी अर्थात् तत्वदर्शी है। (1)

भावार्थ :- गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में कहा है कि अर्जुन पूर्ण परमात्मा के तत्वज्ञान को जानने वाले तत्वदर्शी संतों के पास जा कर उनसे विनम्रता से पूर्ण परमात्मा का भक्ति मार्ग प्राप्त कर, मैं उस पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग नहीं जानता। इसी अध्याय 15 श्लोक 3 में भी कहा है कि इस संसार रूपी वृक्ष के विस्तार को अर्थात् सृष्टि रचना को मैं यहाँ विचार काल में अर्थात् इस गीता ज्ञान में नहीं बता पाऊँगा क्योंकि मुझे इस के आदि (प्रारम्भ) तथा अन्त (जहाँ तक यह फैला है अर्थात् सर्व ब्रह्मण्डों का विवरण) का ज्ञान नहीं है। तत्वदर्शी सन्त के विषय में इस अध्याय 15 श्लोक 1 में बताया है कि वह तत्वदर्शी संत कैसा होगा जो संसार रूपी वृक्ष का पूर्ण विवरण बता देगा कि मूल तो पूर्ण परमात्मा है, तना अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म है, डार ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरुष है तथा शाखा तीनों गुण (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी)है तथा पात रूप संसार अर्थात् सर्व ब्रह्मण्डों का विवरण बताएगा वह तत्वदर्शी संत है।

अध्याय 15 का श्लोक 2

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ।२।

अधः, च, ऊर्ध्वम्, प्रसृताः, तस्य, शाखाः, गुणप्रवृद्धाः,
विषयप्रवालाः, अधः, च, मूलानि, अनुसन्ततानि, कर्मानुबन्धीनि, मनुष्यलोके।।2।।

अनुवाद : (तस्य) उस वृक्षकी (अधः) नीचे (च) और (ऊर्ध्वम्) ऊपर (गुणप्रवृद्धाः) तीनों गुणों ब्रह्मा-रजगुण, विष्णु-सतगुण, शिव-तमगुण रूपी (प्रसृता) फैली हुई (विषयप्रवालाः) विकार- काम क्रोध, मोह, लोभ अहंकार रूपी कोपल (शाखाः) डाली ब्रह्मा, विष्णु, शिव (कर्मानुबन्धीनि) जीवको कर्मोमें बाँधने की (मूलानि) जड़ें मुख्य कारण हैं (च) तथा (मनुष्यलोके) मनुष्यलोक - स्वर्ग,-नरक

लोक पृथ्वी लोक में (अधः) नीचे - नरक, चौरासी लाख जूनियों में ऊपर स्वर्ग लोक आदि में (अनुसन्ततानि) व्यवस्थित किए हुए हैं। (2)

अध्याय 15 का श्लोक 3

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा। ३।

न, रूपम्, अस्य, इह, तथा, उपलभ्यते, न, अन्तः, न, च, आदिः, न, च,
सम्प्रतिष्ठा, अश्वत्थम्, एनम्, सुविरूढमूलम्, असङ्गशस्त्रेण, दृढेन, छित्वा।।3।।

अनुवाद : (अस्य) इस रचना का (न) न (आदिः) शुरूवात (च) तथा (न) न (अन्तः) अन्त है (न) न (तथा) वैसा (रूपम्) स्वरूप (उपलभ्यते) पाया जाता है (च) तथा (इह) यहाँ विचार काल में अर्थात् मेरे द्वारा दिया जा रहा गीता ज्ञान में पूर्ण जानकारी मुझे भी (न) नहीं है (सम्प्रतिष्ठा) क्योंकि सर्वब्रह्मण्डों की रचना की अच्छी तरह स्थिति का मुझे भी ज्ञान नहीं है (एनम्) इस (सुविरूढमूलम्) अच्छी तरह स्थाई स्थिति वाला (अश्वत्थम्) मजबूत स्वरूपवाले (असङ्गशस्त्रेण) निर्लेप तत्वज्ञान रूपी (दृढेन्) दृढ़ शस्त्र से अर्थात् निर्मल तत्वज्ञान के द्वारा (छित्वा) काटकर अर्थात् निरंजन की भक्ति को क्षणिक जानकर। (3)

अध्याय 15 का श्लोक 4

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं-
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी। ४।

ततः, पदम्, तत्, परिमार्गितव्यम्, यस्मिन्, गताः, न, निवर्तन्ति, भूयः,
तम्, एव्, च, आद्यम्, पुरुषम्, प्रपद्ये, यतः, प्रवृत्तिः, प्रसृता, पुराणी।।4।।

अनुवाद : {जब गीता अध्याय 4 श्लोक 34 अध्याय 15 श्लोक 1 में वर्णित तत्वदर्शी संत मिल जाए} (ततः) इसके पश्चात् (तत्) उस परमेश्वर के (पदम्) परम पद अर्थात् सतलोक को (परिमार्गितव्यम्) भलीभाँति खोजना चाहिए (यस्मिन्) जिसमें (गताः) गये हुए साधक (भूयः) फिर (न, निवर्तन्ति) लौटकर संसारमें नहीं आते (च) और (यतः) जिस परम अक्षर ब्रह्म से (पुराणी) आदि (प्रवृत्तिः) रचना-सृष्टि (प्रसृता) उत्पन्न हुई है (तम्) उस (आद्यम्)सनातन (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा की (एव) ही (प्रपद्ये) मैं शरण में हूँ। पूर्ण निश्चय के साथ उसी परमात्मा का भजन करना चाहिए। (4)

अध्याय 15 का श्लोक 5

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा-
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्। ५।

निर्मानमोहाः, जितसंगदोषाः, अध्यात्मनित्याः, विनिवृत्तकामाः,
द्वन्द्वैः, विमुक्ताः, सुखदुःखसञ्ज्ञैः, गच्छन्ति, अमूढाः, पदम्, अव्ययम्, तत्।। 5।।

अनुवाद : (निर्मानमोहाः) जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है (जितसंगदोषाः) आसक्तता नष्ट हो गई (अध्यात्मनित्याः) हर समय पूर्ण परमात्मा में व्यस्त रहते हैं (विनिवृत्तकामाः) कामनाओं से रहित (सुखदुःखसजैः) सुख-दुःख रूपी (द्वन्द्वैः) अधंकारसे (विमुक्ताः) अच्छी तरह रहित (अमूढाः) विद्वान (तत्) उस (अव्ययम्) अविनाशी (पदम्) सतलोक स्थान को (गच्छन्ति) जाते हैं। (5)

अध्याय 15 का श्लोक 6

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।६।

न, तत्, भासयते, सूर्यः, न, शशांकः, न, पावकः,
यत्, गत्वा, न, निवर्तन्ते, तत्, धाम, परमम्, मम्।।6।।

अनुवाद : (यत्) जहाँ (गत्वा) जाकर (न,निवर्तन्ते) लौटकर संसारमें नहीं आते (तत्) उस स्थान को (न) न (सूर्यः) सूर्य (भासयते) प्रकाशित कर सकता है (न) न (शशांक) चन्द्रमा और (न) न (पावकः) अग्नि ही (तत् धाम) वह सतलोक (परमम् मम्) मेरे लोक से श्रेष्ठ है। गीता जी के अन्य अनुवाद कर्ताओं ने लिखा है कि ''वह मेरा परम धाम है'' यदि यह भी माने तो यह गीता बोलने वाला ब्रह्म सत्यलोक अर्थात् परम धाम से निष्कासित है, इसलिए कहा है कि मेरा परमधाम भी वही है तथा मेरे लोक से श्रेष्ठ है, जहाँ जाने के पश्चात् फिर जन्म-मृत्यु में नहीं आते। इसीलिए अध्याय 15 श्लोक 4 में कहा है कि उसी आदि पुरुष परमात्मा की मैं शरण हूँ। (6)

अध्याय 15 का श्लोक 7

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।७।

मम, एव, अंशः, जीवलोके, जीवभूतः, सनातनः,
मनःषष्ठानि, इन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि, कर्षति।।7।।

अनुवाद : (जीवलोके) मृतलोक में (सनातनः) आदि परमात्मा (अंशः) अंश (जीवभूतः) जीवात्मा (एव) ही (प्रकृतिस्थानि) प्रकृतिमें स्थित (मम) मेरे (मनः) काल का दूसरा स्वरूप मन है इस मन व (इन्द्रियाणि) पाँच इन्द्रियों (षष्ठानि) सहित इन छःओं द्वारा (कर्षति) आकर्षित करके सताई जाती है अर्थात् कृषित की जाती है। (7)

अध्याय 15 का श्लोक 8

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्।८।

शरीरम्, यत्, अवाप्नोति, यत्, च, अपि, उत्क्रामति, ईश्वरः,
गृहीत्वा, एतानि, संयाति, वायुः, गन्धान्, इव, आशयात्।।8।।

अनुवाद : (वायुः) हवा (गन्धान्) गन्धको (आशयात्) ले जाती है क्योंकि गंध की वायु मालिक है (इव) इसी प्रकार (ईश्वरः) सर्व शक्तिमान प्रभु (अपि) भी इस जीवात्मा को (एतानि) इन पाँच इन्द्रियों व मन सहित सुक्ष्म शरीर (गृहीत्वा) ग्रहण करके जीवात्मा (यत्) जिस पुराने शरीरको (उत्क्रामति) त्याग कर (च) और (यत्) जिस नए (शरीरम्) शरीरको (अवाप्नोति) प्राप्त होता है

उसमें संस्कारवश (संयाति) ले जाता है। गीता अध्याय 18 श्लोक 61 में भी प्रमाण है। (8)

अध्याय 15 का श्लोक 9

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते। ९ ।

श्रोत्रम्, चक्षुः, स्पर्शनम्, च, रसनम्, घ्राणम्, एव, च,
अधिष्ठाय, मनः, च, अयम्, विषयान्, उपसेवते।।9।।

अनुवाद : (अयम्) यह परमात्मा - अंश जीव आत्मा (श्रोत्रम्) कान (चक्षुः) आँख (च) और (स्पर्शनम्) त्वचा (च) और (रसनम्) रसना (घ्राणम्) नाक (च) और (मनः) मनके (अधिष्ठाय) माध्यम से (एव) ही (विषयान्) विषयों अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि का (उपसेवते) सेवन करता है। फिर उस का कर्म भोग जीवात्मा को ही भोगना पड़ता है। (9)

अध्याय 15 का श्लोक 10

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः। १०।

उत्क्रामन्तम्, स्थितम्, वा, अपि, भुजानम्, वा, गुणान्वितम्,
विमूढाः, न, अनुपश्यन्ति, पश्यन्ति, ज्ञानचक्षुषः।।10।।

अनुवाद : (विमूढाः) अज्ञानीजन (उत्क्रामन्तम्) अन्त समय में शरीर त्याग कर जाते हुए अर्थात् शरीर से निकल कर जाते हुए (वा) अथवा (स्थितम्) शरीरमें स्थित (वा) अथवा (भुजानम्) भोगते हुए (गुणान्वितम्) इन गुणों वाले आत्मा से अभेद रूप में रहने वाले परमात्मा को (अपि) भी (न,अनुपश्यन्ति) नहीं देखते अर्थात् नहीं जानते (ज्ञानचक्षुषः) ज्ञानरूप नेत्रोंवाले अर्थात् पूर्ण ज्ञानी (पश्यन्ति) जानते हैं। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 2 श्लोक 12 से 23 तक भी है। (10)

अध्याय 15 का श्लोक 11

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः। ११।

यतन्तः, योगिनः, च, एनम्, पश्यन्ति, आत्मनि, अवस्थितम्,
यतन्तः, अपि, अकृतात्मानः, न, एनम्, पश्यन्ति, अचेतसः।।11।।

अनुवाद : (यतन्तः) यत्न करनेवाले (योगिनः) योगीजन (आत्मनि) अपने हृदय में (अवस्थितम्) स्थित (एनम्) इस परमात्माको जो आत्मा के साथ अभेद रूप से रहता है जैसे सूर्य का ताप अपना निर्गुण प्रभाव निरन्तर बनाए रहता है को (पश्यन्ति) देखता है (च) और (अकृतात्मानः) जिन्होंने अपने अन्तःकरणको शुद्ध नहीं किया अर्थात् शास्त्र विधि अनुसार भक्ति कम्र न करने वाले (अचेतसः) अज्ञानीजन तो (यतन्तः) यत्न करते रहनेपर (अपि) भी (एनम्) इसको (न, पश्यन्ति) नहीं देखते। (11)

विशेष :- श्लोक 12 से 15 तक पवित्र गीता बोलने वाला ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरुष अपनी स्थिति बता रहा है कि मेरे अन्तर्गत अर्थात् इक्कीस ब्रह्मण्डों में सर्व प्राणियों का आधार हूँ। इन ब्रह्मण्डों में जितने भी प्रकाश स्रोत हैं उन्हें मेरे ही जान। मैं ही वेदों को बोलने वाला ब्रह्म हूँ। वेदों व वेदान्त का कर्त्ता मैं ही हूँ। चारों वेदों को मैं ही जानता हूँ तथा चारों वेदों में मेरी ही भक्ति विधि का वर्णन है। विचार करें - जैसे उलटा लटका हुआ संसार रूपी वृक्ष है। इसकी मूल तो आदि पुरुष परमेश्वर

अर्थात् पूणब्रह्म है तथा तना अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म है, डार क्षर पुरुष अर्थात् यह गीता व वेदों को बोलने वाला ब्रह्म (काल) है। तीनों गुण रूप(रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिवजी) शाखाऐं हैं तथा पत्ते रूप अन्य प्राणी हैं, पेड़ को आहार मूल (जड़) से प्राप्त होता है। फिर वह आहार तना में जाता है, तना से डार में तथा डार से उन शाखाओं में जाता है जो उस डार पर आधारित हैं। ऐसे ही शाखाओं से पत्तों तक आहार जाता है, परन्तु वास्तव में सर्व का पालन कर्त्ता तथा वास्तव में अविनाशी परमेश्वर परमात्मा भी इन दोनों (क्षर पुरुष तथा अक्षर पुरुष) से अन्य परम अक्षर ब्रह्म है जो गीता अध्याय 8 श्लोक 1 तथा 3 में वर्णन है तथा विशेष वर्णन इन निम्न श्लोक 16,17 में व इसी अध्याय 15 के ही 1 से 4 तक में है। इसी अध्याय 15 के श्लोक 15 में कहा है कि मैं प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ। यह काल महाशिव रूप में हृदय कमल में दिखाई देता है। गीता अध्याय 13 श्लोक 17 में कहा है वह पूर्ण परमात्मा सर्व प्राणियों के हृदय में विशेष रूप से स्थित है तथा अध्याय 18 श्लोक 61 में भी यही प्रमाण है। इस प्रकार इस मानव शरीर वह ब्रह्म तथा पूर्ण परमात्मा व ब्रह्मा विष्णु महेश का भी इसी शरीर में दर्शन होता है। परन्तु सर्व परमात्मा दूरस्थ होकर शरीर में अलग-2 स्थानों पर दिखाई देते है।

अध्याय 15 का श्लोक 12

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्। १२।

यत्, आदित्यगतम्, तेजः, जगत्, भासयते, अखिलम्,
यत्, चन्द्रमसि, यत्, च, अग्नौ, तत्, तेजः, विद्धि, मामकम्।।12।।

अनुवाद : (आदित्यगतम्) सूर्यमें स्थित (यत्) जो (तेजः) तेज (अखिलम्) सम्पूर्ण (जगत्) जगत्को (भासयते) प्रकाशित करता है (च) तथा (यत्) जो तेज (चन्द्रमसि) चन्द्रमामें है और (यत्) जो (अग्नौ) अग्निमें है (तत्) उसको तू (मामकम्) मेरा ही (तेजः) तेज (विद्धि) जान। (12)

अध्याय 15 का श्लोक 13

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः। १३।

गाम्, आविश्य, च, भूतानि, धारयामि, अहम्, ओजसा,
पुष्णामि, च, ओषधीः, सर्वाः, सोमः, भूत्वा, रसात्मकः।।13।।

अनुवाद : (च) और (अहम्) मैं ही (गाम्) पृथ्वीमें (आविश्य) प्रवेश करके (ओजसा) शक्तिसे (भूतानि) मेरे अन्तर्गत प्राणियों को (धारयामि) धारण करता हूँ (च) और (रसात्मकः) रसस्वरूप अर्थात् अमृतमय (सोमः) चन्द्रमा (भूत्वा) होकर (सर्वाः) सम्पूर्ण (ओषधीः) ओषधियोंको अर्थात् वनस्पतियोंको (पुष्णामि) पुष्ट करताहूँ। (13)

अध्याय 15 का श्लोक 14

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्। १४।

अहम्, वैश्वानरः, भूत्वा, प्राणिनाम्, देहम्, आश्रितः,
प्राणापानसमायुक्तः, पचामि, अन्नम्, चतुर्विधम्।।14।।

अनुवाद : (अहम्) मैं ही (प्राणिनाम्) मेरे अन्तर्गत प्राणियोंके (देहम्) शरीरमें (आश्रितः) शरण

रहनेवाला (प्राणापानसमायुक्तः) प्राण और अपानसे संयुक्त (वैश्वानरः) जठराग्नि (भूत्वा)होकर (चतुर्विधम्)चार प्रकारके (अन्नम्)अन्नको (पचामि)पचाता हूँ। (14)

अध्याय 15 का श्लोक 15

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो-
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो-
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।१५।

सर्वस्य, च, अहम्, हृदि, सन्निविष्टः, मत्तः, स्मृतिः, ज्ञानम्, अपोहनम्,
च, वेदैः, च, सर्वैः, अहम्, एव, वेद्यः, वेदान्तकृत्, वेदवित्, एव, च, अहम्।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (सर्वस्य) मेरे इक्कीस ब्रह्मण्डों के सब प्राणियोंके (हृदि) हृदयमें (मत्तः) शास्त्रानुकूल विचार (सन्निविष्टः) स्थित करता हूँ (च) और (अहम्) मैं (एव) ही (स्मृतिः) स्मृति (ज्ञानम्) ज्ञान (च) और (अपोहनम्) अपोहन-संशय निवारण (च) और (वेदान्तकृत्) वेदान्तका कर्त्ता (च) और (वेदवित्) वेदोंको जाननेवाला भी (अहम्) मैं (एव) ही (सर्वैः) सब (वेदैः) वेदोंद्वारा (वेद्यः) जाननेके योग्य हूँ। (15)

अध्याय 15 का श्लोक 16

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।१६।

द्वौ, इमौ, पुरुषौ, लोके, क्षरः, च, अक्षरः, एव, च,
क्षरः, सर्वाणि, भूतानि, कूटस्थः, अक्षरः, उच्यते।।16।।

अनुवाद : (लोके) इस संसारमें (द्वौ) दो प्रकारके (पुरुषौ) भगवान हैं (क्षरः) नाशवान् (च) और (अक्षरः) अविनाशी (एव) इसी प्रकार (इमौ) इन दोनों लोकों में (सर्वाणि) सम्पूर्ण (भूतानि) भूतप्राणियोंके शरीर तो (क्षरः) नाशवान् (च) और (कूटस्थः) जीवात्मा (अक्षरः) अविनाशी (उच्यते) कहा जाता है। (16)

अध्याय 15 का श्लोक 17

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।१७।

उत्तमः, पुरुषः, तु, अन्यः, परमात्मा, इति, उदाहृतः,
यः, लोकत्रयम् आविश्य, बिभर्ति, अव्ययः, ईश्वरः।।17।।

अनुवाद : (उत्तमः) उत्तम (पुरुषः) भगवान (तु) तो उपरोक्त दोनों प्रभुओं क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरुष से (अन्यः) अन्य ही है (यः) जो (लोकत्रयम्) तीनों लोकोंमें (आविश्य) प्रवेश करके (बिभर्ति) सबका धारण पोषण करता है एवं (अव्ययः) अविनाशी (ईश्वरः) परमेश्वर (परमात्मा) परमात्मा (इति) इस प्रकार (उदाहृतः) कहा गया है। यह प्रमाण गीता अध्याय 13 श्लोक 22 में भी है। (17)

अध्याय 15 का श्लोक 18

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।१८।

यस्मात्, क्षरम्, अतीतः, अहम्, अक्षरात्, अपि, च, उत्तमः,
अतः, अस्मि, लोके, वेदे, च, प्रथितः, पुरुषोत्तमः।।18।।

अनुवाद : (यस्मात्) क्योंकि (अहम्) मैं (क्षरम्) नाशवान् स्थूल शरीर से तो सर्वथा (अतीतः) श्रेष्ठ हूँ (च) और (अक्षरात्) अविनाशी जीवात्मासे (अपि) भी (उत्तमः) उत्तम हूँ (च) और (अतः) इसलिये (लोके वेदे)लोक वेद में अर्थात् कहे सुने ज्ञान के आधार से वेदमें (पुरुषोत्तमः) श्रेष्ठ भगवान(प्रथितः) प्रसिद्ध (अस्मि) हूँ पवित्र गीता बोलने वाला ब्रह्म-क्षर पुरुष कह रहा है कि मैं तो लोक वेद में अर्थात् सुने-सुनाए ज्ञान के आधार पर केवल मेरे इक्कीस ब्रह्मण्डों में ही श्रेष्ठ प्रभु प्रसिद्ध हूँ। वास्तव में पूर्ण परमात्मा तो कोई और ही है। जिसका विवरण श्लोक 17 में पूर्ण रूप से दिया है। (18)

कबीर परमात्मा ने उदाहरणार्थ कहा है :--

पीछे लागा जाऊं था लोक वेद के साथ, रस्ते में सतगुरू मिले दीपक दीन्हा हाथ।

भावार्थ है :-- कबीर प्रभु ने कहा है कि जब तक साधक को पूर्ण सन्त नहीं मिलता तब तक लोक वेद अर्थात् कहे सुने ज्ञान के आधार से साधना करता है उस आधार से कोई विष्णु जी को पूर्ण प्रभु परमात्मा कहता है कि क्षर पुरूष अर्थात् ब्रह्म को पूर्ण ब्रह्म कहता है। परन्तु तत्वज्ञान से पता चलता है कि पूर्ण परमात्मा तो कबीर जी है।

अध्याय 15 का श्लोक 19

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत।१९।

यः, माम्, एवम्, असम्मूढः, जानाति, पुरुषोत्तमम्,
सः, सर्ववित्, भजति, माम्, सर्वभावेन, भारत।।19।।

अनुवाद : (भारत) हे भारत! (यः) जो (असम्मूढः) ज्ञानी पुरुष (माम्) मुझको (एवम्) इस प्रकार तत्वदर्शी संत के अभाव से (पुरुषोत्तमम्) पुरुषोत्तम (जानाति) जानता है (सः) वह (सर्वभावेन) सब प्रकारसे (माम्) मुझकोही (सर्ववित्) सर्वस्वा जानकर (भजति) भजता है। (19)

अध्याय 15 का श्लोक 20

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत।२०।

इति, गुह्यतमम्, शास्त्रम्, इदम्, उक्तम्, मया, अनघ,
एतत्, बुद्ध्वा, बुद्धिमान्, स्यात्, कृतकृत्यः, च, भारत।।20।।

अनुवाद : (अनघ) हे निष्पाप (भारत) अर्जुन! (इति) इस प्रकार (इदम्) यह (गुह्यतमम्) अति रहस्ययुक्त गोपनीय (शास्त्रम्) शास्त्र (मया) मेरे द्वारा (उक्तम्) कहा गया (च) और (एतत्) इसको (बुद्ध्वा) तत्वसे जानकर (बुद्धिमान्) ज्ञानवान् (कृतकृत्यः) कृतार्थ (स्यात्) हो जाता है अर्थात् पूर्ण संत जो तत्वदर्शी संत हो उसकी तलाश करके उपदेश प्राप्त करके काल जाल से निकल जाता है। (20)

(इति अध्याय पन्द्रहवाँ)

❑❑❑

❁ सोलहवां अध्याय ❁

।। श्री मद्भगवत् गीता अध्याय 16 का सारांश।।

।। सुर व असुर स्वभाव के व्यक्तियों का वर्णन।।

विशेष :- श्लोक नं. 1 से 3 तक उन पुण्यात्माओं के लक्षण वर्णित हैं जो पिछले जन्मों में वेदों अनुसार अर्थात् शास्त्र अनुकूल ब्रह्म साधना ओ३म् नाम से किया करते थे या पूर्ण परमात्मा की भक्ति तत्वदर्शी संत से प्राप्त करके करते थे जो पार नहीं हो सके,जब कभी मानव जन्म प्राप्त होता है तो वे निम्न लक्षणों वाले होते हैं।

गीता अध्याय 16 के श्लोक 1 से 3 तक में भगवान ब्रह्म (काल) दैवी स्वभाव (उदार आत्माओं) का वर्णन करते हैं वे निर्भय, निर्वैरी, धार्मिक अनुष्ठान करने वाले मृदुभाषी, किसी की निन्दा नहीं करते, कामी (सैक्सी) क्रोधी, लोभी, लालची, अहंकारी नहीं होते। वे किसी से भी अपना सम्मान नहीं करवाते। वे लाज (शर्म) वाले होते हैं। ये पिछले जन्मों से भक्ति करते हुए आ रहे हैं तभी उनके स्वभाव देव पुरुषों अर्थात् संतों जैसे होते हैं।

गीता अध्याय 16 के श्लोक 4 में कहा है कि जिन व्यक्तियों में पाखण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोरता, अज्ञान है वे राक्षस वृति (स्वभाव) के हैं जो इन राक्षसी वृति को साथ लिए हुए उत्पन्न हुए हैं अर्थात् इन आत्माओं को पिछले जन्म में संतों का संग नहीं मिला। जो शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण करते रहे अर्थात् आन उपासना (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव की तथा भूत-पितर, देवी व भैरवों आदि की) करते रहे। जब कभी उन्हें मानव शरीर प्राप्त होता है तो भी साधना उसी पूर्व स्वभाववश ही करते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप वे उच्च विचारों (मत) वाले नहीं हुए। अध्याय 16 के श्लोक 5 में कहा है कि जो व्यक्ति संत स्वभाव वाले हैं वे भक्ति करके मुक्ति प्राप्ति के लिए जन्में हैं। यदि पूर्ण संत गुरु मिल गया तो मुक्ति है यदि पूरा गुरु (सतनाम व सारनाम देने वाला) नहीं मिला तो गलत साधना से जीवन व्यर्थ चला जाएगा , और जो राक्षसी स्वभाव के व्यक्ति हैं वे भक्ति नहीं करते, यदि भक्ति करते भी हैं तो शास्त्र विधि रहित व पाखण्ड युक्त लोकवेद अनुसार, साथ में विकार (तम्बाखु सेवन, मांस, मदिरा सेवन) भी करते रहते हैं, जो विकार नहीं करते तो भी स्वभाव वश आन-उपासना पर ही आरूढ़ रहते हैं। कोई समझाने की कोशिश करता है तो नाराज हो जाते हैं। वे अशुभ कर्मों के बन्धन में बंध जाते हैं अर्थात् चौरासी लाख जूनियों के बन्धन में जकड़े जाते हैं। अर्जुन आप (दैवी) साधु स्वभाव के साथ उत्पन्न हुए हो। इसलिए चिंता मत कर।

गीता अध्याय 16 के श्लोक 6 में कहा है कि इस संसार में दो प्रकार के व्यक्तियों का समुह है। एक संत स्वभाव के दूसरे राक्षस स्वभाव के। साधु स्वभाव वालों के लक्षण तो ऊपर (1,2,3 श्लोकों में) विस्तार से बताए हैं। अब राक्षसी स्वभाव वाले व्यक्तियों के लक्षण सुन। गीता अध्याय 16 के श्लोक 7 में कहा है कि राक्षस स्वभाव के व्यक्ति प्रवृति व निवृति को भी नहीं जानते। उनमें न तो शुद्धि है, न आचरण ठीक है,सच्चाई भी नहीं जानते हैं। गीता अध्याय 16 के श्लोक 8 में कहा है कि वे राक्षस स्वभाव वाले कहा करते हैं कि संसार निराधार है। असत्य तथा बिना भगवान के है अपने आप (नर-मादा के संयोग से) उत्पन्न है। केवल काम (सैक्स) ही इसका कारण है। गीता अध्याय 16 के श्लोक 9 राक्षस वृति के व्यक्ति मिथ्या ज्ञान का अनुसरण करके ये नष्ट आत्मा (गिरी हुई आत्मा)

मंद बुद्धि हैं। वे अपकार (बुरा) करने वाले क्रूरकर्मी (भयंकर कर्म करने वाले) जगत के नाश के लिए ही उत्पन्न होते हैं।

गीता अध्याय 16 का श्लोक 10 - राक्षस वृति के व्यक्ति पाखण्ड, मान, मद्य युक्त, मुश्किल से पूर्ण होने वाली इच्छाओं का आश्रय लेकर मोह (अज्ञान) वश मिथ्या सिद्धांतों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणों को धारण किए हुए घूमा करते हैं। गीता अध्याय 16 के श्लोक 11 में कहा है कि उन राक्षस स्वभाव के व्यक्तियों का मरने के बाद भी यह स्वभाव समाप्त नहीं होता। असंख्य चिंताओं के आधारित, विषय भोगों में तत्पर रहने वाले इसी को सुख मान कर निश्चय करने वाले होते हैं। गीता अध्याय 16 के श्लोक 12 में कहा है कि वे राक्षस स्वभाव वाले चाहे वे संत कहलाते हैं, चाहे उनके उपासक या स्वयं ही शास्त्र विधि रहित साधना करने वाले व्यक्ति आशाओं की सैकड़ों फांसियों से बन्धे हुए काम-क्रोध के आश्रित हो कर विषय भोगों के लिए अन्याय पूर्वक धन इक्कट्ठा करने की कोशिश करते हैं तथा भक्ति भी शास्त्र विधि रहित ही करते हैं।

उदाहरणः-- एक समय यह दास (संत रामपाल दास) गुजराज प्रान्त के शहर अहमदाबाद में सत्संग कर रहा था। वहाँ एक व्यक्ति ने सत्संग सुना उस के पश्चात् मुझ दास से दिक्षा प्राप्त की उसने बताया कि यहाँ एक सुप्रसिद्ध सन्त जी का आश्रम है। उस सन्त का शिष्य मेरा रिश्तेदार बना। उस रिश्तेदार को सन्त जी ने कई प्रकार की दवाईयाँ बनाने को कहा। उसने गुरू जी के आदेश से अच्छे वैद्यों की देख-रेख में दवाईयाँ तैयार की । एक प्रकार की दवाई के पैकेट पर 9 रूपये खर्च आए। सन्त जी ने कहा आप मुझे 5 रूपये प्रति पैकेट दो। मैं इन दवाईयों को परमार्थ में मुफ्त वितरित करूंगा। उस रिश्तेदार ने गुरूदेव की आज्ञा जान कर स्वीकार कर लिया। उस सन्त जी ने उस दवाई का पैकेट 15 रूपये में भक्तों को बेचना शुरू कर दिया। उस दवाई बेचने का कार्य अपने एक निजी सेवक को दिया। जब मेरे रिश्तेदार को पता चला तो सन्त जी के समक्ष विरोध किया तथा कहा तेरे इस अन्याय का भाण्डा फोड़ करूंगा। मेरा तो लाखों का नुक्सान हो गया। आप मालामाल हो रहे हो। उस सन्त ने उसे धमका दिया तथा कहा कि कहीं जुबान खोल दी तो खैर नहीं है। उस के पीछे गुन्डें लगा दिए। हरिद्वार में उस रिश्तेदार पर जानलेवा हमला किया। स्वांस थे बच गया। गीता अध्याय 16 के श्लोक 13 का भाव है कि राक्षस स्वभाव वाले कहा करते हैं कि मैंने आज ज्यादा धन प्राप्त किया है। मैं ये कर दूंगा, वह प्राप्त कर लूंगा, मेरे पास इतना धन है, फिर भविष्य में इतना और हो जाएगा। अध्याय 16 के श्लोक 14 का अर्थ है कि वे राक्षस वृति के व्यक्ति कहा करते हैं कि वे शत्रु मेरे द्वारा मार दिए गए हैं। उन दूसरे शत्रुओं को भी मैं मार डालूंगा। मैं भगवान हूँ- ऐसे करने वाला हूँ, मैं सिद्ध, बलवान व सुखी हूँ। गीता अध्याय 16 का श्लोक 15,16 - वे राक्षस स्वभाव के कहा करते हैं कि मैं बड़ा धनी और बड़े कुटुम्ब वाला हूँ। मेरे समान दूसरा कौन है? यज्ञ करूंगा, दान दूंगा, मौज मनाऊँगा। इस प्रकार अज्ञान से मोहित अनेक प्रकार से चित वाले मोह जाल में फंसे विषयों में विशेष आसक्त (राक्षस लोग) घोर गंदे नरक में गिरते हैं। ***गीता अध्याय 16 श्लोक 17 से 20 तक का भावार्थ है कि जो शास्त्र विधि रहित मनमानी पूजा*** {तीनों गुणों रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिवजी तथा अन्य निम्न देवों की पूजा करना, पितर पूजना (श्राद्ध निकालना) भूत पूजना (पिण्ड भरवाना, तेरहवीं–सतरहवीं करना), फूल (अस्थियाँ) उठा कर क्रिया कर्म करवाने ले जाना आदि शास्त्र विधि रहित पूजा है, प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 18 तथा 20 से 23 तथा गीता अध्याय 9 श्लोक 22 से 25 तक में है} ***करने वाले पापियों, घमण्डियों, एक दूसरे की निंदा करने वालों को जो मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने वालों क्रुरकर्मी नीच व्यक्तियों को मैं (ब्रह्म) बार-बार असुर योनियों में डालता हूँ। वे मूर्ख मुझे न प्राप्त होकर अर्थात् मेरे महास्वर्ग में***

ब्रह्मा
शिव
विष्णु
गीता अध्याय नं. 15
श्लोक नं. 1 से 4 तथा
श्लोक नं. 16 व 17
का आशय
डार ब्रह्म
(क्षर पुरुष)
कबीर-अक्षर पुरुष एक पेड़ है,
निरंजन वाकी डार।
तीनों देवा शाखा हैं,
पात रूप संसार।।
तना
(अक्षर पुरुष परब्रह्म)
कबीर साहेब
(मूल जड़)
शास्त्रानुकूल साधना
अर्थात सीधा बीजा हुआ भक्ति रूपी पौधा

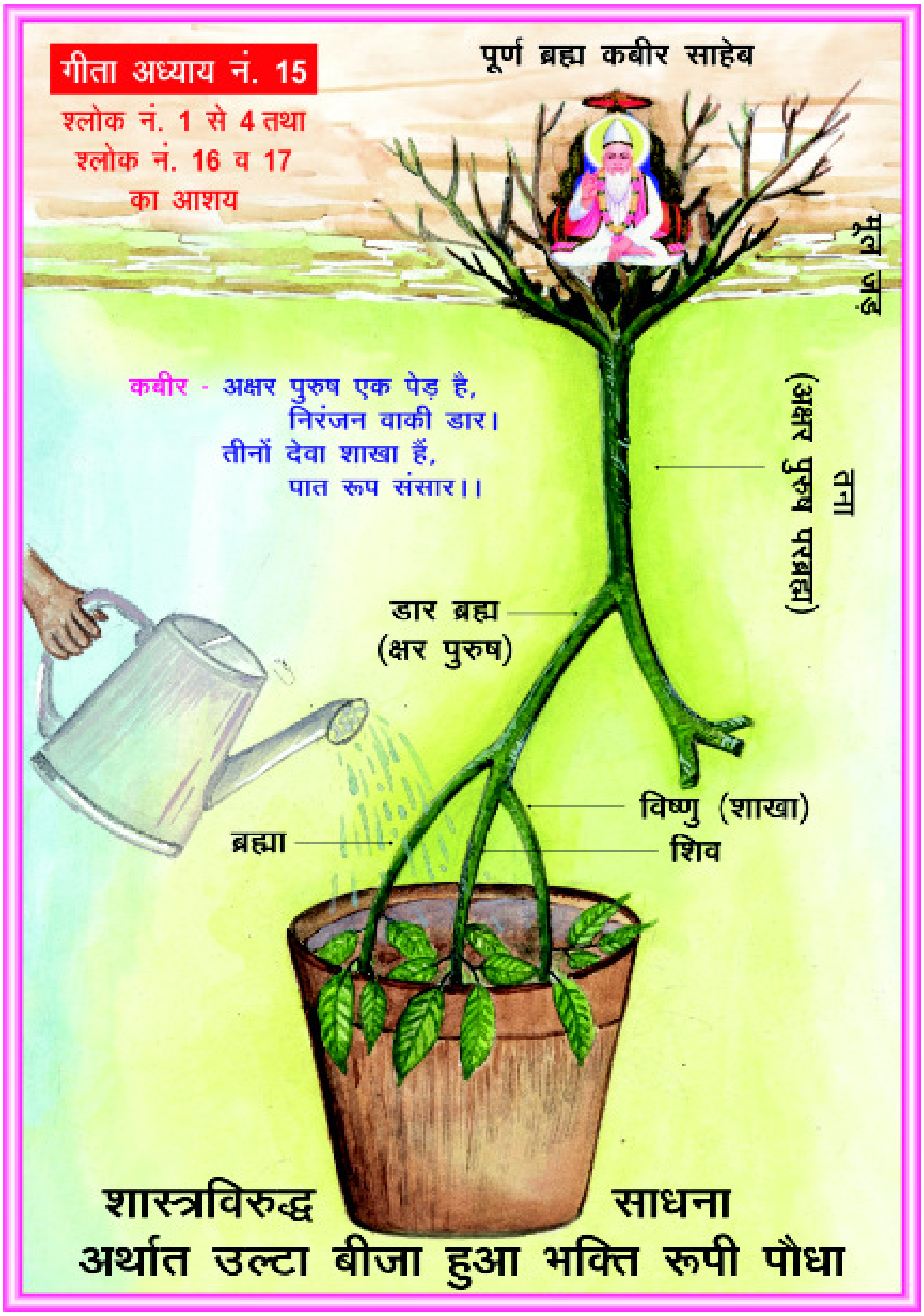
गीता अध्याय नं. 15
श्लोक नं. 1 से 4 तथा
श्लोक नं. 16 व 17
का आशय
पूर्ण ब्रह्म कबीर साहेब
मूल जड़
कबीर - अक्षर पुरुष एक पेड़ है,
निरंजन वाकी डार।
तीनों देवा शाखा हैं,
पात रूप संसार।।
तना
(अक्षर पुरुष परब्रह्म)
डार ब्रह्म
(क्षर पुरुष)
विष्णु (शाखा)
शिव
ब्रह्मा
शास्त्रविरुद्ध साधना
अर्थात उल्टा बीजा हुआ भक्ति रूपी पौधा

(जो ब्रह्मलोक में बना है) न जाकर क्षणिक सुख स्वर्गादि में भोग कर अति नीच गति को प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरक में गिरते हैं। फिर इसी से सम्बन्धित गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में है कि जो व्यक्ति शास्त्र विधि को त्याग कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण (पूजा) करते हैं वह न तो सुख प्राप्त करता है, न कोई कार्य सिद्ध होता है तथा न ही परमगति को प्राप्त होता है। इसलिए अर्जुन जो भक्ति करने तथा न करने योग्य पूजा विधि है, उनके लिए तो शास्त्र ही प्रमाण हैं। अन्य किसी व्यक्ति विशेष या संत,ऋषि विशेष के द्वारा दिए भक्ति मार्ग को स्वीकार नहीं करना चाहिए, जो शास्त्र विरुद्ध हो।

।। विकारी प्राणी भक्ति नहीं कर सकते।।

अध्याय 16 के श्लोक 21,22 का भाव है कि काम,क्रोध, लोभ जीव को नरक के द्वार में डालने वाले हैं। जो इनसे रहित है केवल वही परमगति (पूर्णमुक्ति) को प्राप्त कर सकते हैं अन्यथा नहीं। कबीर साहेब भी प्रमाण देते हैं -

कबीर, कामी क्रोधी लालची, इन से भक्ति न होय। भक्ति करै कोई सूरमा, जाति वर्ण कुल खोय।।

।। शास्त्र विरूद्ध पूजा व्यर्थ (नरक दायक)।।

अध्याय 16 के श्लोक 23,24 में कहा है कि जो व्यक्ति शास्त्र विधि को छोड़कर अपनी मन मर्जी से{(रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिवजी तथा अन्य देवी-देवों की पूजा, मूर्ती पूजा, पितर पूजा, भूत पूजा - श्राद्ध निकालना-पिण्ड भरवाना, धाम पूजा, गोवर्धन की परिक्रमा करना, तीर्थों के चक्कर लगाना, तप करना, पीपल-जाँटी-तुलसी की पूजा, बिना गुरु के नाम जाप, यज्ञ, दान करना, गुड़गांवा वाली देवी, बेरी वाली, कलकते वाली, सींक पाथरी वाली माता की पूजा, समाध की पूजा, गुगा पीर, जोहड़ वाला बाबा, तिथि पूजा (किसी भी प्रकार का व्रत करना), बाबा श्यामजी की पूजा, हनुमान आदि की पूजा शास्त्र विरूद्ध कहलाती हैं} पूजा करते हैं वे न तो सुखी हो सकते, न मुक्ति को प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए अर्जुन शास्त्र विधि से करने योग्य कर्म कर जो तेरे लिए शास्त्र ही प्रमाण हैं कि गलत साधना लाभ के स्थान पर हानिकारक होती है तथा शास्त्रों में वर्णित विधि अनुसार वास्तविक पूजा विधि बताने वाला तत्वदर्शी संत तलाश कर पूर्ण परमात्मा की ही भक्ति करने से पूर्ण शान्ति व सर्व सुख तथा परमगति होगी। (गीता अध्याय 18 श्लोक 62, गीता अध्याय 15 श्लोक 1-4 तथा गीता अध्याय 4 श्लोक 5 अध्याय 2 श्लोक 12 में विशेष प्रमाण है)।

❑❑❑

।।सोलहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ षोडशोऽध्यायः

विशेष :- श्लोक 1 से 3 तक में उन पुण्यात्माओं का विवरण है जो पिछले मानव जन्मों में वेदों अनुसार अर्थात् शास्त्र अनुकूल साधना करते हुए आ रहे हैं, जो अपनी साधना ब्रह्म के ओ३म् मंत्र से ही करते थे, आन उपासना नहीं करते थे। फिर भी तत्वदर्शी संत (जो गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में कहा है) के अभाव से यह भी व्यर्थ है।

अध्याय 16 का श्लोक 1

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।१।

अभयम्, सत्त्वसंशुद्धिः, ज्ञानयोगव्यवस्थितिः,
दानम्, दमः, च, यज्ञः, च, स्वाध्यायः, तपः, आर्जवम्।।1।।

अनुवाद : (अभयम्) निर्भय (सत्वसंशुद्धि) अन्तःकरणकी पूर्ण निर्मलता (ज्ञानयोगव्यवस्थितिः) ज्ञानी (च) और (दानम्) दान (दमः) संयम (यज्ञः) यज्ञ करनेसे (स्वाध्यायः) धार्मिक शास्त्रों पठन पाठन (तपः) भक्ति मार्ग में कष्ट सहना रूपी तप (च) और (आर्जवम्) आधीनता। (1)

अध्याय 16 का श्लोक 2

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।२।

अहिंसा, सत्यम्, अक्रोधः, त्यागः, शान्तिः, अपैशुनम्,
दया, भूतेषु, अलोलुप्त्वम्, मार्दवम्, ह्रीः, अचापलम्।।2।।

अनुवाद : (अहिंसा) मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना (सत्यम्) सत्यवादी (अक्रोधः) अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना (त्यागः) परमात्मा के लिए सिर भी सौंप दे (शान्तिः) अन्तःकरणकी उपरति अर्थात् चितकी चंचलताका अभाव (अपैशुनम्) निन्दादि न करना (भूतेषु) प्राणियोंमें (दया) दया (अलोलुप्त्वम्) निर्विकार (मार्दवम्) कोमलता (ह्रीः) बुरे कर्मों में लज्जा (अचापलम्) चापलूसी रहित। (2)

अध्याय 16 का श्लोक 3

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत। ३ ।

तेजः, क्षमा, धृतिः, शौचम्, अद्रोहः, नातिमानिता,
भवन्ति, सम्पदम्, दैवीम्, अभिजातस्य, भारत।।3।।

अनुवाद : (तेजः) तेज (क्षमा) क्षमा (धृतिः) धैर्य (शौचम्) शुद्धि (अद्रोहः) निर्वैरी और (नातिमानिता) अपनेआप को नहीं पूजवावै (भारत) हे अर्जुन! (दैवीम्,सम्पदम्) भक्ति भावको (अभिजातस्य) लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण (भवन्ति) होते हैं। (3)

विशेष :- श्लोक 4 से 20 तक उन व्यक्तियों के लक्षणों का वर्णन है जो पहले कभी मानव शरीर

में थे तब भी शास्त्र विधि अनुसार साधना नहीं की। फिर अन्य योनियों व नरक आदि में तथा क्षणिक सुख स्वर्ग आदि का भोग कर फिर मानव शरीर में आते हैं तो भी स्वभाववश वैसी ही साधना व विकारों में आरुढ़ रहते हैं।

अध्याय 16 का श्लोक 4

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्। ४ ।

दम्भः, दर्पः, अभिमानः, च, क्रोधः, पारुष्यम्, एव, च,
अज्ञानम्, च, अभिजातस्य, पार्थ, सम्पदम्, आसुरीम्,।।4।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (दम्भः) पाखण्ड (दर्पः) घमण्ड (च) और (अभिमानः) अभिमान (च) तथा (क्रोधः) क्रोध (पारुष्यम्) कठोरता (च) और (अज्ञानम्) अज्ञान (एव) वास्तव में ये सब (आसुरीम्) राक्षसी (सम्पदम्) सम्पदाके (अभिजातस्य) सहित उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं। (4)

अध्याय 16 का श्लोक 5

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव। ५ ।

दैवी, सम्पत्, विमोक्षाय, निबन्धाय, आसुरी, मता,
मा, शुचः, सम्पदम्, दैवीम्, अभिजातः, असि, पाण्डव।।5।।

अनुवाद : (दैवी,सम्पत्) संत लक्षण (विमोक्षाय) मुक्ति के लिये और (आसुरी) आसुरी सम्पदा (निबन्धाय) बाँधनेके लिये (मता) मानी गयी है। इसलिये (पाण्डव) हे अर्जुन! तू (मा, शुचः) शोक मत कर क्योंकि तू (दैवीम्, सम्पदम्) भक्तिभावको (अभिजातः) लेकर उत्पन्न हुआ (असि) है। (5)

अध्याय 16 का श्लोक 6

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे श्रृणु। ६ ।

द्वौ, भूतसर्गौ, लोके, अस्मिन्, दैवः, आसुरः, एव, च,
दैवः, विस्तरशः, प्रोक्तः, आसुरम्, पार्थ, मे, श्रृणु।।6।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (अस्मिन्) इस (लोके) लोकमें (भूतसर्गौ) प्राणियोंकी सृष्टि (द्वौ एव) दो ही प्रकारकी है एक तो (दैवः) संत-स्वभाव वाला (च) और दूसरा (आसुरः) राक्षसी-स्वभाव वाला उनमेंसे (दैवः) संत स्वभाव वालों का (विस्तरशः) विस्तारपूर्वक (प्रोक्तः) विवरण पहले कहा गया अब तू (आसुरम्) राक्षसी-स्वभाव वाले (मे) मुझसे (श्रृणु) सुन। (6)

अध्याय 16 का श्लोक 7

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते। ७ ।

प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम्, च, जनाः, न, विदुः, आसुराः,
न, शौचम्, न, अपि, च, आचारः, न, सत्यम्, तेषु, विद्यते।।7।।

अनुवाद : (आसुराः) आसुर-स्वभाववाले (जनाः) मनुष्य अर्थात् चाहे वे संत कहलाते हैं, चाहे उनके शिष्य या स्वयं शास्त्र विधि रहित साधना करने वाले व्यक्ति (प्रवृत्तिम्) प्रवृति (च) और

(निवृत्तिम्) निवृति इन दोनोंको (च) भी (न) नहीं (विदुः) जानते इसलिये (तेषु) उनमें (न) न तो (शौचम्) अंतर भीतरकी शुद्धि है (न) न (आचारः) श्रेष्ठ आचरण है (च) और (सत्यम्) सच्चाई (अपि) भी (न) नहीं (विद्यते) जानी जाती है। (7)

विशेष :- गीता अध्याय 15 श्लोक 15 तथा अध्याय 9 श्लोक 17 में वेद्यः या वेद्यम् का अर्थ जानना किया है।

अध्याय 16 का श्लोक 8

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्। ८ ।

असत्यम्, अप्रतिष्ठम्, ते, जगत्, आहुः, अनीश्वरम्,
अपरस्परसम्भूतम्, किम्, अन्यत्, कामहैतुकम्।।8।।

अनुवाद : (ते) वे आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य (आहुः) कहा करते हैं कि (जगत्) जगत् (अप्रतिष्ठम्) अवस्थारहित (असत्यम्) सर्वथा असत्य और (अनीश्वरम्) बिना ईश्वरके (अपरस्परसम्भूतम्) अपने-आप केवल नर-मादाके संयोगसे उत्पन्न है (कामहैतुकम्) केवल काम अर्थात् सैक्स ही इसका कारण है (अन्यत्) इसके सिवा और (किम्) क्या है। ऐसी धारणा वाले प्राणी राक्षस स्वभाव के होते हैं। (8)

अध्याय 16 का श्लोक 9

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः। ९ ।

एताम्, दृष्टिम्, अवष्टभ्य, नष्टात्मानः, अल्पबुद्धयः,
प्रभवन्ति, उग्रकर्माणः, क्षयाय, जगतः, अहिताः।।9।।

अनुवाद : (एताम्) इस (दृष्टिम्) अपने दृष्टि कोण से मिथ्या ज्ञानको (अवष्टभ्य) अवलम्बन करके (नष्टात्मानः) नाशात्मा (अल्पबुद्धयः) जिनकी बुद्धि मन्द है वे (अहिताः) सबका अपकार करनेवाले (उग्रकर्माणः) भयंकर कर्म करने वाले क्रूरकर्मी (जगतः) जगत्के (क्षयाय) नाशके लिये ही (प्रभवन्ति) उत्पन्न होते हैं। (9)

अध्याय 16 का श्लोक 10

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।१०।

कामम्, आश्रित्य, दुष्पूरम्, दम्भमानमदान्विताः,
मोहात्, गृहीत्वा, असद्ग्राहान्, प्रवर्तन्ते, अशुचिव्रताः।।10।।

अनुवाद : (दम्भमानमदान्विताः) दम्भ, मान और मदसे युक्त मनुष्य (दुष्पूरम्) किसी प्रकार भी पूर्ण न होनेवाली (कामम्) कामनाओंका (आश्रित्य) आश्रय लेकर (मोहात्) अज्ञानसे (असद्ग्राहान्) मिथ्या शास्त्र विरुद्ध सिद्धान्तोंको (गृहीत्वा) ग्रहण करके और (अशुचिव्रताः)भ्रष्ट आचरणोंको धारण करके संसारमें (प्रवर्तन्ते) विचरते हैं। (10)

अध्याय 16 का श्लोक 11

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः।११।

चिन्ताम्, अपरिमेयाम्, च, प्रलयान्ताम्, उपाश्रिताः,
कामोपभोगपरमाः, एतावत्, इति, निश्चिताः।।11।।

अनुवाद : (प्रलयान्ताम्) मृत्युपर्यन्त रहनेवाली (अपरिमेयाम्) असंख्य (चिन्ताम्) चिन्ताओंका (उपाश्रिताः) आश्रय लेनेवाले (कामोपभोगपरमाः) विषयभोगोंके भोगनेमें तत्पर रहनेवाले (च) और (एतावत्) इतना ही सुख है (इति) इस प्रकार (निश्चिताः) माननेवाले होते हैं। (11)

अध्याय 16 का श्लोक 12

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्।१२।

आशापाशशतैः, बद्धाः, कामक्रोधपरायणाः,
ईहन्ते, कामभोगार्थम्, अन्यायेन, अर्थसचयान्।। 12।।

अनुवाद : (आशापाशशतैः) आशाकी सैकड़ों फाँसियोंसे (बद्धाः) बँधे हुए मनुष्य (कामक्रोधपरायणाः) काम-क्रोधके परायण होकर (कामभोगार्थम्) विषय-भोगोंके लिये (अन्यायेन) अन्यायपूर्वक (अर्थसचयान्) धनादि पदार्थोंको संग्रह करनेकी (ईहन्ते) चेष्टा करते रहते हैं। (12)

अध्याय 16 का श्लोक 13

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्।१३।

इदम्, अद्य, मया, लब्धम्, इमम्, प्राप्स्ये, मनोरथम्,
इदम्, अस्ति, इदम्, अपि, मे, भविष्यति, पुनः, धनम्।।13।।

अनुवाद : (मया) मैंने (अद्य) आज (इदम्) यह (लब्धम्) प्राप्त कर लिया और अब (इमम्) इस (मनोरथम्) मनोरथको (प्राप्स्ये) प्राप्त कर लूँगा। (मे) मेरे पास (इदम्) यह इतना (धनम्) धन (अस्ति) है और (पुनः) फिर (अपि) भी (इदम्) यह (भविष्यति) हो जाऐगा। (13)

अध्याय 16 का श्लोक 14

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी।१४।

असौ, मया, हतः, शत्रुः, हनिष्ये, च, अपरान्, अपि,
ईश्वरः, अहम्, अहम्, भोगी, सिद्धः, अहम्, बलवान्, सुखी।।14।।

अनुवाद : (असौ) वह (शत्रुः) शत्रु (मया) मेरे द्वारा (हतः) मारा गया (च) और उन (अपरान्) दूसरे शत्रुओंको (अपि) भी (अहम्) मैं (हनिष्ये) मार डालूँगा। (अहम्) मैं (ईश्वरः) ईश्वर हूँ (भोगी) ऐश्वर्यको भोगनेवाला हूँ। (अहम्) मैं (सिद्धः) सब सिद्धियोंसे युक्त हूँ और (बलवान्) बलवान् तथा (सुखी) सुखी हूँ। (14)

अध्याय 16 का श्लोक 15.16

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः।१५।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।१६।

आढ्यः, अभिजनवान्, अस्मि, कः, अन्यः, अस्ति, सदृशः, मया,
यक्ष्ये, दास्यामि, मोदिष्ये, इति, अज्ञानविमोहिताः।।15।।
अनेकचितविभ्रान्ताः, मोहजालसमावृताः,
प्रसक्ताः, कामभोगेषु, पतन्ति, नरके, अशुचौ।।16।।

अनुवाद : (आढ्यः) बड़ा धनी और (अभिजनवान्) बड़े कुटुम्बवाला या अधिक शिष्यों वाला (अस्मि) हूँ। (मया) मेरे (सदृशः) समान (अन्यः) दूसरा (कः) कौन (अस्ति) है मैं (यक्ष्ये) यज्ञ करूँगा (दास्यामि) दान दूँगा और (मोदिष्ये) आमोद-प्रमोद करूँगा। (इति) इस प्रकार (अज्ञानविमोहिताः) अज्ञानसे मोहित रहनेवाले तथा (अनेकचितविभ्रान्ताः) अनेक प्रकारसे भ्रमित चितवाले (मोहजालसमावृताः) मोहरूप जालसे समावृत और (कामभोगेषु) विषयभोगोंमें (प्रसक्ताः) अत्यन्त आसक्त आसुरलोग (अशुचौ) महान् अपवित्र (नरके) नरकमें (पतन्ति) गिरते हैं। (15-16)

अध्याय 16 का श्लोक 17

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्।१७।

आत्सम्भाविताः, स्तब्धाः, धनमानमदान्विताः,
यजन्ते, नामयज्ञैः, ते, दम्भेन, अविधिपूर्वकम्।।17।।

अनुवाद : (ते) वे (आत्मसम्भाविताः) अपनेआपको ही श्रेष्ठ माननेवाले (स्तब्धाः) गंदे स्वभाव पर अडिग (धनमानमदान्विताः) धन और मानके मदसे युक्त होकर (नामयज्ञैः) नाममात्रके यज्ञोंद्वारा अर्थात् मनमानी भक्ति द्वारा (दम्भेन) पाखण्डसे (अविधिपूर्वकम्) शास्त्र विधि रहित (यजन्ते) पूजन करते हैं। (17)

अध्याय 16 का श्लोक 18

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।१८।

अहंकारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, च, संश्रिताः,
माम्, आत्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तः, अभ्यसूयकाः।।18।।

अनुवाद : (अहंकारम्) अहंकार (बलम्) बल (दर्पम्) घमण्ड (कामम्) कामना और (क्रोधम्) क्रोधादिके (संश्रिताः) परायण (च) और (अभ्यसूयकाः) दूसरोंकी निन्दा करनेवाले (आत्मपरदेहेषु) प्रत्येक शरीर में परमात्मा आत्मा सहित तथा (माम्) मुझसे (प्रद्विषन्तः) द्वेष करनेवाले होते हैं। (18)

अध्याय 16 का श्लोक 19

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।१९।

तान् अहम्, द्विषतः, क्रूरान्, संसारेषु, नराधमान्,
क्षिपामि, अजस्त्रम्, अशुभान्, आसुरीषु, एव, योनिषु।।19।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (तान्) उन (द्विषतः) द्वेष करनेवाले (अशुभान्) पापाचारी और (क्रूरान्) क्रूरकर्मी (नराधमान्) नराधमोंको (एव) वास्तव में (संसारेषु) संसारमें (अजस्त्रम्) बार-बार (आसुरीषु) आसुरी (योनिषु) योनियोंमें (क्षिपामि) डालता हूँ। (19)

अध्याय 16 का श्लोक 20

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्। २०।

आसुरीम्, योनिम्, आपन्नाः, मूढाः, जन्मनि, जन्मनि,
माम् अप्राप्य, एव, कौन्तेय, ततः, यान्ति, अधमाम्, गतिम्।।20।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (मूढाः) वे मुर्ख (माम्) मुझको (अप्राप्य) न प्राप्त होकर (एव) ही (जन्मनि) जन्म (जन्मनि) जन्ममें (आसुरीम्) आसुरी (योनिम्) योनिको (आपन्नाः) प्राप्त होते हैं फिर (ततः) उससे भी (अधमाम्) अति नीच (गतिम्) गतिको (यान्ति) प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं। (20)

विशेष :- उपरोक्त मंत्र 6 से 20 तक का विवरण गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तथा 20 से 23 तक तथा अध्याय 9 श्लोक 21 से 25 में भी है।

अध्याय 16 का श्लोक 21

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्। २१।

त्रिविधम्, नरकस्य, इदम्, द्वारम्, नाशनम्, आत्मनः,
कामः क्रोधः, तथा, लोभः, तस्मात्, एतत्, त्रयम्, त्यजेत्।।21।।

अनुवाद : (कामः) काम (क्रोधः) क्रोध (तथा) तथा (लोभः) लोभ (इदम्) ये (त्रिविधम्) तीन प्रकारके (नरकस्य) नरकके (द्वारम्) द्वार (आत्मनः) आत्माका (नाशनम्) नाश करनेवाले अर्थात् आत्मघाती हैं। (तस्मात्) अतएव (एतत्) इन (त्रयम्) तीनोंको (त्यजते) त्याग देना चाहिये। (21)

अध्याय 16 का श्लोक 22

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्। २२।

एतैः, विमुक्तः, कौन्तेय, तमोद्वारैः, त्रिभिः, नरः,
आचरति, आत्मनः, श्रेयः, ततः, याति, पराम्, गतिम्।।22।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (एतैः) इन (त्रिभिः) तीनों (तमोद्वारैः) नरकके द्वारोंसे (विमुक्तः) मुक्त (नरः) पुरुष (आत्मनः) आत्मा के (श्रेयः) कल्याणका (आचरति) आचरण करता है (ततः) इससे वह (पराम्) परम (गतिम्) गतिको (याति) जाता है अर्थात् पूर्ण परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। (22)

अध्याय 16 का श्लोक 23

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्। २३।

यः, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, वर्तते, कामकारतः,
न, सः, सिद्धिम्, अवाप्नोति, न, सुखम्, न, पराम्, गतिम्।।23।।

अनुवाद : (यः) जो पुरुष (शास्त्रविधिम्) शास्त्रविधिको (उत्सृज्य) त्यागकर (कामकारतः) अपनी इच्छासे मनमाना (वर्तते) आचरण करता है (सः) वह (न) न (सिद्धिम्) सिद्धिको

(अवाप्नोति) प्राप्त होता है (न) न (पराम्) परम (गतिम्) गतिको और (न) न (सुखम्) सुखको ही। (23)

अध्याय 16 का श्लोक 24

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि। २४।

तस्मात्, शास्त्रम्, प्रमाणम्, ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ,
ज्ञात्वा, शास्त्रविधानोक्तम्, कर्म, कर्तुम्, इह, अर्हसि।।24।।

अनुवाद : (तस्मात्) इससे (ते) तेरे लिये (कार्याकार्यव्यवस्थितौ) कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें (शास्त्रम्) शास्त्र ही (प्रमाणम्) प्रमाण है (इह) इसे (ज्ञात्वा) जानकर (शास्त्रविधानोक्तम्) शास्त्रविधिसे नियत (कर्म) कर्म ही (कर्तुम्) करने (अर्हसि) योग्य है। (24)

(इति अध्याय सोलहवाँ)

❑❑❑

❋ सतरहवां अध्याय ❋

।। सारांश।।

गीता अध्याय 17 के श्लोक 1 में अर्जुन पूछता है कि शास्त्र विपरित श्रद्धा से साधना (पूजन) करने वाले व्यक्ति किस नेष्ठा (वृत्ति) के होते है? सात्विक या राजसी वा तामसी अर्थात् तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिवजी) तथा इनसे भी नीचे के देवी-देवताओं के साधकों के स्वभाव तथा चरित्र कैसे होते हैं?

।। शास्त्र विधि को त्याग कर साधना करने वाले भगवानों को दुःखदाई तथा नरक अधिकारी।।

अध्याय 17 के श्लोक 6 का अनुवाद :-- शरीर में स्थित मुझे तथा प्राणियों के मुखिया (ब्रह्मा, विष्णु, शिव, प्रकृति-आदि माया व गणेश) तथा शरीर में हृदय में स्थित कपड़े में धागे की तरह व्यवस्थित करके रहने वाले पूर्ण परमात्मा को परेशान (कृश) करने वाले अज्ञानियों को राक्षसी स्वभाव वाले ही जान जो मतानुसार (शास्त्र विधि अनुसार) साधना नहीं करते और मनमुखी साधना तथा आचरण करते हैं।

विशेष : मानव शरीर (स्थूल शरीर) में सात कमल हैं। रीढ की हड्डी गुदा के पास समाप्त होती है। उससे दो ऊँगल ऊपर -

1 मूल कमल - इसमें गणेश जी रहते हैं। इस कमल की चार पंखुड़ियाँ हैं। फिर मूल कमल से लगभग दो ऊँगल ऊपर रीड की हड्डी के साथ अन्दर की तरफ

2 स्वाद कमल (चक्र) है जिसमें ब्रह्मा सावित्री रहते हैं। इस कमल की छः पंखुड़ियाँ हैं।

3 स्वाद चक्र से ऊपर नाभि के सामने रीड की हड्डी के साथ नाभि कमल है उसमें भगवान विष्णु व लक्ष्मी रहते हैं। इनकी आठ पंखुड़ियाँ हैं।

4 इससे ऊपर हृदय के पीछे एक हृदय कमल है उसमें भगवान शिव व पार्वती रहते हैं। इस हृदय कमल की 12 पंखुड़ियाँ हैं।

5 इनसे ऊपर कण्ठ कमल है जो कण्ठ के पास पीछे रीढ की हड्डी से ही चिपका हुआ है। इसमें प्रकृति देवी (अष्टंगी माई) रहती है। इस कमल की सोलह पंखुड़ियाँ हैं।

6 इससे ऊपर त्रिकुटी कमल है। इसकी दो पंखुड़ियाँ हैं। (एक सफेद दूसरी काली रंग की।) इसमें पूर्ण परमात्मा रहता है। जैसे सूर्य दूर स्थान पर होते हुए भी प्रत्येक मानव के शरीर पर प्रभाव डालता रहता है, परन्तु दिखाई आँखों से ही देता है, यहाँ पर ऐसा भाव जानना है तथा इसके साथ-साथ आत्मा के साथ अन्तःकरण में भी रहता है। जैसे धागा पूरे कपड़े में समाया हुआ होता है तथा अन्य कसीदाकारी भी होती है जो कुछ हिस्से पर ही होती है।

7 इससे ऊपर जहाँ चोटी रखते हैं उस स्थान पर अन्दर की ओर सहंस्रार कमल है जहाँ ज्योति निरंजन (हजार पंखुड़ियों रूप में प्रकाश रूप में) स्वयं काल (ब्रह्म) रहता है। इस कमल की एक हजार पंखुड़ियाँ हैं। इसीलिए इस श्लोक में कहा है कि जो राक्षस स्वभाव के व्यक्ति शास्त्रानुकूल साधना नहीं करते वे शरीर में रहने वाले मुझे तथा प्राणी प्रमुख ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, आद्या (प्रकृति) तथा पूर्ण परमात्मा जो आत्मा के साथ अभेद रूप से रहता है (जैसे गंध और वायु रहती हैं) को परेशान करते हैं, उन्हें घोर नरक में डालता हूँ।

शरीर (पिण्ड) में कमलों (चक्रों) का चित्र

।। सर्व प्राणी शास्त्र विधि रहित भक्ति भी स्वभाव अनुसार ही करते हैं।।

(गीता अध्याय 17 श्लोक 2 से 20 तक का सारांश)

सर्व प्राणी स्वभाव वश हैं। जिसका अंतःकरण जैसा है उसे वैसी पूजाओं में श्रद्धा होती है। सात्विक वृत्ति के व्यक्ति अन्य देवताओं तथा श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी को पूजते हैं तथा विशेष कर इष्ट रूप में विष्णु जी की पूजा करते हैं, राजस वृत्ति के यक्षों व राक्षसों की व तीनों उपरोक्त प्रभुओं को भी पूजते हैं, परन्तु इष्ट रूप में ब्रह्मा जी की उपासना रजोगुण प्रधान व्यक्ति करते हैं, तामस वृत्ति के भूतों, पित्रों तथा तीनों ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी की भी पूजा करते हैं तथा तमोगुण प्रधान व्यक्तियों का उपास्य देव शिव होता है। जैसे रावण ने भगवान शिव की साधना इष्ट मान कर की जिस से नरक का भागी हुआ और उससे निम्न स्तर की साधना भूतों-पितरों की पूजा करके सीधे नरक चले जाते हैं। जो शास्त्र विधि के विरूद्ध साधना करते हैं वे दुष्ट आत्मा मुझे तथा उस परमात्मा को भी कष्ट देते हैं तथा वे राक्षस वृत्ति के जान। उनको भोजन भी वृत्ति (स्वभाव) वश ही पसंद होता है। सात्विक मनुष्यों को साधारण भोजन दाल, दूध, दही-घी, मक्खन, शहद, मीठे फल आदि पसंद तथा राजसी मनुष्य कड़वे (शराब, पान, हुक्का) खट्टे, ज्यादा नमक वाले, ज्यादा गर्म-रूखे, मुख जलाने वाले (मिर्च) आदि जो रोगों का कारण होते हैं पसंद होता है।

तामसी व्यक्ति गला-सड़ा, रस रहित अपवित्र (मांस-शराब-तम्बाखु आदि) बासी, झूठा आहार पसंद करते हैं।

भक्त सम्मन ने अपने गुरुदेव जी के लिए अपने ईकलौते पुत्र सेऊ की गर्दन काट डाली। यह शास्त्रानुकूल साधक का शरीर सम्बन्धी तप हुआ। जैसे कबीर साहेब सत्य साधना का विवरण दिया करते थे। झूठी साधना (देवी-देवताओं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, माता मसानी, मूर्ति पूजा) को अधूरी तथा मोक्ष बाधक बताते थे। शराब पीना, मांस खाना, तम्बाखु प्रयोग करना महा पाप है। हिन्दु-मुस्लिम एक ही परमात्मा के जीव हैं। मस्जिद व मन्दिर में भगवान नहीं है। भगवान तो पूर्ण संत से नाम लेकर शास्त्रानुकूल साधना करने से शरीर में ही प्राप्त होता है। जैसे गाय, भैंस, भेड़, बकरी, या कोई भी स्तन धारी मादा प्राणी है। उसके शरीर में से ही दूध प्राप्त होता है। बिना बच्चे वाली मादा के शरीर में दूध नहीं होता परंतु जब वह मादा नए दूध होती है अर्थात् गर्भधारण करती है। फिर बच्चे को जन्म देती है। तब दूध प्राप्त होता है। इसी प्रकार जब यह मनुष्य शरीर धारी प्राणी पूर्ण गुरु (तत्वदर्शी संत) से नाम ले लेता है। फिर सुमरण करता है तथा आजीवन गुरु मर्यादा में रहता है तो उसमें भक्ति रूपी बच्चा तैयार होता है। फिर परमात्मा से मिलने वाला लाभ (दूध) प्राप्त होता है। अन्य कहीं पर परमात्मा प्राप्ति नहीं है। वैसे तो परमात्मा की शक्ति निराकार रूप में सर्व व्यापक है। जैसे सूर्य का प्रकाश व ताप दिन के समय सर्व स्थानों पर प्रभाव डालता है, ऐसे ही प्रभु आकार में सत्यलोक में रहते हुए भी घर, खेत, मन्दिर, मस्जिद आदि में भी है। परंतु वह जीव को कोई लाभ नहीं दे रहा है।

भावार्थ है कि सूर्य का प्रकाश व ताप अपने विधान के अनुसार ही लाभ प्रदान करता है। सर्दियों में पूर्ण ताप प्रदान नहीं कर पाता जिस की पूर्ति के लिए आग जलानी पड़ती है या हीटर - वातानुकूल करने वाले (Air conditioner) यन्त्र का प्रयोग अवश्य करना पड़ता है या मोटे व ऊनी वस्त्र धारण करके ताप पूर्ति की जाती है। इसी प्रकार हम सत्यलोक में उस पूर्ण परमात्मा का पूर्ण लाभ प्राप्त कर रहे थे। अब हम उस परमेश्वर से दूर आने से सर्दियों वाले शरद क्षेत्र में आ गए हैं।

उसके कुछ गुण प्राप्त करने के लिए वही साधन अपनाने पड़ेंगे जो हमारी रक्षा कर सकें अर्थात् शास्त्र विधि (उपरोक्त गर्मी पैदा करने वाले वास्तविक साधनों को) त्याग कर अन्य उपाय (शास्त्र विधि रहित) करने का कोई लाभ नहीं है। (प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में)।

जब दुःखी प्राणी संत (परमात्मा प्रकट किए हुए साधक) के पास जाता है। उसके आशीर्वाद से सुखी हो जाता है। वहाँ परमात्मा उस संत में मिला अर्थात् उस पूर्ण संत ने ताप प्रदान करने वाले साधन (शास्त्र विधि अनुसार साधना) प्रदान किए जिससे उसको ईश्वरीय गुणों का लाभ प्राप्त हुआ। क्योंकि परमात्मा के यही गुण होते हैं। किसी धर्म के अन्दर मांस, मदिरा, तम्बाखु सेवन का आदेश नहीं है अर्थात् सख्त मनाही है। जो बकरी काट कर भगवान पूजन करते हैं वे भक्ति नहीं कर रहे बल्कि नरक के अधिकारी बन रहे हैं। इन सच्ची बातों का बुरा मान कर धर्म के झूठे ठेकेदारों कथित मुल्ला, काजी व कथित पंडितों ने कबीर साहेब को बहुत तंग किया। कभी सरसों के उबलते हुए तेल में डाला। कभी खूनी हाथी के आगे डाला आदि-आदि। यह वाणी सम्बन्धी तप कहा जाता है।

अध्याय 17 के श्लोक 21 से 22 तक का भाव है इसमें भगवान तप व यज्ञ कैसे होते हैं? तथा उनके प्रकार व फल बताएँ? क्योंकि यज्ञ, दान, तप का लाभ भी सत साहेब (सत परमात्मा/पूर्णब्रह्म) ही देता है। इसलिए कहा है कि उस परमात्मा (परम अक्षर ब्रह्म) के निमित किया कर्म सत है तथा पूर्ण मुक्ति दाता है। अन्य परमात्माओं (ब्रह्म व परब्रह्म) के निमित कर्म पूर्ण मुक्ति दायक नहीं है। फिर भी ब्रह्म से अधिक सुखदाई परमात्मा पारब्रह्म है परंतु पूर्ण सुखदायक, जन्म-मरण से पूर्ण मुक्त करने वाला भगवान पूर्णब्रह्म ही है। वह साहेब कबीर हैं। इसी को सत साहेब कहते हैं।

।। ऊँ-तत्-सत् का विस्तृत वर्णन ।।

विशेष :- गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में वर्णित तत्वदर्शी संत ही पूर्ण परमात्मा के तत्वज्ञान को सही बताता है, उन्हीं से पूछो, मैं (गीता बोलने वाला प्रभु) नहीं जानता। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 तक भी है। इसीलिए यहाँ गीता अध्याय 17 श्लोक 23 से 28 तक का भाव समझें।

अध्याय 17 के श्लोक 23 से 28 तक में कहा है कि पूर्ण परमात्मा के पाने के ऊँ, तत्, सत् यह तीन नाम हैं। इस तीन नाम के जाप का प्रारम्भ स्वांस द्वारा ओं (ॐ) नाम से किया जाता है। तत्वज्ञान के अभाव से स्वयं निष्कर्ष निकाल कर शास्त्रविधि सहित साधना करने वाले ब्रह्म तक की साधना में प्रयोग मन्त्रों के साथ 'ऊँ' मन्त्र लगाते हैं। जैसे 'ऊँ भागवते वासुदेवाय नमः', 'ऊँ नमो शिवायः' आदि-2। यह जाप (काल-ब्रह्म तक व उनके आश्रित तीनों ब्रह्मा जी, विष्णु जी, शंकर जी से लाभ लेने के लिए) स्वर्ग प्राप्ति तक का है। फिर भी शास्त्र विधि रहित होने से उपरोक्त मंत्र व्यर्थ हैं बेसक इन मंत्रों से कुछ लाभ भी प्राप्त हो।

तत् नाम का तात्पर्य है कि (अक्षर ब्रह्म) परब्रह्म की साधना का सांकेतिक मन्त्र। यह तत् मन्त्र (सोहं) है। वह पूर्ण गुरु से लेकर जपा जाता है। स्वयं या अनाधिकारी से प्राप्त करके जाप करना भी व्यर्थ है। यह सोहं मन्त्र इष्ट की प्राप्ति के लिए विशेष मन्त्र है तथा सत् जाप मन्त्र पूर्ण परमात्मा का है जो सारनाम के साथ जोड़ा जाता है। उससे पूर्ण मुक्ति होती है। सतशब्द अविनाशी का प्रतीक है। प्रत्येक इष्ट की प्राप्ति के लिए भी सोहं शब्द है तथा सतशब्द अविनाशी का प्रतीक है। वह सारनाम है। लेकिन वेदों व शास्त्रों में न तत् नाम है और न ही सत मन्त्र है। केवल ऊँ नाम है।

आदरणीय गरीबदास साहेब जी (साहेब कबीर के शिष्य) संत कहते हैं कि कबीर परमेश्वर ने बताया कि यह सोहं मंत्र मैं ही इस काल लोक में लाया हूँ तथा सतशब्द (सारनाम) गुप्त रहा है, वह केवल अधिकारी को ही दिया जाता है।

गरीब, सोहं शब्द हम जग में लाए। सार शब्द हम गुप्त छुपाए।।

यह सत शब्द (सारशब्द) पूर्ण गुरु ही दे सकता है। अन्य जप, दान, यज्ञ आदि श्रद्धा से व शास्त्रानुकूल किए जाऐं तो उनका जो फल निहीत (कुछ समय स्वर्ग प्राप्ति) है वह मिल जाएगा। यदि ऐसे नहीं किए तो वह फल भी नहीं है। फिर भी जब तक सारनाम (सत्शब्द) नहीं मिला तो ओ३म तथा तत् मंत्र (सांकेतिक) भी व्यर्थ हैं। कुछ साधक केवल 'ऊँ-तत्-सत्' इसी को मूल मन्त्र मान कर बार-2 अभ्यास करते हैं जो व्यर्थ है, बिना श्रद्धा के किया हुआ धार्मिक अनुष्ठान या जप न तो इसी लोक में लाभदायक है तथा न मरने के बाद। इसलिए गुरु आज्ञानुसार पूर्ण श्रद्धा भाव से आध्यात्मिक कर्म लाभदायक हैं। भक्ति चाहे नीचे के प्रभुओं की करो, चाहे पूर्ण परमात्मा सतलोक प्राप्ति की करो, वह साधना शास्त्रानुकूल तथा श्रद्धा पूर्वक ही लाभदायक है।

केवल सोहं शब्द तक की साधना भी काल जाल तक है। परमेश्वर कबीर (कविर्देव) जी की अमृत वाणी :-

कबीर, जो जन होगा जौहरी, लेगा शब्द विलगाय। सोहं – सोहं जप मुए, व्यर्था जन्म गंवाए।।
कोटि नाम संसार में, उनसे मुक्ति न होए। सारनाम मुक्ति का दाता, वाकुं जाने न कोए।।

आदरणीय गरीबदास साहेब जी की अमृत वाणी :-

गरीब, सोहं ऊपर और है, सतसुकृत एक नाम। सब हंसों का बास है, नहीं बस्ती नहीं गाम।।
सोहं में थे ध्रुव प्रहलादा, ओ३म सोहं वाद विवादा।
नामा छिपा ओ३म तारी, पीछे सोहं भेद विचारी। सार शब्द पाया जद लोई, आवागवन बहुर न होई।।

उपरोक्त अमृत वाणी में परमात्मा प्राप्त महान आत्मा आदरणीय गरीबदास साहेब जी कह रहे हैं कि जो केवल ओ३म व सोहं के मंत्र जाप तक सीमित है, वे भी काल के जाल में ही हैं। जैसे पूर्ण परमात्मा कविर्देव चारों युगों में आते हैं, तब पूर्ण विधि स्वयं ही वर्णन करके जाते हैं। इसी पूर्ण परमात्मा के नाम रहते हैं - सतयुग में सतसुकृत जी, त्रेतायुग में मुनिन्द्र जी, द्वापर युग में करूणामय जी तथा कलयुग में वास्तविक कविर्देव नाम से ही प्रकट होते हैं। जब पूर्ण ब्रह्म कविर्देव सतयुग में सतसृकुत नाम से आए थे तो वास्तविक ज्ञान वर्णन करते थे। जो उस समय के ऋषियों द्वारा वर्णित ज्ञान के विपरित (सत्य) ज्ञान था। क्योंकि ऋषिजन वेदों को ठीक से न समझ कर ओ३म मंत्र को पूर्ण ब्रह्म का मानकर जाप करते तथा कराते थे तथा ब्रह्म को पूर्ण ब्रह्म ही बताते थे। पूर्ण परमात्मा कहा करते थे कि ब्रह्म से ऊपर परब्रह्म, उससे ऊपर पूर्ण ब्रह्म पूर्ण शक्ति युक्त प्रभु है। इस ज्ञान को स्वीकार न करके उस परमपिता को वामदेव (उल्टा ज्ञान देने वाला) कहने लगे। वास्तविक सत्सुकृत नाम भुलाकर प्रचलित उर्फ नाम वामदेव से ही जानने लगे। यही पूर्ण परमात्मा श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी को मिले, तत्वज्ञान समझाया। तीनों प्रभुओं ने प्रथम मंत्र प्राप्त किया, परन्तु आगे नाम प्राप्त करने में कालवश होकर रूची नहीं रखी। यही परमात्मा श्री नारद जी आदि से भी मिलें। श्री नारद जी को भी उपदेश दिया। इनको केवल 'सोहं' मंत्र दिया। फिर नारद जी ने यही मंत्र ध्रुव तथा प्रहलाद को भी प्रदान किया जिससे वे भी काल जाल में ही रहे।

पूर्ण ब्रह्म कविरग्नि (कबीर परमेश्वर) पहली बार प्रमाणित मंत्रों (ओ३म - किलियम् - हरियम् - श्रीयम् - सोहं) में से कोई एक मंत्र साधक को प्रदान करते थे। फिर साधक की पूर्ण परमात्मा को

प्राप्त करने की अति उत्सुक्ता देख कर फिर वास्तविक मंत्र ओ३म + तत् (सांकेतिक) प्रदान करते थे, जिसे सतनाम कहा जाता है। जैसे नारद जी को मार्ग दर्शन किया तो नारद जी ने उत्सुकता (लग्न) तो बहुत लगाई, परन्तु मन में शंका फिर भी रही कि आज तक अन्य किसी ऋषि-महर्षि ने पूर्ण परमात्मा का विवरण नहीं दिया, क्या पता सत्य है या असत्य? इस एक महात्मा पर विश्वास करना बुद्धिमता नहीं। यह भाव अन्तःकरण में समाया रहा। ऊपर से औपचारिकता आवश्यकता से अधिक करते रहे। अंतर्यामी पूर्ण परमेश्वर सतसुकृत उर्फ वामदेव जी ने महर्षि नारद जी को वास्तविक मंत्र (ओ३म + तत्) नहीं प्रदान किया। केवल सोहं नाम प्रदान किया तथा नारद जी की प्रार्थना पर उसे केवल (सोहं) एक नाम दान करने की आज्ञा दे दी। पूर्ण परमात्मा के सच्चे संत के अतिरिक्त यदि कोई ब्रह्म तक के साधक अधिकारी संत से उपदेश लेता है तो काल (ब्रह्म) उसे ब्रह्मलोक में बने नकली (झूठे) सत्यलोक में भेज देता है। वहाँ उन्हें उच्च पद प्रदान कर देता है तथा सोहं मंत्र के जाप की कमाई को समाप्त करवा कर फिर कर्माधार पर नरक, फिर पृथ्वी पर नाना प्रकार के प्राणियों के शरीर में पीड़ा बनी रहती है। ओ३म नाम के जाप के साधक ब्रह्मलोक में बने महास्वर्ग में चले जाते हैं तथा फिर स्वर्ग सुख भोगकर जन्म-मृत्यु तथा नरक के विकट चक्र में पड़े रहते हैं। जो दो मंत्र का सत्यनाम जिसमें एक ओ३म मंत्र + तत् मंत्र (गुप्त) है, को मुझ दास से प्राप्त करके जो साधक साधना करता है और तीसरे (सत्) नाम को प्राप्त करने योग्य नहीं हुआ तथा देहान्त हो गया, वह साधक काल के हाथ नहीं लगेगा। पूर्ण परमात्मा कविर् देव ने ब्रह्मण्ड में एक ऐसा स्थान बनाया है जिसका न ब्रह्म (काल) को पता है और न अन्य ब्रह्मादिक को। वह साधक उस लोक में चला जाता है। वहाँ पर पूर्ण परमात्मा की तरफ से सर्व सुख लाभ मिलते रहते हैं। साधक की सत्यनाम की कमाई समाप्त नहीं होती। फिर कभी सत्यभक्ति युग आने पर उन्हीं पुण्यात्माओं को मानव शरीर प्रदान कर देता है। पूर्व सत्यनाम (सच्चे नाम) की कमाई के आधार पर जितनी जिसने कमाई की थी, लगातार कई मनुष्य जन्म मिलते रहेंगे, हो सकता है फिर किसी समय पूर्ण संत मिल जाए, जिससे शीघ्र ही भक्ति प्रारम्भ हो जाएगी तथा नाना प्रकार के प्राणियों के शरीर धारण करने व नरक में गिरने से बचा रहता है। परन्तु मुक्ति फिर भी बाकी है। उसके बिना सत्यनाम व केवल सोहं नाम का जाप भी व्यर्थ ही सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार श्री नामदेव साहेब जी पहले ओ३म नाम को वास्तविक व अन्तिम प्रभु साधना का मंत्र जानकर निश्चिन्त थे। तब पूर्ण परमात्मा कविर् देव (कबीर साहेब) मिले। उनको तत्वज्ञान समझाया। श्री नामदेव जी की श्रद्धा देखकर परमात्मा ने केवल सोहं मंत्र प्रदान किया। फिर बहुत समय उपरान्त श्री नामदेव जी की असीम श्रद्धा तथा पूर्ण प्रभु पाने की तड़फ देखकर नए सिरे से ओ३म + तत् नाम जोड़ कर सत्यनाम प्रदान किया तथा तत्पश्चात् सारनाम (सत् शब्द) दिया, जिसे सारशब्द भी कहा है। इसप्रकार श्रीनामदेव साहेब जी की पूर्ण मुक्ति हुई। इससे पूर्व की वाणी श्री नामदेव की संग्रह करके भक्तजन इन्हें ब्रह्म उपासक ही मानते हैं।

श्रद्धा-भाव बिना भक्ति व्यर्थ

।। भगवान कृष्ण का विदुर के घर अलूणा साक खाना।।

भक्ति करै बिन भाव रे, सो कोनै काजा। विदुर कै जीमन उठ गए, तज दूर्योधन राजा।।
व्यंजन छतीसों छाड़ कर पाया साक अलूणा। थाल नहीं था विदूर के, धनि जीमत दौंना।।

एक समय भगवान कृष्ण (तीन लोक के धनी) कौरवों तथा पाण्डवों का समझौता करवाने के लिए इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) आए। उस समय दुर्योधन राजा था। लेकिन दुर्योधन ने भगवान की सलाह को नहीं माना। जिसमें श्री कृष्णचन्द्र जी ने कहा था कि आप पाण्डवों को आधा राज दे दो। लड़ाई अच्छी नहीं होती। अंत में यह भी कह दिया था कि पाण्डवों को केवल पाँच (5) गाँव दे दो। परंतु दुर्योधन इस बात पर भी तैयार नहीं हुआ और कहा कि सूई की नौंक के बराबर भी स्थान पाण्डवों के लिए नहीं है। आपने मेरे (दुर्योधन के) यहाँ खाना खाना है क्योंकि राजा लोग राजाओं के घर भोजन करते शोभा देते हैं। श्री कृष्ण जी ने देखा कि यहाँ भाव नहीं है। केवल औपचारिकता (Formalty) है। श्री कृष्ण जी श्रद्धालु भक्त विदुर जी के घर (झोपड़ी) पर पहुँच गए। विदुर द्वारा भोजन के लिए प्रार्थना करने पर भगवान ने कहा कि भूख लगी है। जो बना है वही लाओ। यह कह मिट्टी के दौने में स्वयं साक (जो बिना नमक वाला था) डाल कर खाने लगे। यह देखकर विदुर जी शर्म के मारे अपने भाग्य को कोस भी रहे हैं और सराह भी रहे हैं। कोस तो इसलिए रहे हैं कि मैं इतना निर्धन हूँ कि भगवान को स्वादिष्ट भोजन नहीं करा सका। मालिक क्या इस गरीब के घर बार-2 आते हैं? सराह इसलिए रहा था कि मैं कितना शौभाग्यशाली हूँ कि स्वयं त्रिलोक स्वामी भगवान चल कर दर्शन देने आए हैं। न जाने कौन से जन्म का कोई शुभ कर्म उदय हुआ है जो मालिक को इतने प्यार से देख पाया हूँ।

कबीर, साधु भूखा भाव का, धन का भूखा ना। जो कोई भूखा धन का, वो तो साधु ना।।

।। पाण्डवों की यज्ञ में सुपच सुदर्शन द्वारा शंख बजाना।।

सर्व विदित है कि महाभारत के युद्ध में अर्जुन युद्ध करने से मना करके शस्त्र त्याग कर युद्ध के मैदान में दोनों सेनाओं के बीच में खड़े रथ के पिछले हिस्से में आंखों से आँसू बहाता हुआ बैठ गया। तब भगवान कृष्ण के अन्दर प्रवेश काल शक्ति (ब्रह्म) ने अर्जुन को युद्ध करने की राय दी। तब अर्जुन ने कहा भगवान! यह महापाप मैं नहीं करूँगा। इससे अच्छा तो भिक्षा का अन्न भी खा कर गुजारा कर लेंगे। तब भगवान काल श्री कृष्ण के शरीर में प्रवेश काल ने कहा कि अर्जुन युद्ध कर। तुझे कोई पाप नहीं लगेगा। देखें गीता जी के अध्याय 11 के श्लोक 33, अध्याय 2 के श्लोक 37,38 में।

महाभारत में लेख (प्रकरण) आता है कि कृष्ण जी के कहने से अर्जुन ने युद्ध करना स्वीकार कर लिया। घमासान युद्ध हुआ। करोड़ों व्यक्ति व सर्व कौरव युद्ध में मारे गए और पाण्डव विजयी हुए। तब पाण्डव प्रमुख युधिष्ठिर को राज्य सिंहासन पर बैठाने के लिए स्वयं भगवान कृष्ण ने कहा तो युधिष्ठिर ने यह कहते हुए गद्दी पर बैठने से मना कर दिया कि मैं ऐसे पाप युक्त राज्य को नहीं करूंगा। जिसमें करोड़ों व्यक्ति मारे गए थे। उनकी पत्नियाँ विधवा हो गई, करोड़ों बच्चे अनाथ हो गए, अभी तक उनके आँसू भी नहीं सूखे हैं। किसी प्रकार भी बात बनती न देख कर श्री कृष्ण जी ने कहा कि आप भीष्म जी से सलाह कर लो। क्योंकि जब व्यक्ति स्वयं फैसला लेने में असफल रहे तब किसी स्वजन से विचार कर लेना चाहिए। युधिष्ठिर ने यह बात स्वीकार कर ली। तब श्री कृष्ण जी युधिष्ठिर को साथ ले कर वहाँ पहुँचे जहाँ पर श्री भीष्म शर (तीरों की) सैय्या (चारपाई) पर अंतिम स्वांस गिन रहे थे, वहाँ जा कर श्री कृष्ण जी ने भीष्म से कहा कि युधिष्ठिर राज्य गद्दी पर बैठने से मना कर रहे हैं। कृप्या आप इन्हें राजनीति की शिक्षा दें।

भीष्म जी ने बहुत समझाया परंतु युधिष्ठिर अपने उद्देश्य ये विचलित नहीं हुआ। यही कहता

रहा कि इस पाप से युक्त रूधिर से सने राज्य को भोग कर मैं नरक प्राप्ति नहीं चाहूँगा। फिर श्री कृष्ण जी ने कहा कि आप एक धर्म यज्ञ करो। जिससे आपको युद्ध में हुई हत्याओं का पाप नहीं लगेगा। इस बात पर युधिष्ठिर सहमत हो गया और एक धर्म यज्ञ की। फिर राज गद्दी पर बैठ गया। हस्तिनापुर (दिल्ली) का राजा बन गया।

(प्रमाण :-- सुखसागर के पहले स्कन्ध के आठवें अध्याय से सहाभार पृष्ठ नं. 48 से 53 आठवाँ तथा नौवां अध्याय।।

कुछ वर्षो प्रयान्त युधिष्ठिर को भयानक स्वपन आने शुरु हो गए। जैसे बहुत सी औरतें रोती-बिलखती हुई अपनी चूड़ियाँ फोड़ रहीं हैं तथा उनके मासूम बच्चे अपनी मां के पास खड़े कुछ बैठे पिता-पिता कह कर रो रहे हैं मानों कह रहे हो हे राजन्! हमें भी मरवा दे, भेज दे हमारे पिता के पास। कई बार बिना शीश के धड़ दिखाई देते हैं। किसी की गर्दन कहीं पड़ी है, धड़ कहीं पड़ा है, हा-हा कार मची हुई है। युधिष्ठिर की नींद उचट जाती है, घबरा कर बिस्तर पर बैठ कर हाँफने लग जाता है। सारी-2 रात बैठ कर या महल में घूम कर व्यतीत करता है। एक दिन द्रौपदी ने बड़े पति की यह दशा देखी परेशानी का कारण पूछा तो युधिष्ठिर कुछ नहीं- कुछ नहीं कह कर टाल गए। जब द्रौपदी ने कई रात्रियों में युधिष्ठिर की यह दुर्दशा देखी तो एक दिन चारों (अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव) को बताया कि आपका बड़ा भाई बहुत परेशान है। कारण पूछो। तब चारों भाईयों ने बड़े भईया से प्रार्थना करके पूछा कि कृप्या परेशानी का कारण बताओ। अधिक आग्रह करने पर युद्विष्ठर ने अपनी सर्व कहानी सुनाई। पाँचों भाई इस परेशानी का कारण जानने के लिए भगवान श्रीकृष्णजी के पास गए तथा बताया कि बड़े भईया युधिष्ठिर जी को भयानक स्वपन आ रहे हैं। जिनके कारण उनकी रात्री की नींद व दिन का चैन व भूख समाप्त हो गई है। कृप्या कारण व समाधान बताएँ। सर्व बात सुनकर श्री कृष्ण जी बोले युद्ध में किए हुए पाप परेशान कर रहे हैं। इन पापों का निवारण यज्ञ से होता है।

गीता जी के अध्याय 3 के श्लोक 13 का हिन्दी अनुवाद : यज्ञ में प्रतिष्ठित इष्ट (पूर्ण परमात्मा) को भोग लगाने के बाद बने प्रसाद को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाते हैं जो पापी लोग अपना शरीर पोषण करने के लिये ही अन्न पकाते हैं वे तो पाप को ही खाते हैं अर्थात् यज्ञ करके सर्व पापों से मुक्त हो जाते हैं। और कोई चारा न देख कर पाण्डवों ने श्री कृष्ण जी की सलाह स्वीकार कर ली। यज्ञ की तैयारी की गई। सर्व पृथ्वी के मानव, ऋषि, सिद्ध, साधु व स्वर्ग लोक के देव भी आमन्त्रित करने को, श्री कृष्ण जी ने कहा कि जितने अधिक व्यक्ति भोजन खाएंगें उतना ही अधिक पुण्य होगा। परंतु संतों व साधुओं से विशेष लाभ होता है उनमें भी कोई परम शक्ति युक्त संत होगा वह पूर्ण लाभ दे सकता है तथा यज्ञ पूर्ण होने का साक्षी एक पांच मुख वाला (पंचजन्य) शंख एक सुसज्जित ऊँचे आसन पर रख दिया तथा कहा कि जब इस यज्ञ में कोई भक्ति की कमाई वाला (परम शक्ति युक्त) संत भोजन ग्रहण करेगा तो यह शंख स्वयं आवाज करेगा। इतनी गूँज होगी की पूरी पृथ्वी पर तथा स्वर्ग लोक तक आवाज सुनाई देगी।

यज्ञ की तैयारी हुई। निश्चित दिन को सर्व आदरणीय आमन्त्रित भक्तगण, अठासी हजार ऋषि, तेतीस करोड़ देवता, नौ नाथ, चौरासी सिद्ध, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि पहुँच गए। यज्ञ कार्य शुरु हुआ। यज्ञ का बचा प्रसाद (भण्डारा)सर्व उपस्थित महानुभावों व भक्तों तथा जनसाधारण को बरताया (खिलाया)। स्वयं भगवान कृष्ण जी ने भी भोजन खा लिया। परंतु शंख नहीं बजा। शंख

नहीं बजा तो यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हुई। उस समय युधिष्ठिर ने श्री कृष्ण जी से पूछा - हे मधुसुदन! शंख नहीं बजा। सर्व महापुरुषों व आगन्तुकों ने भोजन ग्रहण कर लिया। कारण क्या है? श्री कृष्ण ने कहा कि इनमें कोई सच्चा साधक (सतनाम व सारनाम उपासक) नहीं है। तब युधिष्ठिर को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतने महा मण्डलेश्वर जिसमें वशिष्ट मुनि, मार्कण्डे, लोमष ऋषि, नौ नाथ(गोरखनाथ जैसे), चौरासी सिद्ध आदि-2 व स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने भी भोजन खा लिया। परंतु शंख नहीं बजा। कृष्ण जी ने कहा ये सर्व मान बड़ाई के भूखें हैं। परमात्मा चाहने वाला कोई नहीं तथा अपनी मनमुखी साधना करके सिद्धि दिखा कर दुनियाँ को आकर्षित करते हैं। भोले लोग इनकी वाह-2 करते हैं तथा इनके इर्द-गिर्द मण्डराते हैं। ये स्वयं भी पशु जूनी में जाएंगे तथा अपने अनुयाईयों को नरक ले जाएंगे।

गरीब, साहिब के दरबार में, गाहक कोटि अनन्त। चार चीज चाहै हैं, रिद्धि सिद्धि मान महंत।।
गरीब, ब्रह्म रन्द्र के घाट को, खोलत है कोई एक। द्वारे से फिर जाते हैं, ऐसे बहुत अनेक।।
गरीब, बीजक की बातां कहैं, बीजक नाहीं हाथ। पृथ्वी डोबन उतरे, कह—कह मीठी बात।।
गरीब, बीजक की बातां कहैं, बीजक नाहीं पास। ओरों को प्रमोदही, अपन चले निरास।।

{**प्रमाण के लिए गीता जी के कुछ श्लोक :--**

अध्याय 9 का श्लोक 20

त्रैविद्याः, माम्, सोमपाः, पूतपापाः, पूतपापाः, यज्ञैः, इष्टवा, स्वर्गतिम्, प्रार्थयन्ते,
ते, पुण्यम्, आसाद्य, सुरेन्द्रलोकम्, अश्नन्ति, दिव्यान्, दिवि, देवभोगान्।।20।।

अनुवाद : (त्रैविद्याः) तीनों वेदोंमें विधान (सोमपाः) सोमरसको पीनेवाले (पूतपापाः) पापरहित पुरुष (माम्) मुझको (यज्ञैः) यज्ञोंके द्वारा (इष्टवा) पूज्य देव के रूप में पूज कर (स्वर्गतिम्) स्वर्गकी प्राप्ति (प्रार्थयन्ते) चाहते हैं (ते) वे पुरुष (पुण्यम्) अपने पुण्योंके फलरूप (सुरेन्द्रलोकम्) स्वर्गलोकको (आसाद्य) प्राप्त होकर (दिवि) स्वर्गमें (दिव्यान्) दिव्य (देवभोगान्) देवताओंके भोगोंको (अश्नन्ति) भोगते हैं।

अध्याय 9 का श्लोक 21

ते, तम्, भुक्त्वा, स्वर्गलोकम्, विशालम्, क्षीणे, पुण्ये, मर्त्यलोकम्, विशन्ति,
एवम्, त्रयीधर्मम्, अनुप्रपन्नाः, गतागतम्, कामकामाः, लभन्ते।।21।।

अनुवाद : (ते) वे (तम्) उस (विशालम्) विशाल (स्वर्गलोकम्) स्वर्गलोकको (भुक्त्वा) भोगकर (पुण्ये) पुण्य (क्षीणे) क्षीण होनेपर (मर्त्यलोकम्) मृत्युलोकको (विशन्ति) प्राप्त होते हैं। (एवम्) इस प्रकार (त्रयीधर्मम्) तीनों वेदोंमें कहे हुए कर्मका (अनुप्रपन्नाः) आश्रय लेनेवाले और (कामकामाः) भोगोंकी कामनावस (गतागतम्) बार—बार आवागमनको (लभन्ते) प्राप्त होते हैं।

अध्याय 16 का श्लोक 17

आत्सम्भाविताः, स्तब्धाः, धनमानमदान्विताः,
यजन्ते, नामयज्ञैः, ते, दम्भेन, अविधिपूर्वकम्।।17।।

अनुवाद : (ते) वे (आत्मसम्भाविताः) अपनेआपको ही श्रेष्ठ माननेवाले (स्तब्धाः) घमण्डी पुरुष (धनमानमदान्विताः) धन और मानके मदसे युक्त होकर (नामयज्ञैः) केवल नाममात्रके यज्ञोंद्वारा (दम्भेन) पाखण्डसे (अविधिपूर्वकम्) शास्त्रविधिरहित (यजन्ते) पूजन करते हैं।

अध्याय 16 का श्लोक 18

अहंकारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, च, संश्रिताः,
माम्, आत्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तः, अभ्यसूयकाः।।18।।

अनुवाद : (अहंकारम्) अहंकार (बलम्) बल (दर्पम्) घमण्ड (कामम्) कामना और (क्रोधम्) क्रोधादिके (संश्रिताः) परायण (च) और (अभ्यसूयकाः) दूसरोंकी निन्दा करनेवाले पुरुष (आत्मपरदेहेषु) प्रत्येक शरीर में परमात्मा आत्मा सहित तथा (माम्) मुझसे (प्रद्विषन्तः) द्वेष करनेवाले होते हैं।

अध्याय 16 का श्लोक 19

तान् अहम्, द्विषतः, क्रूरान्, संसारेषु, नराधमान्,
क्षिपामि, अजस्त्रम्, अशुभान्, आसुरीषु, एव, योनिषु।।19।।

अनुवाद : (तान्) उन (द्विषतः) द्वेष करनेवाले (अशुभान्) पापाचारी और (क्रूरान्) क्रूरकर्मी (नराधमान्) नराधमोंको (अहम्) मैं (संसारेषु) संसारमें (अजस्त्रम्) बार–बार (आसुरीषु) आसुरी (योनिषु) योनियोंमें (एव) ही (क्षिपामि) डालता हूँ।

अध्याय 16 का श्लोक 20

आसुरीम्, योनिम्, आपन्नाः, मूढाः, जन्मनि, जन्मनि,
माम् अप्राप्य, एव, कौन्तेय, ततः, यान्ति, अधमाम्, गतिम्।।20।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (मूढाः) वे मूढ (माम्) मुझको (अप्राप्य) न प्राप्त होकर (एव) ही (जन्मनि) जन्म (जन्मनि) जन्ममें (आसुरीम्) आसुरी (योनिम्) योनिको (आपन्नाः) प्राप्त होते हैं फिर (ततः) उससे भी (अधमाम्) अति नीच (गतिम्) गतिको (यान्ति) प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं।

अध्याय 16 का श्लोक 23

यः, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, वर्तते, कामकारतः,
न, सः, सिद्धिम्, अवाप्नोति, न, सुखम्, न, पराम्, गतिम्।।23।।

अनुवाद : (यः) जो पुरुष (शास्त्रविधिम्) शास्त्रविधिको (उत्सृज्य) त्यागकर (कामकारतः) अपनी इच्छासे मनमाना (वर्तते) आचरण करता है (सः) वह (न) न (सिद्धिम्) सिद्धिको (अवाप्नोति)प्राप्त होता है (न)न (पराम्)परम (गतिम्)गतिको और(न) न (सुखम्) सुखको ही।}

''शेष कथा''

श्री कृष्ण भगवान ने अपनी शक्ति से युधिष्ठिर को उन सर्व महा मण्डलेश्वरों के भविष्य में होने वाले जन्म दिखाए जिसमें किसी ने कैंचवे का, किसी ने भेड़-बकरी, भैंस व शेर आदि के रूप बना रखे थे।

यह सब देख कर युधिष्ठिर ने कहा - हे भगवन! फिर तो पृथ्वी संत रहित हो गई। भगवान कृष्ण ने कहा जब पृथ्वी संत रहित हो जाएगी तो यहाँ आग लग जाएगी। सर्व जीव-जन्तु आपस में लड़ मरेंगे। यह तो पूरे संत की शक्ति से सन्तुलन बना रहता है। फिर मैं (भगवान विष्णु) पृथ्वी पर आ कर राक्षस वृत्ति के लोगों को समाप्त करता हूँ जिससे संत सुखी हो जाएं। जिस प्रकार जमींदार अपनी फसल से हानि पहुँचने वाले अन्य पौधों को जो झाड़-खरपतवार आदि को काट-काट कर बाहर डाल देता है तब वह फसल स्वतन्त्रता पूर्वक फलती-फूलती है। पूर्ण संत उस फसल में सिचांई सा सुख प्रदान करते हैं। पूर्ण संत सबको समान सुख देते हैं। जिस प्रकार पानी दोनों प्रकार के पौधों का पोषण करते हैं। उनमें सर्व जीव के प्रति दया भाव होता है। श्री कृष्ण जी ने फिर कहा अब मैं आपको पूर्ण संत के दर्शन करवाता हूँ। एक महात्मा दिल्ली के उत्तर पूर्व में रहते हैं। उसको बुलवाना है। तब युधिष्ठिर ने कहा कि उस ओर संतों को आमन्त्रित करने का कार्य भीमसैन को सौंपा था। पता करते हैं कि वह उन महात्मा तक पहुँचा या नहीं। भीमसैन को बुलाकर पूछा तो उसने बताया कि मैं उस से मिला था। उनका नाम स्वपच सुदर्शन है। बाल्मिकी जाति में गृहस्थी संत हैं। एक झौंपड़ी में रहता है। उन्होंने यज्ञ में आने से मना कर दिया। इस पर श्री कृष्ण जी ने कहा कि संत मना नहीं किया करते। सर्व वार्ता जो उनके साथ हुई है वह बताओ। तब भीम सैन ने आगे बताया कि मैंने उनको आमन्त्रित करते हुए कहा कि हे संत परवर! हमारी यज्ञ में आने का कष्ट करना। उनको पूरा पता बताया। उसी समय वे (सुदर्शन संत जी) कहने लगे भीम सैन आप के पाप के अन्न को खाने से संतों को दोष लगेगा। आपने तो घोर पाप कर रखा है। करोड़ों जीवों

की हत्या करके आज आप राज्य का आनन्द ले रहे हो। युद्ध में वीरगति को प्राप्त सैनिकों की विधवा पत्नी व अनाथ बच्चे रह-रह कर अपने पति व पिता को याद करके फूट-फूट कर घंटों रोते हैं। बच्चे अपनी माँ से लिपट कर पूछ रहे हैं - माँ, पापा छुट्टी नहीं आए? कब आएंगे? हमारे लिए नए वस्त्र लाएंगे। दूसरी लड़की कहती है कि मेरे लिए नई साड़ी लाएंगे। बड़ी होने पर जब मेरी शादी होगी तब मैं उसे बाँधकर ससुराल जाऊँगी। वह लड़का (जो दस वर्ष की आयु का है) कहता है कि मैं अब की बार पापा (पिता जी) से कहूँगा कि आप नौकरी पर मत जाना। मेरी माँ तथा भाई-बहन आपके बिना बहुत दुःख पाते हैं। माँ तो सारा दिन-रात आपकी याद करके जब देखो एकांत स्थान पर रो रही होती है। या तो हम सबको अपने पास बुला लो या आप हमारे पास रहो। छोड़ दो नौकरी को। मैं जवान हो गया हूँ। आपकी जगह मैं फौज में जा कर देश सेवा करूंगा। आप अपने परिवार में रहो। आने दो पिता जी को, बिल्कुल नहीं जाने दूँगा। (उन बच्चों को दुःखी होने से बचाने के लिए उनकी माँ ने उन्हें यह नहीं बताया कि आपके पिता जी युद्ध में मर चुके हैं क्योंकि उस समय वे बच्चे अपने मामा के घर गए हुए थे। केवल छोटा बच्चा जो डेढ़ वर्ष की आयु का था वही घर पर था। अन्य बच्चों को जान बूझ कर नहीं बुलाया था।) इस प्रकार उन मासूम बच्चों की आपसी वार्ता से दुःख पाकर उनकी माँ का हृदय पति की याद के दुःख से भर आया। उसे हल्का करने के लिए (रोने के लिए) दूसरे कमरे में जा कर फूट-फूट कर रोने लगी। तब सारे बच्चे माँ के ऊपर गिरकर रोने लगे। सम्बन्धियों ने आकर शांत करवाया। कहा कि बच्चों को स्पष्ट बताओ कि आपके पिता जी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो गए। जब बच्चों को पता चला कि हमारे पापा (पिता जी) अब कभी नहीं आएंगे तब उस स्वार्थी राजा को कोसने लगे जिसने अपने भाई बटवारे के लिए दुनियाँ के लालों का खून पी लिया। यह कोई देश रक्षा की लड़ाई भी नहीं थी जिसमें हम संतोष कर लेते कि देश के हित में प्राण त्याग दिए हैं। इस खूनी राजा ने अपने ऐशो-आराम के लिए खून की नदी बहा दी। अब उस पर मौज कर रहा है। आगे संत सुदर्शन (स्वपच) बता रहे हैं कि भीम ऐसे-2 करोड़ों प्राणी युद्ध की पीड़ा से पीड़ित हैं। उनकी हाय आपको चैन नहीं लेने देगी चाहे करोड़ यज्ञ करो। ऐसे दुष्ट अन्न को कौन खाए? यदि मुझे बुलाना चाहते हो तो मुझे पहले किए हुए सौ (100) यज्ञों का फल देने का संकल्प करो अर्थात् एक सौ यज्ञों का फल मुझे दो तब मैं आपके भोजन पाऊँ। सुदर्शन जी के मुख से इस बात को सुन कर भीम ने बताया कि मैं बोला आप तो कमाल के व्यक्ति हो, सौ यज्ञों का फल मांग रहे हो। यह हमारी दूसरी यज्ञ है। आपको सौ का फल कैसे दें? इससे अच्छा तो आप मत आना। आपके बिना कौन सी यज्ञ सम्पूर्ण नहीं होगी। जब स्वयं भगवान कृष्ण जी साथ हैं। सर्व वार्ता सुन कर श्री कृष्ण जी ने कहा भीम! संतों के साथ ऐसा अभद्र-व्यवहार नहीं किया करते। सात समुद्रों का अंत पाया जा सकता है परंतु सतगुरु (कबीर साहेब) के संत का पार नहीं पा सकते। उस महात्मा सुदर्शन (स्वपच) के एक बाल के समान तीन लोक भी नहीं हैं। मेरे साथ चलो, उस परमपिता परमात्मा के प्यारे हंस को लाने के लिए।

तब पाँचों पाण्डव व श्री कृष्ण भगवान रथ में सवार होकर चले। सन्त के निवास से एक मील दूर रथ खड़ा करके नंगे पैरों स्वपच की झोंपड़ी पर पहुँचे। उस समय स्वयं कबीर साहेब (करुणामय साहेब जी स्वपच के गुरुदेव थे क्योंकि साहिब कबीर द्वापर युग में करुणामय नाम से अपने सतलोक से आए थे तथा सुदर्शन को अपना सतलोक का सत्य ज्ञान समझाया था) सुदर्शन स्वपच का रूप बना कर झोपड़ी में बैठ गए व सुदर्शन को अपनी गुप्त प्रेरणा से मन में संकल्प उठा

कर कहीं दूर के संत या भक्त से मिलने भेज दिया जिसमें आने व जाने में कई रोज लगने थे। तब सुदर्शन के रूप में सतगुरु की चमक व शक्ति देख कर सर्व पाण्डव बहुत प्रभावित हुए। स्वयं श्री कृष्णजी ने लम्बी दण्डवत् प्रणाम की। तब देखा देखी सर्व पाण्डवों ने भी ऐसा ही किया। कृष्ण जी की ओर दृष्टि डाल कर सुपच सुदर्शन जी ने आदर पूर्वक कहा कि - हे त्रिभुवननाथ! आज इस दीन के द्वार पर कैसे? मेरा अहोभाग्य है कि आज दीनानाथ विश्वम्भर मुझ तुच्छ को दर्शन देने स्वयं चल कर आए हैं। सबको आदर पूर्वक बैठना दिया तथा आने का कारण पूछा। श्री कृष्ण जी ने कहा कि हे जानी-जान! आप सर्व गति (स्थिति) से परीचित हैं। पाण्डवों ने यज्ञ की है। वह आपके बिना सम्पूर्ण नहीं हो रही है। कृप्या इन्हें कृतार्थ करें। उसी समय वहां उपस्थित भीम की ओर संकेत करते हुए महात्मा जी सुदर्शन रूप में विराजमान परमेश्वर कबीर जी ने कहा कि यह वीर मेरे पास आया था तथा मैंने अपनी विवशता से इसे अवगत करवाया था। श्री कृष्ण जी ने कहा कि - हे पूर्णब्रह्म! आपने स्वयं अपनी वाणी में कहा है कि -

''संत मिलन को चालिए, तज माया अभिमान। ज्यों ज्यों पग आगे धरै, सो–सो यज्ञ समान।।''

आज पांचों पाण्डव राजा हैं तथा मैं स्वयं द्वारिकाधीश आपके दरबार में राजा होते हुए भी नंगे पैरों उपस्थित हूँ। अभिमान का नामों निशान भी नहीं है तथा स्वयं भीम ने भी खड़ा हो कर उस दिन कहे हुए अपशब्दों की चरणों में पड़ कर क्षमा याचना की। इसलिए हे नाथ! आज यहाँ आपके दर्शनार्थ आए आपके छः सेवकों के कदमों के यज्ञ समान फल को स्वीकार करते हुए सौ आप रखो तथा शेष हम भिक्षुकों को दान दो ताकि हमारा भी कल्याण हो। इतना आधीन भाव सर्व उपस्थित जनों में देख कर जगतगुरु (करुणामय)सुदर्शन रूप में अति प्रसन्न हुए।

कबीर, साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।जो कोई धन का भूखा, वो तो साधू नाहिं।।

उठ कर उनके साथ चल पड़े। जब सुदर्शन जी यज्ञशाला में पहुँचे तो चारों ओर एक से एक ऊँचे सुसज्जित आसनों पर विराजमान महा मण्डलेश्वर सुदर्शन जी के रूप (दोहरी धोती घुटनों से थोड़ी नीचे तक, छोटी-2 दाड़ी, सिर के बिखरे केश न बड़े न छोटे, टूटी-फूटी जूती। मैले से कपड़े, तेजोमय शरीर) को देखकर अपने मन में सोच सोचने लगे ऐसे अपवित्र व्यक्ति से शंख सात जन्म भी नहीं बज सकता है। यह तो हमारे सामने ऐसे है जैसे सूर्य के सामने दीपक। श्रीकृष्ण जी ने स्वयं उस महात्मा का आसन अपने हाथों लगाया (बिछाया) क्योंकि श्री कृष्ण श्रेष्ठ आत्मा हैं, (परमात्मा हैं) उन्होंने सुदामा व भिलनी को भी हृदय से चाहा। यहाँ तो स्वयं परमेश्वर पूर्णब्रह्म सतपुरुष, (अकाल मूर्ति) आए हैं। द्रौपदी से कहा कि हे बहन! सुदर्शन महात्मा जी आए हैं, भोजन तैयार करो। बहुत पहुँचे हुए संत हैं। द्रौपदी देख रही है कि संत लक्षण तो एक भी नहीं दिखाई देते हैं। यह तो एक गृहस्थी गरीब (कंगाल) व्यक्ति नजर आता है। न तो वस्त्र भगवां, न गले में माला, न तिलक, न सिर पर बड़ी जटा, न मुण्ड ही मुण्डवा रखा और न ही कोई चिमटा, झोली, करमण्डल लिए हुए था। फिर भी श्री कृष्ण जी के कहते ही स्वादिष्ट भोजन कई प्रकार का बनाकर एक सुन्दर थाल (चांदी का) में परोस कर सुदर्शन जी के सामने रख कर मन में सोचने लगी कि आज यह भक्त भोजन खा कर ऊँगली चाटता रह जाएगा। जिन्दगी में ऐसा भोजन कभी नहीं खाया होगा। सुदर्शन जी ने नाना प्रकार के भोजन को इक्ट्ठा किया तथा खिचड़ी सी बनाई। उस समय द्रौपदी ने देखा कि इसने तो सारा भोजन (खीर, खांड, हलुवा, सब्जी, दही, बड़े आदि) घोल कर एक कर लिया। तब मन में दुर्भावना पूर्वक विचार किया कि इस मूर्ख हब्शी ने तो खाना खाने का भी ज्ञान नहीं। यह काहे का संत? कैसा शंख बजाएगा। {क्योंकि खाना बनाने वाली स्त्री की यह भावना होती है कि मैं

ऐसा स्वादिष्ट भोजन बनाऊँ कि खाने वाला मेरे भोजन की प्रशंसा कई जगह करे)। प्रत्येक बहन की यही आशा होती है।

वह बेचारी एक घंटे तक धुएँ से आँखें खराब करती है और मेरे जैसा कह दे कि नमक तो है ही नहीं, तब उसका मन बहुत दुःखी होता है। इसलिए संत जैसा मिल जाए उसे खा कर सराहना ही करते हैं। यदि कोई न खा सके तो नमक कह कर 'संत' नहीं मांगता। संतों ने नमक का नाम राम–रस रखा हुआ है। कोई ज्यादा नमक खाने का अभ्यस्त हो तो कहेगा कि भईया– रामरस लाना। घर वालों को पता ही न चले कि क्या मांग रहा है? क्योंकि सतसंग में सेवा में अन्य सेवक ही होते हैं। न ही भोजन बनाने वालों को दुःख हो। एक समय एक नया भक्त किसी सतसंग में पहली बार गया। उसमें किसी ने कहा कि भक्त जी रामरस लाना। दूसरे ने भी कहा कि रामरस लाना तथा थोड़ा रामरस अपनी हथेली पर रखवा लिया। उस नए भक्त ने खाना खा लिया था। परंतु पंक्ति में बैठा अन्य भक्तों के भोजन पाने का इंतजार कर रहा था कि इकट्ठे ही उठेंगे। यह भी एक औपचारिकता सतसंग में होती है। उसने सोचा रामरस कोई खास मीठा खाद्य पदार्थ होगा। यह सोच कर कहा मुझे भी रामरस देना। तब सेवक ने थोड़ा सा रामरस (नमक) उसके हाथ पर रख दिया। तब वह नया भक्त बोला – ये के कान कै लाना है, चौखा सा (ज्यादा) रखदे। तब उस सेवक ने दो तीन चमच्च रख दिया। उस नए भक्त ने उस बारीक नमक को कोई खास मीठा खाद्य प्रसाद समझ कर फांका मारा। तब चुपचाप उठा तथा बाहर जा कर कुल्ला किया। फिर किसी भक्त से पूछा रामरस किसे कहते हैं? तब उस भक्त ने बताया कि नमक को रामरस कहते हैं। तब वह नया भक्त कहने लगा कि मैं भी सोच रहा था कि कहें तो रामरस परंतु है बहुत खारा। फिर विचार आया कि हो सकता है नए भक्तों पर परमात्मा प्रसन्न नहीं हुए हों। इसलिए खारा लगता हो। मैं एक बार फिर कोशिश करता, अच्छा हुआ जो मैंने आपसे स्पष्ट कर लिया। फिर उसे बताया गया कि नमक को रामरस किस लिए कहते हैं?}

स्वपच सुदर्शन जी ने उस सारे भोजन को पाँच ग्रास बना कर खा लिया। पाँच बार शंख ने आवाज की। उसके बाद शंख ने आवाज नहीं की।

गरीबदास जी महाराज की वाणी

(सतग्रन्थ साहिब पृष्ठ नं. 862)

राग बिलावल से

व्यंजन छतीसों परोसिया जहाँ द्रौपदी रानी।
बिन आदर सतकार के, कही शंख ना बानी।।
पंच गिरासी बालमीक, पंचै बर बोले।
आगे शंख पंचायन, कपाट न खोले।।
बोले कृष्ण महाबली, त्रिभुवन के साजा।
बाल्मिक प्रसाद से, शंख अखण्ड क्यों न बाजा।।
द्रोपदी सेती कृष्ण देव, जब ऐसे भाखा।
बाल्मिक के चरणों की, तेरे ना अभिलाषा।।
प्रेम पंचायन भूख है, अन्न जग का खाजा।
ऊँच नीच द्रोपदी कहा, शंख अखण्ड यूँ नहीं बाजा।।
बाल्मिक के चरणों की, लई द्रोपदी धारा।
अखण्ड शंख पंचायन बाजीया, कण–कण झनकारा।।

उस समय श्री कृष्ण ने सोचा कि इन महात्मा सुदर्शन के भोजन खा लेने से भी शंख अखण्ड

क्यों नहीं बजा? अपनी दिव्य दृष्टि से देखा? तब द्रौपदी से कहा - द्रौपदी, भोजन सब प्राणी अपने-2 घर पर रूखा-सूखा खा कर ही सोते हैं। आपने बढ़िया भोजन बना कर अपने मन में अभिमान पैदा कर लिया। बिना आदर सतकार के किया हुआ धार्मिक अनुष्ठान (यज्ञ, हवन, पाठ) सफल नहीं होता। फिर आपने इस साधारण से व्यक्ति को क्या समझ रखा है? यह पूर्णब्रह्म हैं। इसके एक बाल के समान तीनों लोक भी नहीं हैं। आपने अपने मन में इस महापुरुष के बारे में गलत विचार किए हैं उनसे आपका अन्तःकरण मैला (मलीन) हो गया है। इनके भोजन ग्रहण कर लेने से तो यह शंख स्वर्ग तक आवाज करता और सारा ब्रह्मण्ड गूंज उठता। अब यह पांच बार बोला है। इसलिए कि आपका भ्रम दूर हो जाए क्योंकि और किसी ऋषि के भोजन पाने से तो यह टस से मस नहीं हुआ। अब आप अपना मन साफ करके इन्हें पूर्ण परमात्मा समझकर इनके चरणों को धो कर पीओ, ताकी तेरे हृदय का मैल (पाप) साफ हो जाए।

उसी समय द्रौपदी ने अपनी गलती को स्वीकार करते हुए संत से क्षमा याचना की और सुपच सुदर्शन गृहस्थी भक्त के चरण अपने हाथों धो कर चरणामृत बनाया। रज भरे (धूलि युक्त) जल को पीने लगी। जब आधा पी लिया तब भगवान कृष्ण ने कहा द्रौपदी कुछ अमृत मुझे भी दे दो ताकि मेरा भी कल्याण हो। यह कह कर कृष्ण जी ने द्रौपदी से आधा बचा हुआ चरणामृत पीया। उसी समय वही पंचायन शंख इतने जोरदार आवाज से बजा कि स्वर्ग तक ध्वनि सुनि। बहुत समय तक अखण्ड बजता रहा तब वह पाण्डवों की यज्ञ सफल हुई।

प्रमाण के लिए

बन्दी छोड़ गरीबदास जी महाराज कृत

।। अचला का अंग।।

(सत ग्रन्थ साहिब पृष्ठ नं. 359)

गरीब, सुपच रूप धरि आईया, सतगुरु पुरुष कबीर।
तीन लोक की मेदनी, सुर नर मुनिजन भीर।।97।।
गरीब, सुपच रूप धरि आईया, सब देवन का देव।
कृष्णचन्द्र पग धोईया, करी तास की सेव।।98।।
गरीब, पांचौं पंडौं संग हैं, छठ्ठे कृष्ण मुरारि।
चलिये हमरी यज्ञ में, समर्थ सिरजनहार।।99।।
गरीब, सहंस अठासी ऋषि जहां, देवा तेतीस कोटि।
शंख न बाज्या तास तैं, रहे चरण में लोटि।।100।।
गरीब, पंडित द्वादश कोटि हैं, और चौरासी सिद्ध।
शंख न बाज्या तास तैं, पिये मान का मध।।101।।
गरीब, पंडौं यज्ञ अश्वमेघ में, सतगुरु किया पियान।
पांचौं पंडौं संग चलैं, और छठा भगवान।।102।।
गरीब, सुपच रूप को देखि करि, द्रौपदी मानी शंक।
जानि गये जगदीश गुरु, बाजत नाहीं शंख।।103।।
गरीब, छप्पन भोग संजोग करि, कीनें पांच गिरास।
द्रौपदी के दिल दुई हैं, नाहीं दृढ़ विश्वास।।104।।
गरीब, पांचौं पंडौं यज्ञ करी, कल्पवृक्ष की छांहिं।
द्रौपदी दिल बंक हैं, शंख अखण्ड बाज्या नांहि।।105।।
गरीब, छप्पन भोग न भोगिया, कीन्हें पंच गिरास।

खड़ी द्रौपदी उनमुनी, हरदम घालत श्वास।।107।।
गरीब, बोलै कृष्ण महाबली, क्यूं बाज्या नहीं शंख।
जानराय जगदीश गुरु, काढत है मन बंक।।108।।
गरीब, द्रौपदी दिल कूं साफ करि, चरण कमल ल्यौ लाय।
बालमीक के बाल सम, त्रिलोकी नहीं पाय।।109।।
गरीब, चरण कमल कूं धोय करि, ले द्रौपदी प्रसाद।
अंतर सीना साफ होय, जरैं सकल अपराध।।110।।
गरीब, बाज्या शंख सुभान गति, कण कण भई अवाज।
स्वर्ग लोक बानी सुनी, त्रिलोकी में गाज।।111।।
गरीब, पंडौं यज्ञ अश्वमेघ में, आये नजर निहाल।
जम राजा की बंधि में, खल हल पर्‌या कमाल।।113।।

सत ग्रन्थ साहिब पृष्ठ नं. 328

।।पारख का अंग।।

गरीब, सुपच शंक सब करत हैं, नीच जाति बिश चूक।
पौहमी बिगसी स्वर्ग सब, खिले जो पर्वत रूंख।
गरीब, करि द्रौपदी दिलमंजना, सुपच चरण जी धोय।
बाजे शंख सर्व कला, रहे अवाजं गोय।।
गरीब, द्रौपदी चरणामृत लिये, सुपच शंक नहीं कीन।
बाज्या शंख असंख धुनि, गण गंधर्व ल्यौलीन।।
गरीब, फिर पंडौं की यज्ञ में, संख पचायन टेर।
द्वादश कोटि पंडित जहां, पडी सभन की मेर।।
गरीब, करी कृष्ण भगवान कूं, चरणामृत स्यौं प्रीत।
शंख पंचायन जब बज्या, लिया द्रोपदी सीत।।
गरीब, द्वादश कोटि पंडित जहां, और ब्रह्मा विष्णु महेश।
चरण लिये जगदीश कूं, जिस कूं रटता शेष।।
गरीब, बालमीक के बाल समि, नाहीं तीनौं लोक।
सुर नर मुनि जन कृष्ण सुधि, पंडौं पाई पोष।।
गरीब, बाल्मीक बैंकुठ परि, स्वर्ग लगाई लात।
संख पचायन घुरत हैं, गण गंर्धव ऋषि मात।।
गरीब, स्वर्ग लोक के देवता, किन्हैं न पूर्‌या नाद।
सुपच सिंहासन बैठतैं, बाज्या अगम अगाध।।
गरीब, पंडित द्वादश कोटि थे, सहिदे से सुर बीन।
संहस अठासी देव में, कोई न पद में लीन।
गरीब, बाज्या संख स्वर्ग सुन्या, चौदह भवन उचार।
तेतीसौं तत्त न लह्या, किन्हैं न पाया पार।।

।। सतनाम व सारनाम बिना सर्व साधना व्यर्थ।।

यज्ञ संवाद में स्वयं कृष्ण भगवान कहते हैं कि युधिष्ठिर ये सर्व भेष धारी व सर्व ऋषि, सिद्ध, देवता, ब्राह्मण आदि सब पाखण्डी लोग हैं। इनके अन्दर भाव भक्ति नहीं है। सिर्फ दिखावा करके दुनियां के भोले-भाले भक्तों को अपनी महिमा जनाए बैठे हैं। कृप्या पाठक विचार करें कि वह समय द्वापर युग का था उस समय के संत बहुत ही अच्छे साधु थे क्योंकि आज से साढे पांच हजार वर्ष पूर्व

आम व्यक्ति के विचार भी नेक होते थे। आज से 30,40 वर्ष पहले आम व्यक्ति के विचार आज की तुलना में बहुत अच्छे होते थे। इसकी तुलना को साढे पांच हजार वर्ष पूर्व का विचार करें तो आज के संतों-साधुओं से उस समय के सन्यासी साधु बहुत ही उच्च थे। फिर भी स्वयं भगवान ने कहा ये सब पशु हैं, शास्त्रविधि अनुसार उपासना करने वाले उपासक नहीं हैं। यही कड़वी सच्चाई गरीबदास जी महाराज ने षटदर्शन घमोड़ बहदा तथा बहदे के अंग में, तक्र वेदी में, सुख सागर बोध में तथा आदि पुराण के अंग में कही है कि जो साधना यह साधक कर रहे हैं वह सत्यनाम व सारनाम बिना बहदा (अनावश्यक) है।

।। षटदर्शन घमोड़ बहदा।।
(सत ग्रन्थ साहिब पृष्ठ नं. 534)

षट दर्शन षट भेष कहावैं, बहुविधि धूंधू धार मचावैं।
तीरथ ब्रत करैं तरबीता, वेद पुराण पढ़त हैं गीता।।
चार संप्रदा बावन द्वारे, जिन्हौं नहीं निज नाम बिचारे।
माला घालि हूये हैं मुकता, षट दल ऊवा बाई बकता।।
बैरागी बैराग न जानैं, बिन सतगुरु नहीं चोट निशानैं।
बारह बाट बिटंब बिलौरी, षट दर्शन में भक्ति ठगौरी।।
सन्यासी दश नाम कहावैं, शिव शिव करैं न शंशय जावैं।
निर्बानी निहकछ निसारा, भूलि गये हैं ब्रह्म द्वारा।।
सुनि सन्यासी कुल कर्म नाशी, भगवैं प्यौंदी भूले द्यौंहदी।
छल छिद्र की भक्ति न कीजै, आगै जुवाब कहों क्या दीजै।।
भ्रम कर्म भैरौं कूं पूजैं, सत्य शब्द साहिब नहीं सूझैं।
माला मुकटी ककड हुकटी, बांना गौड़ी भांग भसौड़ी।।
जती जलाली पद बिन खाली, नाम न रता घोरी घता।
मढी बसंता ओढे कंथा, वनफल खावैं नगर न जावैं।।
हाथौं करुवा काँधे फरुवा, खौलि बनावैं सिद्ध कहावैं।
भूले जोगी रिद्धि के रोगी, कान चिरावैं भस्म रमावैं।।
तपा अकाशी बारह मासी, मौंनी पीठी पंच अंगीठी।
कन्द कपाली अंदर खाली, बाहर सिद्धा ये हैं गद्धा।।
यौह बी बहदा है — — — — — — — —।।

।। अथ बहदे का ग्रन्थ।।
(सतग्रन्थ साहिब पृष्ठ नं. 536)

खाखी और निर्बानी नागा, सिद्ध जमात चलावैं है। रणसींगे तुरही तुतकारा, गागड भांग घुटावैं हैं।।
यौह बी बहदा है — — — — — — — —।।
काशी गया प्रयाग महोदधि, जगन्नाथ कूं जावैं हैं।
लौहा गर और पुष्कर परसे, द्वारा दाग दगावैं हैं।।
यौह बी बहदा है — — — — — — — —।।
तीर तुपक तरवार कटारी, जम धड जोर बंधावैं हैं।
हरि पैड़ी हरि हेत न जान्या, वहां जाय तेग चलावैं हैं।।
यौह बी बहदा है — — — — — — — —।।
काटैं शीश नहीं दिल करुणा, जग में साध कहावैं हैं।
जो नर जाके दर्शन जाहीं, तिस कूं भी नरक पठावैं हैं।।
यौह बी बहदा है — — — — — — — —।।

।।कुंभ के मेले में प्रथम स्नान करने पर कत्ले आम।।

एक समय हरिद्वार में कुंभ का मेला लगा। उसमें नागा महात्माओं (तमगुण श्री शिव जी के उपासकों)तथा वैष्णों (सतगुण श्री विष्णु जी के उपासकों) संतों का प्रथम स्नान करने के लिए झगड़ा हुआ। जिसमें 25 हजार नकली संत तलवारों व छुरों से आपस में लड़ कर मर गए। अनजान व्यक्ति इन्हें महात्मा समझता है परंतु सतनाम तथा सारनाम बिना जीव विकार ग्रस्त ही रहता है। चाहे कितना ही सिद्धि युक्त क्यों न हो जाए। जैसे दुर्वासा जी ने बच्चों के मजाक करने मात्र से शाप दिया जिससे भगवान कृष्ण व यादव कुल नष्ट हो गया।

ऋषि वशिष्ठ जी, ऋषि विश्वामित्र जी को राज ऋषि कह कर पुकारते थे। जिस से विश्वामित्र जी अपमान समझते थे तथा वशिष्ठ जी से कहते थे कि आप मुझे ब्रह्म ऋषि कहो परन्तु वशिष्ठ उन्हें राज ऋषि ही कह कर सम्बोधित करते थे। इस इर्ष्या वश विश्वामित्र जी ने वशिष्ठ जी के सौ पुत्रों की हत्या कर दी। एक बार रात्री के समय श्री विश्वामित्र जी ऋषि वशिष्ठ की हत्या करने के उद्देश्य से उसी वृक्ष पर छुप कर बैठ गया। जिस वृक्ष के नीचे वशिष्ठ जी सन्धया आरती करते थे। संध्या आरती के पश्चात् उपस्थित शिष्यों ने वशिष्ठ जी से कहा हे गुरूदेव! विश्वामित्र बड़ा दुष्ट है जिसने हमारे सौ गुरू भाईयों की हत्या कर दी। तब वासिष्ठ जी ने कहा बच्चों! विश्वामित्र जैसा महान ऋषि एक भी नहीं है यदि उनमें अभिमान तथा क्रोध न हो। अपने शत्रु के द्वारा अपनी प्रसंशा सुनकर ऋषि विश्वामित्र आत्मविभोर हो गए तथा ऊपर से टहनी पकड़ कर रोते हुए वृक्ष से नीचे उतरे तथा वाशिष्ठ जी के चरण पकड़ कर अपने कुकृत्य की क्षमा याचना की। तब ऋषि वाशिष्ठ जी ने ऋषि विश्वामित्र जी से कहा आओं ब्रह्म ऋषि। आज आप में अभिमान व क्रोध का नामोनिशान नहीं है। आज आप ब्रह्म ऋषि बने हो तो आगे से मैं ब्रह्म ऋषि कह के पुकारूंगा।

विचार करें:-- ऋषि विश्वामित्र जी ने बारह वर्ष घोर तप करके चमत्कारिक शाक्ति प्राप्त की। जिससे अपने भक्त त्रिशंकु के लिए अलग से स्वर्ग रचना करने को तैयार हो गए थे। स्वर्ग के राजा इन्द्र की प्रार्थना पर तथा त्रिशंकु को इन्द्र द्वारा स्वर्ग में स्थान देने की स्वीकृति के उपरान्त उद्देश्य बदला था। फिर भी अभिमान व इर्षावश वशिष्ठ के मासूम बच्चों की हत्या कर डाली। इसीलिए कहा है कि ये सर्व साधक सत्य साधना रहित हैं। मुक्त नहीं हो सकते।S

संपट शिला कूं साहिब कहते, चेतनसार चलावैं हैं।
अंधा जगत पूजारी जाका, दूनिया कै मन भावैं हैं।।
पारख लीजै शब्द पतीजै, शालिग शिला पूजावैं हैं।
तुलसी तोरि मरोरैं मूरख, जड़ पर फूल चढावैं हैं।।
ककड़ भांग तमाखू पीवैं, बकरे काटि तलावै हैं।
सन्यासी शंकर कूं भूले, बंब महादे ध्यावैं हैं।।
ये दश नाम दया नहीं जानै, गेरु कपड रंगावैं हैं।
पार ब्रह्म सैं परचे नांहि, शिव करता ठहरावैं हैं।।
धूमर पान आकाश मुनी मुख, सुच्चित आसन लावैं हैं।
या तपसेती राजा होई, द्वंद धार बह जावैं हैं।।
आसन करै कपाली ताली, ऊपर चरण हलावैं हैं।
अजपा सेती मरहम नांहीं, सब दम खाली जावैं हैं।।
चार संप्रदा बावन द्वारे, वैरागी अब जावैं हैं।
कूड़े भेष काल का बाना, संतौं देखि रिसावैं हैं।।
त्रिकाली अस्नान करैं, फिर द्वादस तिलक बनावैं हैं।

जल के मच्छा मुक्ति न होई, निश दिन प्रवी न्हावैं हैं।।
सालोक, सामिप्य, सायुज्य,सारूप कहलावैं हैं।
चार मुक्ति में महरम नांही, आगे की क्या पावैं हैं।।
विश्वामित्र सुनि विस्तारा, सौ पुत्र बशिष्ट के मारा।
राज ऋषि सैं बहुत रिसाये, ब्रह्म ऋषि सै रीझ रिझाये।।
ज्ञान बिचित्र जोग अपारा, सर्व लक्षण सब से शिरदारा।
ऋग यजु साम अथर्वण भाषै। जामे नाम मूल नहीं राखैं।।
यौह बी बहदा है — — — — — — — ।।
काया माया पिण्ड रु प्राणा, जामैं बसै अलह रहिमाना।
दासगरीब मिहरसैं पाईये, देवल धाम न भटका खाईये।।

❑❑❑

।।सतरहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ सप्तदशोऽध्यायः

विशेष :- अर्जुन ने पूछा कि हे भगवन! शास्त्र विधि को त्याग कर साधना करने वालों अर्थात् तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी) तथा इनसे भी नीचे भूत-पितर, यक्ष, भैरव आदि की साधना करने वालों का स्वभाव कैसा होता है?

अध्याय 17 का श्लोक 1 (अर्जुन उवाच)

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः। १।

ये, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, यजन्ते, श्रद्धया, अन्विताः,
तेषाम्, निष्ठा, तु, का, कृष्ण, सत्त्वम्, आहो, रजः, तमः।।1।।

अनुवाद : (कृष्ण) हे कृष्ण! (ये) जो मनुष्य (शास्त्रविधिम्) शास्त्रविधिको (उत्सृज्य) त्यागकर (श्रद्धया) श्रद्धासे (अन्विताः) युक्त हुए (यजन्ते) देवादिका पूजन करते है (तेषाम्) उनकी (निष्ठा) स्थिति (तु) फिर (का) कौन-सी (सत्त्वम्) सात्विकी है (आहो) अथवा (रजः) राजसी (तमः) तामसी? (1)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे कृष्ण! जो मनुष्य शास्त्रविधिको त्यागकर श्रद्धासे युक्त हुए देवादिका पूजन करते है उनकी स्थिति फिर कौन-सी सात्विकी है अथवा राजसी तामसी? (1)

विशेष :- अध्याय 17 श्लोक 2 से 22 तक उन शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण अर्थात् अपने-अपने स्वभाववश साधना करने वाले साधकों द्वारा किए जाने वाले धार्मिक पूजाओं का वर्णन है जिसको गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में व्यर्थ कहा है। इसी लिए अर्जुन ने उपरोक्त इसी अध्याय 17 के श्लोक 1 में पूछा है, उसी का उत्तर देते हुए प्रभु ने कहा है कि जिस साधक का पिछले मनुष्य जीवन में जैसा स्वभाव था उसी का प्रभाव कभी फिर मनुष्य जन्म प्राप्त होता है वह उसी भाव में भावित रहता है। समझाने से भी नहीं मानता, उसे राक्षस स्वभाव के जान। ऐसे साधकों का विवरण गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तक पूर्ण व्याख्या के साथ कहा है। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 8 श्लोक 5-6 में स्पष्ट किया है। इस अध्याय 17 के श्लोक 2 से 22 तक भले ही एक-दूसरे की तुलना का विवरण कहा है फिर भी शास्त्र विधि रहित ही है। जिस कारण श्रेयकर नहीं है। इस अध्याय 17 श्लोक 23 से अन्तिम 28 तक पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति का विवरण है, जिसके लिए गीता अध्याय 4 श्लोक 34 व अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 में विशेष प्रमाण है।

अध्याय 17 का श्लोक 2 (भगवान उवाच)

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु। २।

त्रिविधा, भवति, श्रद्धा, देहिनाम्, सा, स्वभावजा,
सात्त्विकी, राजसी, च, एव, तामसी, च, इति, ताम्, श्रृणु।।2।।

अनुवाद : (देहिनाम्) मनुष्योंकी (सा) वह (स्वभावजा) स्वभावसे उत्पन्न (श्रद्धा) श्रद्धा

(सात्त्विकी) सात्विकी (च) और (राजसी) राजसी (च) तथा (तामसी) तामसी (इति) ऐसे (त्रिविधा) तीनों प्रकारकी (एव) ही (भवति) होती है। (ताम्) उस अज्ञान अंधकार रूप जंजाल को (श्रृणु) सुन। (2)

केवल हिन्दी अनुवाद : मनुष्योंकी वह स्वभावसे उत्पन्न श्रद्धा सात्विकी और राजसी तथा तामसी ऐसे तीनों प्रकारकी ही होती है। उस अज्ञान अंधकार रूप जंजाल को सुन। (2)

अध्याय 17 का श्लोक 3

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः। ३ ।

सत्त्वानुरूपा, सर्वस्य, श्रद्धा, भवति, भारत्,

श्रद्धामयः, अयम्, पुरुषः, यः, यच्छ्रद्धः, सः, एव, सः।।3।।

अनुवाद : (भारत्) हे भारत!(सर्वस्य) सभी की (श्रद्धा) श्रद्धा (सत्त्वानुरूपा) उनके अन्तःकरणके अनुरूप (भवति) होती है। (अयम्) यह (पुरुषः) व्यक्ति (श्रद्धामयः) श्रद्धामय है इसलिये (यः) जो पुरुष (यच्छ्रद्धः) जैसी श्रद्धावाला है, (सः) वह स्वयं (एव) वास्तव में (सः) वही है। (3)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे भारत! सभी की श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है। यह व्यक्ति श्रद्धामय है इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं वास्तव में वही है। (3)

अध्याय 17 का श्लोक 4

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः।

प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः। ४ ।

यजन्ते, सात्विकाः, देवान्, यक्षरक्षांसि, राजसाः,

प्रेतान्, भूतगणान्, च, अन्ये, यजन्ते, तामसाः, जनाः।।4।।

अनुवाद : (सात्विकाः) सात्विक पुरुष (देवान्) श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी आदि देवताओं को (यजन्ते) पूजते हैं, (राजसाः) राजस पुरुष (यक्षरक्षांसि) यक्ष और राक्षसोंको तथा (अन्ये) अन्य जो (तामसाः) तामस (जनाः) मनुष्य हैं वे (प्रेतान्) प्रेत (च) और (भूतगणान्) भूतगणोंको (यजन्ते) पूजते हैं तथा मुख्य रूप से श्री शिव जी को भी इष्ट मानते हैं। (4)

केवल हिन्दी अनुवाद : सात्विक पुरुष श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी आदि देवताओं को पूजते हैं, राजस पुरुष यक्ष और राक्षसोंको तथा अन्य जो तामस मनुष्य हैं वे प्रेत और भूतगणोंको पूजते हैं तथा मुख्य रूप से श्री शिव जी को भी इष्ट मानते हैं। (4)

अध्याय 17 का श्लोक 5

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।

दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः। ५ ।

अशास्त्रविहितम्, घोरम्, तप्यन्ते, ये, तपः, जनाः,

दम्भाहंकारसंयुक्ताः, कामरागबलान्विताः।।5।।

अनुवाद : (ये) जो (जनाः) मनुष्य (अशास्त्रविहितम्) शास्त्रविधिसे रहित केवल मन माना (घोरम्) घोर (तपः) तपको (तप्यन्ते) तपते हैं तथा (दम्भाहंकारसंयुक्ताः) पाखण्ड और अहंकारसे युक्त एवं (कामरागबलान्विताः) कामना के आसक्ति और भक्ति बलके अभिमानसे भी युक्त हैं। (5)

केवल हिन्दी अनुवाद : जो मनुष्य शास्त्रविधिसे रहित केवल मन माना घोर तपको तपते हैं तथा पाखण्ड और अहंकारसे युक्त एवं कामना के आसक्ति और भक्ति बलके अभिमानसे भी युक्त हैं। (5)

अध्याय 17 का श्लोक 6

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्। ६ ।

कर्शयन्तः, शरीरस्थम्, भूतग्रामम्, अचेतसः, माम्,
च, एव, अन्तःशरीरस्थम्, तान्, विद्धि, आसुरनिश्चयान्।।6।।

अनुवाद : (शरीरस्थम्) शरीर में रहने वाले (भूतग्रामम्) प्राणियों के मुखिया - ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा गणेश व प्रकृति को व (माम्) मुझे (च) तथा (एव)इसी प्रकार (अन्तःशरीरस्थम्) शरीर के हृदय कमल में जीव के साथ रहने वाले पूर्ण परमात्मा को (कर्शयन्तः) परेशान करने वाले (तान्) उनको (अचेतसः) अज्ञानियोंको (आसुरनिश्चयान्) राक्षसस्वभाववाले (एव) ही (विद्धि) जान। गीता अध्याय 13 श्लोक 17 तथा अध्याय 18 श्लोक 61 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा विशेष रूप से सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित है। (6)

केवल हिन्दी अनुवाद : शरीर में रहने वाले प्राणियों के मुखिया - ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा गणेश व प्रकृति को व मुझे तथा इसी प्रकार शरीर के हृदय कमल में जीव के साथ रहने वाले पूर्ण परमात्मा को परेशान करने वाले उनको अज्ञानियोंको राक्षसस्वभाववाले ही जान। गीता अध्याय 13 श्लोक 17 तथा अध्याय 18 श्लोक 61 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा विशेष रूप से सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित है। (6)

अध्याय 17 का श्लोक 7

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु। ७ ।

आहारः, तु, अपि, सर्वस्य, त्रिविधः, भवति, प्रियः,
यज्ञः, तपः, तथा, दानम्, तेषाम्, भेदम्, इमम्, शृणु।।7।।

अनुवाद : (आहारः) भोजन (अपि) भी (सर्वस्य) सबको अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार (त्रिविधः) तीन प्रकारका (प्रियः) प्रिय (भवति) होता है (तु) इसलिए (तथा) वैसे ही (यज्ञः) यज्ञ (तपः) तप और (दानम्) दान भी तीन-तीन प्रकारके होते हैं (तेषाम्) उनके (इमम्) इस (भेदम्) भेदको तू मुझसे (शृणु) सुन। (7)

केवल हिन्दी अनुवाद : भोजन भी सबको अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार तीन प्रकारका प्रिय होता है इसलिए वैसे ही यज्ञ तप और दान भी तीन-तीन प्रकारके होते हैं उनके इस भेदको तू मुझसे सुन। (7)

अध्याय 17 का श्लोक 8

आयुःसत्त्वबलारोग्य-
सुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या-
आहाराः सात्त्विकप्रियाः। ८ ।

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः, रस्याः,
स्निग्धाः, स्थिराः, हृद्याः, आहाराः, सात्त्विकप्रियाः।।8।।

अनुवाद : (आयुःसत्त्वबल आरोग्य सुखप्रीति विवर्धनाः) आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले (रस्याः) रसयुक्त (स्निग्धाः) चिकने और (स्थिराः) स्थिर रहनेवाले तथा (हृद्याः) स्वभावसेही मनको प्रिय ऐसे (आहाराः) आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ (सात्त्विकप्रियाः) सतोगुण प्रधान अर्थात् विष्णु के उपासक को जिनका विष्णु उपास्य देव है। उनको ऊपर लिखे आहार करना पसंद होते हैं। (8)

केवल हिन्दी अनुवाद : आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले रसयुक्त चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसेही मनको प्रिय ऐसे आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ सतोगुण प्रधान अर्थात् विष्णु के उपासक को जिनका विष्णु उपास्य देव है। उनको ऊपर लिखे आहार करना पसंद होते हैं। (8)

अध्याय 17 का श्लोक 9

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः। ९ ।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः,
आहाराः, राजसस्य, इष्टाः, दुःखशोकामयप्रदाः।।9।।

अनुवाद : (कटुअम्ल लवण अत्युष्ण तीक्ष्ण रूक्ष विदाहिनः) कड़ुवे, खट्टे, लवणयुक्त बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और (दुःखशोक आमयप्रदाः) दुःख चिन्ता तथा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले (आहाराः) आहार (राजसस्य) राजस पुरुषको (इष्टाः) रजोगुण प्रधान अर्थात् जिनका ब्रह्मा उपास्य देव है उनको ऊपर लिखे आहार स्वीकार होते हैं। क्योंकि हिरणाकशिपु राक्षस ने ब्रह्मा की उपासना की थी। (9)

केवल अनुवाद : कड़ुवे, खट्टे, लवणयुक्त बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दुःख चिन्ता तथा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले आहार राजस पुरुषको रजोगुण प्रधान अर्थात् जिनका ब्रह्मा उपास्य देव है उनको ऊपर लिखे आहार स्वीकार होते हैं। क्योंकि हिरणाकशिपु राक्षस ने ब्रह्मा की उपासना की थी। (9)

अध्याय 17 का श्लोक 10

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्। १०।

यातयामम्, गतरसम्, पूति, पर्युषितम्, च, यत्,
उच्छिष्टम्, अपि, च अमेध्यम्, भोजनम्, तामसप्रियम्।।10।।

अनुवाद : (यत्) जो (भोजनम्) भोजन (यातयामम्) अधपका (गतरसम्) रसरहित (पूति) दुर्गन्धयुक्त (पर्युषितम्) बासी (च) और (उच्छिष्टम्) उच्छिष्ट है (च) तथा जो (अमेध्यम्) अपवित्र (अपि) भी है वह भोजन (तामसप्रियम्) तामस पुरुषको प्रिय होता है। तमोगुण प्रधान व्यक्तियों का उपास्य देव शिव है तथा वे उनसे निम्न स्तर के भूत प्रेतों को पूजते हैं उनको आहार ऊपर लिखित पसंद होता है। (10)

केवल हिन्दी अनुवाद : जो भोजन अधपका रसरहित दुर्गन्धयुक्त बासी और उच्छिष्ट है तथा

जो अपवित्र भी है वह भोजन तामस पुरुषको प्रिय होता है। तमोगुण प्रधान व्यक्तियों का उपास्य देव शिव है तथा वे उनसे निम्न स्तर के भूत प्रेतों को पूजते हैं उनको आहार ऊपर लिखित पसंद होता है। (10) {इस श्लोक 11 में शास्त्र विधि अनुसार पूर्ण संत से तीन मंत्र का जाप (जिनमें एक ओ3म नाम है तथा तत् – सत् सांकेतिक हैं) प्राप्त करके पाँचों यज्ञादि भी प्रतिफल इच्छा न करके करनी चाहियें, अन्यथा इच्छा रूपी की गई यज्ञ का फल पूर्ण नहीं है।}

अध्याय 17 का श्लोक 11

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः।११।

अफलाकाङ्क्षिभिः, यज्ञः, विधिदृष्टः, यः, इज्यते,
यष्टव्यम्, एव, इति, मनः, समाधाय, सः, सात्त्विकः।।11।।

अनुवाद : (यः) जो (विधिदृष्टः) शास्त्रविधिसे नियत (यज्ञः) यज्ञ (यष्टव्यम्, एव) करना ही कर्तव्य है (इति) इस प्रकार (मनः) मनको (समाधाय) समाधान करके (अफलाकाङ्क्षिभिः) फल न चाहनेवाले पुरुषोंद्वारा (इज्यते) किया जाता है (सः) वह (सात्त्विकः) सात्विक है। (11)

केवल हिन्दी अनुवाद : जो शास्त्रविधिसे नियत यज्ञ करना ही कर्तव्य है इस प्रकार मनको समाधान करके फल न चाहनेवाले पुरुषोंद्वारा किया जाता है वह सात्विक है। (11)

विशेष :- भले ही उपरोक्त श्लोक 11 में सात्विक यज्ञ का वर्णन भेद विधान अनुसार कहा है परन्तु गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में वर्णित तत्वदर्शी संत मिले बिना यह सात्विक साधना भी व्यर्थ है क्योंकि अध्याय 17 श्लोक 1 में अर्जुन ने शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण करने वालों के विषय में पूछा है जिसको गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में व्यर्थ बताया है। इसलिए यहाँ केवल स्वभाववश मनमाना आचरण करने वालों का ही विवरण चल रहा है। यह साधना भी व्यर्थ है।

अध्याय 17 का श्लोक 12

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्।१२।

अभिसन्धाय, तु, फलम्, दम्भार्थम्, अपि, च, एव, यत्,
इज्यते, भरतश्रेष्ठ, तम्, यज्ञम्, विद्धि, राजसम्।।12।।

अनुवाद : (तु) परंतु (भरतश्रेष्ठ) हे अर्जुन! (दम्भार्थम्, एव) केवल दम्भाचरण के ही लिये (च) अथवा (फलम्) फलको (अपि) भी (अभिसन्धाय) दृष्टिमें रखकर (यत्) जो यज्ञ (इज्यते) किया जाता है (तम्) अंधेरे वाले नरक में ले जाने वाली (यज्ञम्) यज्ञ अर्थात् धार्मिक अनुष्ठान को (राजसम्) राजस (विद्धि) जान। (12)

केवल हिन्दी अनुवाद : परंतु हे अर्जुन! केवल दम्भाचरण के ही लिये अथवा फलको भी दृष्टिमें रखकर जो यज्ञ किया जाता है अंधेरे वाले नरक में ले जाने वाली यज्ञ अर्थात् धार्मिक अनुष्ठान को राजस जान। (12)

अध्याय 17 का श्लोक 13

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते।१३।

विधिहीनम्, असृष्टान्नम्, मन्त्रहीनम्, अदक्षिणम्,
श्रद्धाविरहितम्, यज्ञम्, तामसम्, परिचक्षते।।13।।

अनुवाद : (विधिहीनम्) शास्त्रविधिसे रहित (असृष्टान्नम्) अन्नदानसे रहित (मन्त्रहीनम्) बिना वास्तवकि मन्त्रोंके (अदक्षिणम्) बिना दक्षिणा के, बिना दीक्षा-उपदेश लिए और (श्रद्धाविरहितम्) बिना श्रद्धाके किये जानेवाले (यज्ञम्) अर्थात् धार्मिक अनुष्ठान को (तामसम्) तामस यज्ञ (परिचक्षते) कहते हैं। (13)

केवल हिन्दी अनुवाद : शास्त्रविधिसे रहित अन्नदानसे रहित बिना वास्तवकि मन्त्रोंके बिना दक्षिणा के, बिना दीक्षा-उपदेश लिए और बिना श्रद्धाके किये जानेवाले अर्थात् धार्मिक अनुष्ठान को तामस यज्ञ कहते हैं। (13)

अध्याय 17 का श्लोक 14

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।१४।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्, शौचम्, आर्जवम्,
ब्रह्मचर्यम्, अहिंसा, च, शारीरम्, तपः, उच्यते।।14।।

अनुवाद : (देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्) दैवी वृति वाले व्यक्ति अर्थात संत, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनोंका आदर (शौचम्) पवित्रता (आर्जवम्) आधीनी (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य (च) और (अहिंसा) अहिंसा यह (शारीरम्) शरीरसम्बन्धी (तपः) तप (उच्यते) कहा जाता है। परन्तु सर्व शास्त्र विधि रहित है जिस कारण से व्यर्थ साधना है। क्योंकि गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण करने को व्यर्थ बताया है। (14)

केवल हिन्दी अनुवाद : दैवी वृति वाले व्यक्ति अर्थात संत, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनोंका आदर पवित्रता आधीनी ब्रह्मचर्य और अहिंसा यह शरीरसम्बन्धी तप कहा जाता है। परन्तु सर्व शास्त्र विधि रहित है जिस कारण से व्यर्थ साधना है। क्योंकि गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण करने को व्यर्थ बताया है। (14)

अध्याय 17 का श्लोक 15

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।१५।

अनुद्वेगकरम्, वाक्यम्, सत्यम्, प्रियहितम्, च, यत्,
स्वाध्यायाभ्यसनम्, च, एव, वाङ्मयम्, तपः, उच्यते।।15।।

अनुवाद : (यत्) जो (अनुद्वेगकरम्) उद्वेग न करनेवाला (प्रियहितम्) प्रिय और हितकारक (च) एवं (सत्यम्) यथार्थ (वाक्यम्) भाषण है (च) तथा जो (स्वाध्याय अभ्यसनम्) धार्मिक-शास्त्रोंके पठनका एवं परमेश्वरके नाम जापका अभ्यास (एव) ही (वाङ्मयम्) वाणीसम्बन्धी (तपः) तप (उच्यते) कहा जाता है। (15)

केवल हिन्दी अनुवाद : जो उद्वेग न करनेवाला प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो धार्मिक-शास्त्रोंके पठनका एवं परमेश्वरके नाम जापका अभ्यास ही वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है। (15)

अध्याय 17 का श्लोक 16

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।१६।

मनः प्रसादः, सौम्यत्वम्, मौनम्, आत्मविनिग्रहः,
भावसंशुद्धिः, इति, एतत्, तपः, मानसम्, उच्यते।।16।।

अनुवाद : (मनःप्रसादः) मनकी प्रसन्नता (सौम्यत्वम्) शान्तभाव (मौनम्) भगवान की चर्चा के ईलावा अन्य सांसारिक बातों में चुपी (आत्मविनिग्रहः) प्रत्येक विचार का निग्रह और (भावसंशुद्धिः) भावोंकी भलीभाँति पवित्रता (इति) इस प्रकार (एतत्) यह (मानसम्) मन सम्बन्धी (तपः) तप (उच्यते) कहा जाता है। (16)

केवल हिन्दी अनुवाद : मनकी प्रसन्नता शान्तभाव भगवान की चर्चा के ईलावा अन्य सांसारिक बातों में चुपी प्रत्येक विचार का निग्रह और भावोंकी भलीभाँति पवित्रता इस प्रकार यह मन सम्बन्धी तप कहा जाता है। (16)

अध्याय 17 का श्लोक 17

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते।१७।

श्रद्धया, परया, तप्तम्, तपः, तत्, त्रिविधम्, नरैः,
अफलाकाङ्क्षिभिः, युक्तैः, सात्त्विकम्, परिचक्षते।।17।।

अनुवाद : (अफलाकाङ्क्षिभिः) फलको न चाहनेवाले (युक्तैः) शास्त्रविधि अनुसार भक्ति में लीन (नरैः) पुरुषोंद्वारा (परया) परम (श्रद्धया) श्रद्धासे (तप्तम्) तपे हुए (तत्) उस पूर्वोक्त (त्रिविधम्) तीन प्रकारके (तपः) तपको (सात्त्विकम्) सात्विक (परिचक्षते) कहते हैं। (17)

केवल हिन्दी अनुवाद : फलको न चाहनेवाले शास्त्रविधि अनुसार भक्ति में लीन पुरुषोंद्वारा परम श्रद्धासे तपे हुए उस पूर्वोक्त तीन प्रकारके तपको सात्विक कहते हैं। (17)

अध्याय 17 का श्लोक 18

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्।१८।

सत्कारमानपूजार्थम्, तपः, दम्भेन, च, एव, यत्,
क्रियते, तत्, इह, प्रोक्तम्, राजसम्, चलम्, अध्रुवम्।।18।।

अनुवाद : (यत्) जो (तपः) तप (सत्कारमानपूजार्थम्) सत्कार मान रूपी पूजाके लिये (एव) ही (च) और (दम्भेन) पाखण्डसे (क्रियते) किया जाता है (तत्) वह (अध्रुवम्) अस्थाई (चलम्)नाशवान तप (इह) यहाँ (राजसम्)राजस (प्रोक्तम्)कहा गया है। (18)

केवल हिन्दी अनुवाद : जो तप सत्कार मान रूपी पूजाके लिये ही और पाखण्ड से किया जाता है वह अस्थाई नाशवान तप यहाँ राजस कहा गया है। (18)

अध्याय 17 का श्लोक 19

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्।१९।

मूढग्राहेण, आत्मनः, यत्, पीडया, क्रियते, तपः,
परस्य, उत्सादनार्थम्, वा, तत्, तामसम्, उदाहृतम्।।19।।

अनुवाद : (यत्) जो (तपः) तप (मूढग्राहेण) मूढतापूर्वक हठसे (आत्मनः)अपने मन, वाणी और शरीरकी (पीडया) पीड़ाके सहित (वा) अथवा (परस्य) दूसरेका (उत्सादनार्थम्) अनिष्ट करनेके लिये (क्रियते) किया जाता है (तत्) वह तप (तामसम्) तामस (उदाहृतम्) कहा गया है। (इसी का प्रमाण गीता अध्याय 3 श्लोक 6 में भी है।) (19)

अध्याय 17 का श्लोक 20

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्। २०।

दातव्यम्, इति, यत्, दानम्, दीयते, अनुपकारिणे,
देशे, काले, च, पात्रे, च, तत्, दानम्, सात्त्विकम्, स्मृतम्।।20।।

अनुवाद : (दातव्यम्) दान देना ही कर्तव्य है (इति) ऐसे भावसे (यत्) जो (दानम्) दान (देशे च काले) समय और स्थिति (च) और (पात्रे) दान देने योग्य व्यक्ति के प्राप्त होने पर (अनुपकारिणे) उसके बदले में अपनी भलाई अर्थात् फल की इच्छा न रखते हुए (दीयते) दिया जाता है (तत्) वह (दानम्) दान (सात्त्विकम्) सात्विक (स्मृतम्) कहा गया है। (20)

केवल हिन्दी अनुवाद : दान देना ही कर्तव्य है ऐसे भावसे जो दान समय और स्थिति और दान देने योग्य व्यक्ति के प्राप्त होने पर उसके बदले में अपनी भलाई अर्थात् फल की इच्छा न रखते हुए दिया जाता है वह दान सात्विक कहा गया है। (20)

अध्याय 17 का श्लोक 21

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्। २१।

यत्, तु, प्रत्युपकारार्थम्, फलम्, उद्दिश्य, वा, पुनः,
दीयते, च, परिक्लिष्टम्, तत्, दानम्, राजसम्, स्मृतम्।।21।।

अनुवाद : (तु) किंतु (यत्) जो दान (प्रत्युपकारार्थम्) बदले में लाभ के लिए (वा) अथवा (पुनः) फिर (फलम्) फलके (उद्दिश्य) उदे्श्य (दीयते) दिया जाता है (च) तथा (परिक्लिष्टम्) क्लेशपूर्वक अर्थात् न चाहते हुए पर्ची काटने पर दुःखी मन से दिया जाता है (तत्) वह (दानम्) दान (राजसम्) राजस (स्मृतम्) कहा गया है। (21)

केवल हिन्दी अनुवाद : किंतु जो दान बदले में लाभ के लिए अथवा फिर फलके उदे्श्य दिया जाता है तथा क्लेशपूर्वक अर्थात् न चाहते हुए पर्ची काटने पर दुःखी मन से दिया जाता है वह दान राजस कहा गया है। (21)

अध्याय 17 का श्लोक 22

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्। २२।

अदेशकाले, यत्, दानम्, अपात्रेभ्यः, च, दीयते,
असत्कृतम्, अवज्ञातम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम्।।22।।

अनुवाद : (यत्) जो (दानम्) दान (अवज्ञातम्) गुरु की आज्ञा का उलंघन करके (असत्कृतम्) अनादर करके (च) और (अदेशकाले) अनुचित समय स्थिति में (अपात्रेभ्यः) पूर्ण गुरु के बिना कुपात्र को (दीयते) दिया जाता है (तत्) वह दान (तामसम्) तामस (उदाहृतम्) कहा गया है। (22)

केवल हिन्दी अनुवाद : जो दान गुरु की आज्ञा का उलंघन करके अनादर करके और अनुचित समय स्थिति में पूर्ण गुरु के बिना कुपात्र को दिया जाता है वह दान तामस कहा गया है। (22)

विशेष :- निम्न श्लोक 23 से 28 तक पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति का विवरण कहा है तथा उसके लिए विशेष विवरण गीता अध्याय 8 श्लोक 5 से 10 व 12-13 अध्याय 4 श्लोक 34 व अध्याय 15 श्लोक1 से 4 व अध्याय 18 श्लोक 61,62,64,66 में विस्तृत कहा है।

अध्याय 17 का श्लोक 23

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा। २३।

ॐ, तत्, सत्, इति, निर्देशः, ब्रह्मणः, त्रिविधः, स्मृतः,
ब्राह्मणाः, तेन, वेदाः, च, यज्ञाः, च, विहिताः, पुरा।।23।।

अनुवाद : (ॐ)ओं मन्त्र ब्रह्म का(तत्) तत् यह सांकेतिक मंत्र परब्रह्म का (सत्) सत् यह सांकेतिक मन्त्र पूर्णब्रह्म का है (इति) ऐसे यह (त्रिविधः) तीन प्रकार के (ब्रह्मणः) पूर्ण परमात्मा के नाम सुमरण का (निर्देशः) आदेश (स्मृतः) कहा है (च) और (पुरा) सृष्टिके आदिकालमें (ब्राह्मणाः) विद्वानों ने (तेन) उसी (वेदाः) तत्वज्ञान के आधार से वेद (च) तथा (यज्ञाः) यज्ञादि (विहिताः) रचे। उसी आधार से साधना करते थे। (23)

केवल हिन्दी अनुवाद : ओं मन्त्र ब्रह्म का तत् यह सांकेतिक मंत्र परब्रह्म का सत् यह सांकेतिक मन्त्र पूर्णब्रह्म का है ऐसे यह तीन प्रकार के पूर्ण परमात्मा के नाम सुमरण का आदेश कहा है और सृष्टिके आदिकालमें विद्वानों ने उसी तत्वज्ञान के आधार से वेद तथा यज्ञादि रचे। उसी आधार से साधना करते थे। (23)

अध्याय 17 का श्लोक 24

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्। २४।

तस्मात्, ओम्, इति, उदाहृत्य, यज्ञदानतपःक्रियाः,
प्रवर्तन्ते, विधानोक्ताः, सततम्, ब्रह्मवादिनाम्।।24।।

अनुवाद : (तस्मात्) इसलिये (ब्रह्मवादिनाम्) भगवान की स्तुति करनेवालों तथा (विधानोक्ताः) शास्त्रविधिसे नियत क्रियाऐं बताने वालों की (यज्ञदानतपःक्रियाः) यज्ञ, दान और तप व स्मरण क्रियाएँ (सततम्) सदा (ओम्) 'ऊँ' (इति) इस नामको (उदाहृत्य) उच्चारण करके ही (प्रवर्तन्ते) आरम्भ होती हैं अर्थात् तीनों नामों के जाप में ओं से ही स्वांस द्वारा प्रारम्भ किया जाता है। (24)

केवल हिन्दी अनुवाद : इसलिये भगवान की स्तुति करनेवालों तथा शास्त्रविधिसे नियत क्रियाऐं बताने वालों की यज्ञ, दान और तप व स्मरण क्रियाएँ सदा 'ऊँ' इस नामको उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं अर्थात् तीनों नामों के जाप में ओं से ही स्वांस द्वारा प्रारम्भ किया जाता है। (24)

अध्याय 17 का श्लोक 25

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः। २५।

तत्, इति, अनभिसन्धाय, फलम्, यज्ञतपःक्रियाः,
दानक्रियाः, च, विविधाः, क्रियन्ते, मोक्षकाङ्क्षिभिः।।25।।

अनुवाद : (तत्) अक्षर पुरूष अर्थात् परब्रह्म के तत् मन्त्र के जाप (इति) पर स्वांस इति अर्थात् अन्त होता है तथा (फलम्) फलको (अनभिसन्धाय) न चाहकर (विविधाः) नाना प्रकारकी (यज्ञतपःक्रियाः) यज्ञ, तपरूप क्रियाएँ (च) तथा (दानक्रियाः) दानरूप क्रियाएँ (मोक्षकाङ्क्षिभिः) कल्याण की इच्छावाले अर्थात् केवल जन्म-मृत्यु से पूर्ण छुटकारा चाहने वाले पुरुषोंद्वारा (क्रियन्ते) की जाती हैं अर्थात् यह तत जाप ''सोहं'' मन्त्र है जो परब्रह्म का जाप मन्त्र है और सतनाम के स्वांस द्वारा जाप में तत् मन्त्र पर स्वांस का इति अर्थात् अन्त होता है। (25)

केवल हिन्दी अनुवाद : अक्षर पुरूष अर्थात् परब्रह्म के तत् मन्त्र के जाप पर स्वांस इति अर्थात् अन्त होता है तथा फलको न चाहकर नाना प्रकारकी यज्ञ, तपरूप क्रियाएँ तथा दानरूप क्रियाएँ कल्याण की इच्छावाले अर्थात् केवल जन्म-मृत्यु से पूर्ण छुटकारा चाहने वाले पुरुषोंद्वारा की जाती हैं अर्थात् यह तत जाप ''सोहं'' मन्त्र है जो परब्रह्म का जाप मन्त्र है और सतनाम के स्वांस द्वारा जाप में तत् मन्त्र पर स्वांस का इति अर्थात् अन्त होता है। (25)

अध्याय 17 का श्लोक 26

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते। २६।

सद्भावे, साधुभावे, च, सत्, इति, एतत्, प्रयुज्यते,
प्रशस्ते, कर्मणि, तथा, सत्, शब्दः, पार्थ, युज्यते।।26।।

अनुवाद : (सत्) 'सत्' (इति) यह सारनाम तत् मन्त्र के अन्त में (एतत्) इसी पूर्ण परमात्मा के नाम के साथ (सद्भावे) सत्यभावमें (च) और (साधुभावे) श्रेष्ठभावमें (प्रयुज्यते) प्रयोग किया जाता है (तथा) तथा (पार्थ) हे पार्थ! (प्रशस्ते) उत्तम (कर्मणि) कर्ममें ही (सत् शब्दः) सत् शब्द अर्थात् सारनाम का (युज्यते) प्रयोग किया जाता है अर्थात् पूर्वोक्त दोनों मन्त्रों ओं व तत् के अन्त में जोड़ा जाता है। (26)

केवल हिन्दी अनुवाद : 'सत्' यह सारनाम तत् मन्त्र के अन्त में इसी पूर्ण परमात्मा के नाम के साथ सत्यभावमें और श्रेष्ठभावमें प्रयोग किया जाता है तथा हे पार्थ! उत्तम कर्ममें ही सत् शब्द अर्थात् सारनाम का प्रयोग किया जाता है अर्थात् पूर्वोक्त दोनों मन्त्रों ओं व तत् के अन्त में जोड़ा जाता है। (26)

अध्याय 17 का श्लोक 27

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते। २७।

यज्ञे, तपसि, दाने, च, स्थितिः, सत्, इति, च, उच्यते,
कर्म, च, एव, तदर्थीयम्, सत्, इति, एव, अभिधीयते।।27।।

अनुवाद : (च) तथा (यज्ञे) यज्ञ (तपसि) तप (च) और (दाने) दानमें जो (स्थितिः) स्थिति है

(एव) भी (सत्) 'सत्' (इति) इस प्रकार (उच्यते) कही जाती हे (च) और (तदर्थीयम्) उस परमात्माके लिये किए हुए (कर्म) शास्त्र अनुकूल किया भक्ति कर्म में (एव) ही वास्तव में (सत्) सत् शब्द के (इति) अन्त में कोई अन्य शब्द (अभिधीयते) तत्वदर्शी संत द्वारा कहा जाता है। जैसे सत् साहेब, सतगुरू, सत् पुरूष, सतलोक, सतनाम आदि शब्द बोले जाते हैं। (27)

केवल हिन्दी अनुवाद : तथा यज्ञ तप और दानमें जो स्थिति है भी 'सत्' इस प्रकार कही जाती हे और उस परमात्माके लिये किए हुए शास्त्र अनुकूल किया भक्ति कर्म में ही वास्तव में सत् शब्द के अन्त में कोई अन्य शब्द तत्वदर्शी संत द्वारा कहा जाता है। जैसे सत् साहेब, सतगुरू, सत् पुरूष, सतलोक, सतनाम आदि शब्द बोले जाते हैं। (27)

अध्याय 17 का श्लोक 28

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह। २८।

अश्रद्धया, हुतम्, दत्तम्, तपः, तप्तम्, कृतम्, च, यत्,
असत्, इति, उच्यते, पार्थ, न, च, तत्, प्रेत्य, नो, इह।।28।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (अश्रद्धया) बिना श्रद्धा के (हुतम्) किया हुआ हवन (दत्तम्) दिया हुआ दान एवं (तप्तम्) तपा हुआ (तपः) तप (च) और (यत्) जो कुछ भी (कृतम्) किया हुआ शुभ कर्म है वह समस्त (असत्) 'असत्' अर्थात् व्यर्थ है (इति) इस प्रकार (उच्यते) कहा जाता है इसलिये (तत्) वह (नो) हमारे लिए न तो (इह) इस लोकमें लाभदायक है (च) और (न) न (प्रेत्य) मरनेके बाद ही। (28)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे अर्जुन! बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म है वह समस्त 'असत्' अर्थात् व्यर्थ है इस प्रकार कहा जाता है इसलिये वह हमारे लिए न तो इस लोकमें लाभदायक है और न मरनेके बाद ही। (28)

(इति अध्याय सतरहवाँ)

❑❑❑

अठारहवां अध्याय

।। सारांश।।

अध्याय 18 के श्लोक 1 से 3 तक में अर्जुन त्याग व सन्यास के बारे में पृथक-2 पूछता है। अध्याय नं 18 के श्लोक 4 में भगवान पहले त्याग के बारे में कह रहे हैं - त्याग तीन प्रकार का होता है। दान-यज्ञ-तप रूपी कर्म तो करते रहना चाहिए। तप का तात्पर्य है जैसे संयम रखना, राजा हरिश्चन्द्र की तरह सत्यवादी होना। इनका त्याग नहीं करना चाहिए। यज्ञ व दान फलों की इच्छा रहित करना चाहिए।

।। नम्रता के बिना भक्ति व्यर्थ।।

अध्याय 18 के श्लोक 17 का भावार्थ है कि -

गरीब, मैं मैं करै सो मारिये, तू तुं करै सो छूट वे। इस मार में होशियार, गधा बने कै ऊँट वे।।
हूं हूं करै सो गधा होई, मैं मैं करै बोक वे। बंदा बिसारे बंदगी, तो श्वान है सब लोक वे।।

रावण ने भक्ति के साथ-2 अभिमान भी किया जिसके परिणाम स्वरूप जिस लंका को वह चाहता था उसको भी नहीं रख सका तथा सपरिवार नष्ट हुआ। जबकि रावण का ही सोदर (सगा) भाई विभिषण जो पूर्ण परमात्मा सतपुरुष की भक्ति सतगुरु मुनिन्द्र साहिब से नाम उपदेश ले कर करता था और अपने गुरुदेव मुनिन्द्र (यही कबीर साहेब त्रेतायुग में मुनिन्द्र नाम से आए थे) जी के आदेशानुसार आधीनी भाव से (अहंकार रहित) परमेश्वर की साधना किया करता था। उसको भगवान रामचन्द्र जी ने लंका का राजा भी बना दिया। यह आधीनी भाव पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष) की विधिवत (मतानुसार) साधना का परिणाम हुआ। इसलिए इस श्लोक में यही प्रमाणित करना चाहा है कि जो लोग अभिमानी होते हैं उनका ईश्वर साथ नहीं देता और जो आधीन (विनम्र) होते हैं तथा शास्त्रानुकूल साधना करते हैं उनको परमात्मा यहाँ की सर्व सुविधाओं के साथ-साथ पूर्ण मुक्ति भी देता है।

दासभाव बिन लंका खोई, राज रसातल कुलह बिगोई।।
दास भाव बिन हार्‌या जन्मा, आशा तृष्णा रहि गई धनमां।।
सर्व सोने की लंका लोई, दास भाव बिन सर्वस खोई।।
गरीब, दास भाव बिन बहु गये, रावणसे रणधीर।
लंक बिलंका लुटि गई, जम कै परै जंजीर।।
दासातन हंसा कूं खेऊं, राज पाट बैकुण्ठा देऊं।
दास दर्श परमानंद होई, बिन दासातन मिलै न कोई।।
दासातन कीन्हा भगवाना, भृगुलता का उर में ध्याना।
विभीषण का भाग्य बडेरा, दासातन आय तिस नेरा।।
दासातन आया बिसवे बीसा, जाकौं लंक दई बक्षीसा।
ऐसा दासातन है भाई, लंक बकसतैं वार न लाई।।

।।पूर्ण गुरु से नाम लेने के बाद अनजाने में हुए पापों का दोष नहीं लगता।।

अध्याय 18 का श्लोक 5 से 28 तक का भाव है कि इस संसार में सर्व कर्म नहीं त्यागे जा सकते। जो घृणित कर्म (चोरी, जारी, शराब, सुल्फा, मांस आदि का सेवन करना) निंदा, झूठ, छुआ-छात, कटु वचन, त्यागने योग्य है तथा बच्चों का पालन-पोषण में जो कर्म (खेती करना उसमें

भी जीव हिंसा, खाना पकाना - उसमें सुक्ष्म जीव जलना, पैदल चलना - उसमें भी जीव मरते हैं आदि) होते हैं वे त्यागे नहीं जा सकते। उनका समाधान है गुरु बनाए। फिर -

इच्छा कर मारै नहीं, बिन इच्छा मर जाय। कहै कबीर तास का, पाप नहीं लगाय।।

जैसे किसी ड्राईवर से दुर्घटना (एक्सीडैंट) हो जाती है। यदि उसका लाईसैंस बना हो तो वह दोष मुक्त है। क्योंकि वह पूरा चालक है। गलती से तो दुर्घटना हुई नहीं। अन्य कोई कारण हो सकता है जिसमें वह दोषी नहीं। यदि कोई व्यक्ति बिना चालक लाईसैंस बनवाए गाड़ी चला रहा है तथा दुर्घटना हो जाए तो वह पूरा दोषी है। इसलिए जिसने नाम उपदेश ले रखा है वह घृणित कर्म नहीं करेगा। यदि अनजाने में जीव हिंसा हो जाती है तो वह दोषी नहीं है। यज्ञ दान आदि शुभ कर्म बिना फल की इच्छा से किए जाऐं तो वे साधक के कुछ पापों का विनाश करते हैं। इसलिए पाँचों यज्ञ विधिवत् अवश्य करने चाहिएं। ये त्यागने योग्य नहीं हैं। कोई अज्ञानी यह कहे कि मैंने दान किया, मैंने पाठ करवा दिया। उसे भक्ति भाव का व्यक्ति मत जान। वह मलिन बुद्धि वाला है। जब प्राणी पूर्ण संत के माध्यम से परमेश्वर (कविर्देव) की शरण में आ जाता है तब वही पूर्ण प्रभु पाप कर्म से होने वाली हानि रोक देता है। एक भक्त ने मुझ दास से उपदेश लिया। कहा कि प्रतिवर्ष 25000 (पच्चीस हजार) का खर्चा तो केवल दवाईयों आदि पर हो जाता था, अन्य हानि भी बहुत होती है। अब तीन वर्ष उपदेश लिए हो चुके हैं। अब सर्व को बताता है कि वर्ष भर में केवल 500 रूपये की दवाईयों का खर्चा होता है तथा अन्य हानि भी नाम मात्र ही है। अब वह पुण्यात्मा पाठ करवाता है। जिससे पाँचों यज्ञ (धर्म , ध्यान, हवन, प्रणाम, व ज्ञान) हो जाती हैं। वह वर्ष में दो बार तथा तीन बार भी पाठ करवा देता है। एक दिन दूसरे भक्त साथी ने कहा कि आप तो बहुत दान कर देते हो। उस भक्त ने कहा मैं दान करने योग्य कविरग्नि (कबीर परमेश्वर) ने बना दिया। मैं दान नहीं कर सकता था। मेरा सारा धन बीमार तथा अन्य पशु हानि में जाता था। जीव कुछ नहीं कर सकता। परमेश्वर ही करवा सकता है। यह पैसा तो पुण्य कर्म में लग रहा है। पहले व्यर्थ जा रहा था। मेरे मन में कभी भी नहीं आता कि मैं दान कर रहा हूँ, यह तो सर्व कृप्या बन्दी छोड़ भगवान कविरंघारि (पापविनाशक कविर् परमेश्वर) की है। मुझे तो केवल निमित बनाया है। इसी के प्रमाण में आदरणीय दादू साहेब जी कहते हैं :-

करे करावै साईयां, मन में लहर उठा। दादू सिर धर जीव के आप बगल हो जा।।

इसी प्रकर इस पवित्र गीता जी के ज्ञान को समझा जाएगा।

श्लोक 4 से 12 में कहा है कि शुभ कर्मों (यज्ञ, दान तथा तप) को नहीं त्यागना चाहिए। यहाँ हठ योग द्वारा किये जाने वाले तप के बारे में नहीं कहा है। जिस तप के विषय में गीता अध्याय 17 श्लोक 14 से 17 में कहा है उस तप के लिए कहा है जिस में लिखा है कि देव स्वरूप विद्वानों और तत्वदर्शी सन्त जनों की सेवा में पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा में जो संघर्ष व प्रयत्न किया जाता है। वह शरीर सम्बन्धी तप कहा जाता है। सत्य भाषण, शास्त्रों का पठन-पाठन वाणी सम्बन्धी तप है आदि-2 ।

।। गुण व स्वभाव वश कर्मों का विवरण।।

श्लोक 29 से 40 में कर्मों का प्रकार बताया है जो स्वाभाविक परहित में किए कर्म सात्विक होते हैं। जैसे कहीं बाढ आ जाए, उसके लिए यत्न सात्विक कर्म, यदि किसी की दुर्घटना हो जाए उसमें सहयोग सात्विक तथा लाभदायक है, तथा राजसी कर्मों का तात्पर्य है जैसे आपके द्वार पर कुत्ता आया। आपने पहले तो उसे रोटी का टुकड़ा डाला फिर उसे लट्ठ दे मारा। यह राजसी कर्म

है। फिर तामसी कर्म का अभिप्राय है कि किसी के द्वार पर कुत्ता आया, रोटी भी नहीं डाली, डंडा दे मारा, किसी का पशु भैंस या ऊँट या गाय या बैल शरारत करता है। उसको बंधे-2 दे लट्ठ-पै-लट्ठ अर्थात् बेरहमी से पीटना, बच्चों को थोड़े दोष पर अधिक सजा देना, किसी का पैसा लेकर नहीं दिया। मांगने आया तो गालियाँ व दुर्व्यवहार किया। गर्ज पड़े तो मृद भाषी, काम बन जाए तो आँखे दिखाना। यह तामस कर्म है जो ज्यादा हानिकारक है आदि-2 । अध्याय 18 के श्लोक 29 से 40 तक में भगवान ने गुणों के आधार पर मनुष्यों की वृत्तियों के स्वभाव का वर्णन किया है कि सतोगुण प्रधान व्यक्ति का स्वाभाविक कर्म कैसा है? रजोगुण प्रधान का कैसा कर्म तथा तमोगुण प्रधान का कैसा कर्म है?

यदि यह ज्ञान हो भी गया तो भी मुक्ति नहीं तथा यह भी भगवान स्पष्ट कह रहे हैं कि सर्व प्राणी स्वभाव वश कर्म कर रहे हैं। उन्हें समझाना व्यर्थ है। इसलिए जो बुद्धि जीवी प्राणी भगवत प्राप्ति चाहते हैं उनके लिए काल भगवान अगले श्लोकों में विवरण दे रहा है। गीता अध्याय 18 श्लोक 41 से 44 में चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य तथा शुद्र) के स्वभाविक कर्मों का उल्लेख है। श्लोक 45 में भगवान कह रहा है कि अपने-अपने स्वभाविक कर्मों में लगन से लगे हुए मनुष्य परमात्मा प्राप्ति रूप परम सिद्धी को प्राप्त होता है अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। इस का सम्बन्ध गीता अध्याय 5 श्लोक 2 से है। जिस प्रकार के कर्मों को करने से परम सिद्धि (भगवान की प्राप्ति करता है) उसको सुन अर्थात् अपने-2 भक्ति कर्मों के आधार पर जैसी भक्ति करता है वैसी ही उपलब्धि होती है। जिन भक्ति कर्मों से (पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति) परम सिद्धि होती है वह सुन। इसका वर्णन अध्याय 18 के श्लोक 46 में स्पष्ट है।

।। पूर्ण परमात्मा की शरण में जाने का प्रमाण।।

अध्याय 18 के श्लोक 46 में स्पष्ट करते हैं कि यदि व्यक्ति जन्म मृत्यु से पूर्ण छुटकारा चाहता है तो उस परमात्मा (पूर्णब्रह्म, परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् निःअक्षर) की शरण में जाकर पूर्ण गुरु से नाम लेकर आजीवन भक्ति करें तथा अनन्य मन से (अनन्य का तात्पर्य है केवल एक परमेश्वर पूर्णब्रह्म को मुख्य रखकर पतिव्रता स्त्री की तरह।) पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर की भक्ति करता है वह भक्त अंत समय में उसी परमात्मा के सतनाम का सुमरण करता हुआ अभ्यास योग से युक्त शरीर छोड़ कर उसी को प्राप्त हो कर जन्म-मरण काल चक्र से पूर्णतया छूट जाता है।

।। दूसरों की घटिया साधना की दिखावटी चकाचौंध को देख कर अपनी सही साधना को नहीं त्यागना चाहिए।।

श्लोक 47 में कहा है कि दूसरों की सुव्यवस्थित दिखाई देने वाली तड़क-भड़क शास्त्र विरूद्ध गुणरहित साधना से अपनी शास्त्रानुकूल भक्ति कर्म (साधना) उत्तम है। उसे करते (उन शुभ भक्ति कर्मों को करते) हुए पाप को प्राप्त नहीं होते।

।। न त्यागे जाने वाले कर्म।।

श्लोक 48 में अच्छे कर्म जैसे यज्ञ-दान-सुमरण चाहे दोष युक्त हैं (क्योंकि हवन यज्ञ में सूक्ष्म जीव जलते हैं, दान में जब प्रसाद बनता है अग्नि में जीव हिंसा होती है। दान के लिए आटा मुख्य होता है। कनक (गेहूँ, बाजरा, ज्वार, धान की उत्पत्ति में जीव हिंसा होती है।) फिर भी यह कर्म नहीं त्यागने चाहिऐं, क्योंकि जैसे अग्नि में धुआँ होता है। ऐसे सर्व कर्म दोष युक्त हैं। (जैसे अच्छे कर्म सूखी लकड़ी व गैस समझो तथा बुरे कर्म गीली लकड़ी जिसमें धुआँ अधिक है वह समझो)

श्लोक 49 में विकारों पर विजय प्राप्ति (जीवात्मा) पूर्ण रूप से बुरे कर्मों से तथा (सन्यासेन) विकारों से हटे हुए चित वाला (असक्त बुद्धिः) विषयों की होड से दूर (विगतस्पृह) सर्व पाप कर्मों को नष्ट होने के पश्चात् जो पूर्ण मुक्ति अर्थात् सिद्धि होती है उस अनादि मोक्ष को प्राप्त करके सदा सुखी हो जाता है।

।। पूर्ण ज्ञान होने पर मेरी औकात (शक्ति) से परीचित साधक मतानुसार साधना करके पूर्ण मुक्त हो जाते हैं।।

श्लोक 50 जो ब्रह्म ज्ञान की श्रेष्ठ उपलब्धि है जिस (सिद्धि) उपलब्धि को प्राप्त होता है उसकी प्राप्ति को हे कुन्ती पुत्र संक्षिप्त में मुझसे समझ।

श्लोक 54 में कहा है कि परमात्मा प्राप्ति की इच्छा वाला आत्मा न तो चिन्ता करता है, न किसी की इच्छा करता है। समस्त प्राणियों में समान भाव वाला मतावलम्बी भक्ति से उत्तम ज्ञान को प्राप्त हो जाता है। (सर्व श्रेष्ठ भक्ति मत को प्राप्त हो जाता है अर्थात् उसे सही भक्ति मार्ग मिल जाता है।)

भावार्थ :-- इस श्लोक 54 का भावार्थ है कि जो प्रथम ब्रह्म गायत्री मन्त्र साधक को प्रदान किया जाता है जिस से सर्व कमल चक्र खुल जाते हैं अर्थात् कुण्डलनि शक्ति जागृत हो जाती है वह उपासक परमात्मा प्राप्ति का पात्र बन जाता है। उस सुपात्र को ब्रह्म काल की परम भक्ति का मन्त्र ओं (ॐ) दिया जाता है। ओम्+तत् मिलकर दो अक्षर का सत्यनाम बनता है। इससे पूर्ण मोक्ष मार्ग प्रारम्भ होता है। इसलिए इस गीता अध्याय 18 श्लोक 54 में वर्णन है।

श्लोक 55 में कहा है कि इस भक्ति मत से मुझको जैसा और जितना है {अर्थात् केवल काल रूप क्षर (नाशवान) भगवान है तथा इससे ऊपर दो भगवान और हैं - अक्षर पुरुष (परब्रह्म) तथा अन्य उत्तम परमात्मा परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पूर्ण ब्रह्म (निःअक्षर) है जो कुल मालिक है तथा तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण पोषण करता है। जैसे अध्याय 15 के श्लोक 1 से 6 में और 16 से 18 तक में स्पष्ट है। } ठीक वैसा-वैसा तत्व से जान लेता है उससे पूर्ण रूप से मेरी शक्ति (औकात) व कर्म से परिचित हो कर का भाव है जो विचार है कि पूर्ण परमात्मा कोई और है उसकी भक्ति अनन्य मन से स्वाभाविक अच्छे कर्म (सतनाम व सारनाम साधना) से काल जाल से छूट सकता है। फिर जन्म मरण नहीं होता। ऐसे जान कर तुरंत ही उसी मत (विचार) में प्रवेश कर जाता है अर्थात् पूर्ण परमात्मा को पाने का मत (विचार) बना लेता है। श्लोक 56 का भावार्थ है कि उस मत पर पूर्ण आश्रित (कि पूर्ण परमात्मा कोई और है उसी की भक्ति अनन्य मन से करनी चाहिए जिस धाम (सतलोक) में गए साधक फिर जन्म-मरण को प्राप्त नहीं होते) सर्व शुभ कर्मों को सदा करता हुआ अर्थात् गुरु जी के द्वारा दिये गए भक्ति मार्ग का पालन करता हुआ भी उस मत की कृप्या से (मत् प्रसादात्) सनातन अविनाशी पद अर्थात् स्थाई जन्म-मरण रहित स्थिति अर्थात् अनादि मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

मत की व्याख्या अध्याय 13 के श्लोक 1,2 में स्पष्ट है। इसमें कहा है कि शरीर क्षेत्र है तथा जो उसको तत्व से जानता है वह क्षेत्रज्ञ है अर्थात् विद्वान है क्षेत्र (शरीर) को जानने वाला पंडित (क्षेत्रज्ञ) है। गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि -

"पंडित सो जो पिण्ड (शरीर–क्षेत्र) को जाने"

काल कहता है कि यह शरीर क्षेत्र है तथा मैं क्षेत्रज्ञ हूँ। जो शरीर (क्षेत्र) और क्षेत्रज्ञ (मुझको) तत्व से जान लेता है वह सही जानकार है। यह मेरा मत (विचार) है। इसी प्रकार कहते हैं कि

संतमत सतसंग अर्थात् संतों द्वारा दिए गए विचारों के आधार पर विवरण संतमत सतसंग कहलाता है। फिर आगे गीता अध्याय 13 के श्लोक 12 से 18 तक में स्पष्ट व्याख्या है कि उस जानने योग्य परमात्म तत्व को जो सर्वव्यापक है तथा सबका धारण पोषण करने वाला दूर से दूर (सतलोक में पाताल लोक से 16 शंख कोस की दूरी पर) और जैसे सूर्य आकाश में होते हुए भी आँखों में दृष्टि गोचर है तथा ऊष्णता का भी आभास होता है। इसी प्रकार सतलोक में रहते हुए भी नजदीक से नजदीक सबके हृदय में रहने वाला वही पूर्ण परमात्मा (परम अक्षर ब्रह्म) है। जो यह जान लेता है वह (मद्भावाय) मतावलम्बी (इन विचारों का अनुसरण करने वाला भाव) भाव को प्राप्त हो जाता है अर्थात् उसी रंग में रंग जाता है। वह फिर ब्रह्म द्वारा व देवी-देवताओं द्वारा दिए गए लाभ पर आकर्षित नहीं होता। जैसे बड़े जलाशय (तालाब) के मिल जाने पर छोटे तलईया (जोहड़ी) में आस्था अपने आप कम हो जाती है (गीता अध्याय 2 श्लोक 46)। अध्याय 13 के ही श्लोक 19 से अंतिम 34 श्लोक तक उसी परमात्मा को पाने का मत (विचार) काल भगवान द्वारा सही दिया गया है।

श्लोक 57,58 में गीता ज्ञान दाता भगवान कह रहे हैं कि सर्व कर्मों को मन से त्याग कर ज्ञान विधि (योग) का आश्रय करके मेरे मत पर आधारित होकर निरंतर मेरे विचारों में चित वाला हो। तू मुझमें चित वाला हो कर यदि इनको ध्यान से नहीं सुनेगा तो नष्ट हो जाएगा।

।। ब्रह्म (काल) भगवान द्वारा पूर्ण परमात्मा का वास्तविक ज्ञान अर्जुन को बताना।।

अध्याय 18 के श्लोक 59,60 में फिर भगवान कह रहा है अर्जुन मन-इन्द्रियों को वश करके राग-द्वेष रहित होकर कर्म कर। तू अहंकार वश होकर कह रहा है मैं युद्ध नहीं करूंगा। युद्ध न करना भी तेरे बस की बात नहीं। तू भी स्वभाव वश होकर (क्षत्री होने के कारण) युद्ध अवश्य करेगा। जब अर्जुन बहुत दुःखी हो जाता है तथा सोचता है यह क्या? मरो और मारो। तब काल उसे सांत्वना देने के लिए बीच-2 में सच्चाई कहते हैं। श्लोक 61,62 में कहा है कि वह अविनाशी परमात्मा (पूर्णब्रह्म) शरीर रूपी मशीन में शक्ति की तरह स्थिति अपनी शक्ति से कर्मानुसार घुमाता है जो सब प्राणियों के हृदय में स्थित है। हे अर्जुन! सर्वभाव से उस परमात्मा की शरण में चला जा। उस परमात्मा (पूर्णब्रह्म) की कृप्या से परम शान्ति अर्थात् जन्म-मरण से पूर्ण रूप से मुक्त हो जाएगा तथा सनातन परम स्थान (उत्तम लोक सतलोक) को प्राप्त होगा।

अध्याय 18 के श्लोक 63 में गीता ज्ञान दाता भगवान कह रहा है कि यह गुप्त से भी गुप्त गीता ज्ञान तुझे कह दिया। तू मेरा बहुत प्रिय है। अब जो अच्छा लगे वो कर। यदि मेरी शरण में रहना है तो तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव जी तथा अन्य देवों) की पूजा त्याग कर अनन्य मन से मेरी साधना ओ३म् मंत्र के जाप से कर (गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15, गीता अध्याय 8 श्लोक 13)। मेरी साधना भी अश्रेष्ठ है (गीता अध्याय 7 श्लोक 18)। इसलिए उस परमेश्वर की शरण में जा उसके लिए किसी तत्वदर्शी संत की खोज कर। मैं उस पूर्ण परमात्मा की भक्ति विधि को नहीं जानता (गीता अध्याय 4 श्लोक 34)।

।। ब्रह्म (काल) का भी उपास्य देव पूर्णब्रह्म।।

अध्याय 18 के श्लोक 64 में भगवान कह रहा है कि सर्व ज्ञानों से भी गोपनीय मेरे अनमोल वचनों को फिर सुन। इसलिए यह हितकारक वचन तुझे फिर कहूँगा। वास्तव में मेरा उपास्य देव भी यही पूर्णब्रह्म ही है।

अध्याय 18 के श्लोक 65 में एक मन वाला मतावलम्बी मत भाव पूजा से मुझ को (गुरु रूप में)

प्रणाम कर (परंतु रह मेरे आश्रित) इसलिए मुझे ही प्राप्त होगा। तुझसे यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ। तू मेरा अत्यन्त प्रिय है।

।। ब्रह्म (काल) द्वारा अर्जुन को एक पूर्णब्रह्म की शरण में जाने को कहना ।।

अध्याय 18 के श्लोक 66 में भगवान (काल) कह रहा है तू एक मेरी सर्व धार्मिक पूजाओं को मुझ में त्याग कर पूर्णब्रह्म की शरण में जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त करवा दूंगा। चिंता मत कर।

विशेष वास्तविक्ता :-

अध्याय 18 के श्लोक 61 से 66 तक का भावार्थ है कि काल (ब्रह्म-क्षरपुरुष) कह रहा है कि जो पूर्ण परमात्मा (अन्य पुरुषोत्तम-अविनाशी परमात्मा-परम अक्षर ब्रह्म) सर्व जीवों के हृदय में स्थित है वही प्राणियों को कर्मानुसार यन्त्र (मशीन) की तरह घुमाता है अर्थात् कर्म आधार पर स्वर्ग-नरक-जन्म-मरण, चौरासी लाख जूनियों में चक्र कटवाता है। जो प्राणी उस (पूर्णब्रह्म/सतपुरुष) परमात्मा की शरण में नहीं है और क्षर पुरुष (ब्रह्म-काल) व तीनों गुणों (रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिव) की तथा देवी-देवताओं की उपासना करता है या बिल्कुल नहीं करता है। जैसे भी कर्म बनते हैं उनके आधार पर कर्मों का फल वही सर्वव्यापक परमात्मा (सतपुरुष) ही देता है। जैसे प्रहलाद भक्त विष्णु उपासक था तो उसकी रक्षा के लिए वह परमात्मा (पूर्णब्रह्म/सतपुरुष) ही नृसिंह रूप बना कर आया, हिरणाकशिपु को मारा तथा बाद में विष्णु रूप दिखा कर भक्त प्रहलाद को कृतार्थ किया। जो भक्त जिसका उपासक है उस भक्त की रक्षा वही पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष) ही करता है तथा भक्त की श्रद्धा बनाए रखने के लिए उसी के इष्ट का रूप बना कर आता है। जो भक्ति करते हैं या नहीं करते उन सबका हिसाब धर्मराज रखता है। जो कर्मों का आधार है उसी परमात्मा के निर्देश पर फल देता है।

जो उस परमात्मा (पूर्णब्रह्म) की शरण में पूर्ण गुरु के माध्यम से जाता है। वह भक्त (योगी) जन्म-मरण चौरासी लाख जूनियों से छूट जाता है तथा सतलोक (सच्चे लोक/सच्च खण्ड/सनातन स्थान) को प्राप्त होता है तथा पूर्ण मुक्त हो जाता है। कुछ अस्थाई मुक्ति (राहत) भगवान काल (क्षर पुरुष) भी दे सकता है उसके लिए क्षर ब्रह्म कहता है कि ब्रह्मा-विष्णु-शिव व देवी-देवताओं की पूजा त्याग कर केवल मुझ (ब्रह्म) की अव्याभिचारिणी (अनन्य मन से) भक्ति गुरु बना कर करने से मुझ (काल) को प्राप्त होगा। फिर उस साधक की चौथी मुक्ति (महास्वर्ग-ब्रह्मलोक में स्थापित) कर देगा। फिर अपनी कमाई (पुण्यों) को समाप्त करके काल (क्षर, ब्रह्म) की महाप्रलय के समय समाप्त हो जाएगा और फिर जब काल (क्षर) सृष्टी रचेगा उसमें फिर वही चौथी मुक्ति वाले साधक जन्म-मरण व चौरासी लाख जूनियों में अवश्य जाएंगे। क्योंकि क्षर ब्रह्म का संविधान है कि जैसे कर्म प्राणी करेगा उन सर्व (अच्छे व बुरे) कर्मों का फल उस (जीव) को भोगना पड़ेगा। यह अटल नियम (मत) है। अच्छे कर्मों के लिए स्वर्ग, महास्वर्ग तथा बुरे कर्मों के लिए नरक तथा कुछ अच्छे और कुछ बुरों का मिश्रण चौरासी लाख जूनियाँ। यह काल (क्षर ब्रह्म) भगवान की साधना का परिणाम है। इसलिए काल (क्षरपुरुष) ने अध्याय 7 के श्लोक 18 में स्पष्ट कहा है कि जो परमात्मा प्राप्ति की कोशिश कर रहे हैं वे मानव शरीरधारी उद्धार आत्मा पूर्णज्ञानी (मेरे शास्त्रों अर्थात् वेदों को जानने वाली हैं) हैं परंतु वे मेरी (काल की) ही अनुत्तम (घटिया) गति (मुक्ति) में अच्छी तरह व्यवस्थित हैं

अर्थात् उन नादानों को उस पूर्ण ब्रह्म परमात्मा को पाने का ज्ञान न होने से वे मेरे (काल) पर ही पूर्ण आश्रित हैं जिससे वे पूर्ण शांति (पूर्ण मुक्ति) से वंचित रहते हैं। इसलिए क्षर ब्रह्म (काल) अध्याय 18 के श्लोक 62 में स्पष्ट कह रहा है कि उस परमात्मा की शरण में जा जिससे परम शांति (पूर्ण मुक्ति) व सनातन स्थान (सतलोक) को प्राप्त होगा। फिर अध्याय 18 के ही श्लोक 63 से 66 में कहता है कि अर्जुन अब तू सोच ले मेरी शरण में आना चाहता है या उस परमात्मा की शरण में जाना चाहता है। यह गुप्त से भी गुप्त उस परमात्मा का ज्ञान तेरे को दिया है और गुप्त से भी अति गुप्त मेरे अनमोल वचन सुन तूं मेरा अति प्रिय है इसलिए तुझे बताता हूँ कि तू उस एक (पूर्णब्रह्म) परमात्मा की शरण में जा। मेरा उपास्य देव (इष्ट) भी यही (पूर्णब्रह्म ही) है। यदि तू (अर्जुन) मेरी शरण में रहना चाहता है तो मेरे को ही प्राप्त होगा अर्थात् महास्वर्ग में जाएगा, मैं (काल) सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ। यदि मेरी शरण में रहेगा तो युद्ध अवश्य करना होगा। यहाँ तो मारो मार बनी रहेगी। वह भी जब होगा जब मेरे विधान (मत) के अनुसार साधना करेगा। यदि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवी-देवताओं, पितरों व भूतों की पूजा भी साथ करता रहेगा तो भी मुझे प्राप्त नहीं होगा। क्योंकि यह व्यभिचारिणी भक्ति है जो एक इष्ट पर आधारित नहीं होते। आगे अध्याय 18 के श्लोक 66 में कहा है कि उस परमात्मा से लाभ लेना है तो मेरी सर्व पूजाएँ मुझमें त्याग कर अर्थात् इन्हें भी छोड़ कर उस एक (पूर्णब्रह्म) की शरण जा। फिर मैं तेरे को सर्व पापों से छुड़वा दूँगा। तू चिंता मत कर।

।। अर्जुन, भगवान ब्रह्म (काल) की शरण में रहा फिर भी पाप मुक्त नहीं हुआ।।

विशेष : अध्याय 18 के श्लोक 73 में अर्जुन कहता है कि मैं आपकी शरण में ही रहूँगा अर्थात् आपकी जो आज्ञा वही करूँगा। मैं युद्ध करूँगा। इसीलिए अर्जुन को काल भगवान पाप मुक्त नहीं कर सका। क्योंकि वह नादान अर्जुन काल की शरण में रहा। अर्जुन भी बेचारा क्या करे? प्रथम तो इतना डराया कि काँपने लग गया फिर उस परमात्मा को प्राप्त करने का मार्ग काल भगवान ने नहीं बताया। ऊँ मन्त्र तथा यज्ञों का करना बताया जो उस परमात्मा को पाने का नहीं है बल्कि काल जाल में ही रहने का है इसलिए तो अर्जुन पाप मुक्त नहीं हुआ। चूंकि प्रमाण है कि युद्ध में विजय के उपरांत राजा युधिष्ठिर को बुरे स्वपन आने लगे। तब भगवान कृष्ण ने उन्हें एक यज्ञ की सलाह दी कि यज्ञ करो। तुम्हारे युद्ध में किए पाप कर्म दुःखी कर रहे हैं। जबकि अर्जुन तो उन्हें अजम-अनादि तथा सर्व भूतों (प्राणियों) का महान भगवान मानता ही था। प्रमाण के लिए देखें अध्याय 10 के श्लोक 12 से 14 तक। क्योंकि अर्जुन ने तो उनका काल (विराट) रूप अपनी आँखों से देखा था। यह तो हो ही नहीं सकता कि अर्जुन काल (ब्रह्म) को सर्व प्राणियों का महान ईश्वर व अजन्मा अनादि न मानता हो। फिर पाप कर्म जो युद्ध में हुए थे, को समाप्त करने की सलाह स्वयं भगवान कृष्ण ने दी थी कि तुम अंतिम स्वांस तक हिमालय में जा कर तप करो तथा वहीं शरीर समाप्त कर दो। तुम्हारे पाप जो युद्ध में हुए थे समाप्त हो जाएंगे। चारों पाण्डवों का शरीर हिमालय की बर्फ में शरीर गल कर नष्ट हो गया साथ में द्रौपदी तथा कुन्ती का भी तथा पांचवें युधिष्ठिर का केवल पंजा गला। चूंकि युधिष्ठिर ने झूठ बोला था कि अश्वत्थामा (द्रोणाचार्य का पुत्र) मर गया जबकि अश्वत्थामा मरा नहीं था। भगवान कृष्ण ने झूठ बुलवाया था। फिर चारों पाण्डव (भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव) तथा द्रौपदी व कुंती आदि भी नरक में डाले गए जिसका प्रमाण महाभारत में पृष्ठ नं. 1683 पर है और कुछ समय युधिष्ठिर को भी धोखे से नरक में डाला गया। फिर पाप मुक्त कौन हो सकता है? कृपया पाठक विचारें तथा सतगुरु कबीर साहेब के नुमायन्दे संत से नाम ले कर काल लोक से छुटकारा करवाएँ।

जैसा कि गीता जी के अध्याय 18 के श्लोक 64 तथा अध्याय 15 के श्लोक 4 और अध्याय 8 के श्लोक 21 में स्पष्ट है कि स्वयं भगवान (ब्रह्म) कह रहा है कि हे अर्जुन! मेरा उपास्य देव (इष्ट) भी वही परमात्मा (पूर्ण ब्रह्म) ही है तथा मैं (काल) भी उसी की शरण हूँ तथा वही सनातन स्थान (सतलोक) मेरा (काल का) भी वास्तविक ठिकाना (स्थान) है अर्थात् मेरा परम धाम भी वही है। क्योंकि ब्रह्म (काल पुरुष) भी वहीं (सतलोक) से निष्कासित है।

।। साहेब कबीर व गोरख नाथ की गोष्ठी।।

एक समय गोरख नाथ (सिद्ध महात्मा) काशी (बनारस) में स्वामी रामानन्द जी (जो साहेब कबीर के गुरु जी थे) से शास्त्रार्थ करने के लिए (ज्ञान गोष्टी के लिए) आए। जब ज्ञान गोष्टी के लिए एकत्रित हुए तब कबीर साहेब भी अपने पूज्य गुरुदेव स्वामी रामानन्द जी के साथ पहुँचे थे। एक उच्च आसन पर रामानन्द जी बैठे उनके चरणों में बालक रूप में कबीर साहेब (पूर्ण परमात्मा) बैठे थे। गोरख नाथ जी भी एक उच्च आसन पर बैठे थे तथा अपना त्रिशूल अपने आसन के पास ही जमीन में गाड़ रखा था। गोरख नाथ जी ने कहा कि रामानन्द मेरे से चर्चा करो। उसी समय बालक रूप (पूर्ण ब्रह्म) कबीर जी ने कहा - नाथ जी पहले मेरे से चर्चा करें। पीछे मेरे गुरुदेव जी से बात करना।

योगी गोरखनाथ प्रतापी, तासो तेज पृथ्वी कांपी।
काशी नगर में सो पग परहीं, रामानन्द से चर्चा करहीं।
चर्चा में गोरख जय पावै, कंठी तोरै तिलक छुड़ावै।
सत्य कबीर शिष्य जो भयऊ, यह वृतांत सो सुनि लयऊ।
गोरखनाथ के डर के मारे, वैरागी नहीं भेष सवारे।
तब कबीर आज्ञा अनुसारा, वैष्णव सकल स्वरूप संवारा।
सो सुधि गोरखनाथ जो पायौ, काशी नगर शीघ्र चल आयौ।
रामानन्द को खबर पठाई, चर्चा करो मेरे संग आई।
रामानन्द की पहली पौरी, सत्य कबीर बैठे तीस ठौरी।
कह कबीर सुन गोरखनाथा, चर्चा करो हमारे साथा।
प्रथम चर्चा करो संग मेरे, पीछे मेरे गुरु को टेरे।
बालक रूप कबीर निहारी, तब गोरख ताहि वचन उचारी।

इस पर गोरख नाथ जी ने कहा तू बालक कबीर जी कब से योगी बन गया। कल जन्मा अर्थात् छोटी आयु का बच्चा और चर्चा मेरे (गोरख नाथ के) साथ। तेरी क्या आयु है? और कब वैरागी (संत) बन गए?

कबके भए वैरागी कबीर जी, कबसे भए वैरागी।
नाथ जी जब से भए वैरागी मेरी, आदि अंत सुधि लागी।।
धूंधूकार आदि को मेला, नहीं गुरु नहीं था चेला।
जब का तो हम योग उपासा, तब का फिरा अकेला।।
धरती नहीं जद की टोपी दीना, ब्रह्मा नहीं जद का टीका।
शिव शंकर से योगी, न थे जदका झोली शिका।।
द्वापर को हम करी फावड़ी, त्रेता को हम दंडा।
सतयुग मेरी फिरी दुहाई, कलियुग फिरौ नो खण्डा।।
गुरु के वचन साधु की संगत, अजर अमर घर पाया।
कहैं कबीर सुनों हो गोरख, मैं सब को तत्व लखाया।।

कबीर साहेब व गोरख नाथ की ज्ञान गोष्ठी

साहेब कबीर जी ने गोरख नाथ जी को बताते हैं कि मैं कब से वैरागी बना। साहेब कबीर ने उस समय वैष्णों संतों जैसा वेष बना रखा था। जैसा श्री रामानन्द जी ने बाणा (वेष) बना रखा था। जैसे मस्तिक में चन्दन का टीका, टोपी व झोली सिक्का एक फावड़ी (जो भजन करने के लिए लकड़ी की अंग्रेजी के अक्षर '' T '' के आकार की होती है) तथा एक डण्डा (लकड़ी का लट्ठा) साथ लिए हुए थे। ऊपर के शब्द में साहेब कहते हैं कि जब कोई सृष्टि (काल सृष्टि) नहीं थी तथा न सतलोक सृष्टि थी तब मैं (कबीर) अनामी रूप में था और कोई नहीं था। चूंकि साहेब कबीर ने ही सतलोक सृष्टि शब्द से रची तथा फिर काल (ज्योति निरंजन-ब्रह्म) की सृष्टि भी सतपुरुष ने {ज्योति निरंजन (ब्रह्म) ने तप करके राज्य मांगा तब} रची। जब मैं अकेला रहता था जब धरती (पृथ्वी) भी नहीं थी तब से मेरी टोपी जानो। ब्रह्मा जो गोरखनाथ तथा उनके गुरु मच्छन्दर नाथ आदि सर्व प्राणियों के शरीर बनाने वाला पैदा भी नहीं हुआ था। तब से मैंने टीका लगा रखा है अर्थात् मैं (कबीर) तब से सतपुरुष आकार रूप में ही हूँ।

सतयुग-त्रेतायुग-द्वापर तथा कलियुग ये चार युग तो मेरे सामने असंखों जा लिए। कबीर साहेब बताते हैं कि हमने सतगुरु वचन में रह कर अजर-अमर घर (सतलोक) पाया। इसलिए सर्व प्राणियों को तत्व (वास्तविक ज्ञान) बताया है कि पूर्ण गुरु से उपदेश ले कर आजीवन गुरु वचन में चलते हुए पूर्ण परमात्मा का ध्यान सुमरण करके उसी अजर-अमर सतलोक में जा कर जन्म-मरण रूपी अति दुःखमयी संकट से बच सकते हो।

इस बात को सुन कर गोरखनाथ जी ने पूछा हैं कि आपकी आयु तो बहुत छोटी है अर्थात् आप लगते तो हो बालक से।

जो बूझे सोई बावरा, क्या है उम्र हमारी।
असंख युग प्रलय गई, तब का ब्रह्मचारी।।टेक।।
कोटि निरंजन हो गए, परलोक सिधारी।
हम तो सदा महबूब हैं, स्वयं ब्रह्मचारी।।
अरबों तो ब्रह्मा गए, उनन्चास कोटि कन्हैया।
सात कोटि शम्भू गए, मोर एक नहीं पलैया।।
कोटिन नारद हो गए, मुहम्मद से चारी।
देवतन की गिनती नहीं है, क्या सृष्टि विचारी।।
नहीं बुढ़ा नहीं बालक, नाहीं कोई भाट भिखारी।
कहैं कबीर सुन हो गोरख, यह है उम्र हमारी।।

श्री गोरखनाथ सिद्ध को सतगुरु कबीर साहेब अपनी आयु का विवरण देते हैं। असंख युग प्रलय में गए। तब का मैं वर्तमान हूँ अर्थात् अमर हूँ। करोड़ों ब्रह्म (क्षर-काल) भगवान मृत्यु को प्रापत होकर पुनर्जन्म प्राप्त कर चुके हैं।

एक ब्रह्मा की आयु 100 (सौ) वर्ष की होती है।

ब्रह्मा का एक दिन = 1000 (एक हजार) चतुर्युग तथा इतनी ही रात्री।

दिन-रात = 2000 (दो हजार) चतुर्युग।

{नोट - ब्रह्मा जी के एक दिन में 14 इन्द्रों का शासन काल समाप्त हो जाता है। एक इन्द्र का शासन काल बहतर चतुर्युग का होता है। इसलिए वास्तव में ब्रह्मा जी का एक दिन 72 गुणा 14 = 1008 चतुर्युग का होता है तथा इतनी ही रात्री, परन्तु इस को एक हजार चतुर्युग ही मान कर चलते हैं।}

महीना= 30 गुणा 2000 = 60000 (साठ हजार) चतुर्युग।
वर्ष = 12 गुणा 60000 = 720000 (सात लाख बीस हजार) चतुर्युग का।
ब्रह्मा जी की आयु -
720000 गुणा 100= 72000000 (सात करोड़ बीस लाख) चतुर्युग।
ब्रह्मा से सात गुणा विष्णु जी की आयु -
72000000 गुणा 7 = 504000000 (पचास करोड़ चालीस लाख) चतुर्युग।
विष्णु से सात गुणा शिव जी की आयु -
504000000 गुणा 7 = 3528000000 (तीन अरब बावन करोड़ अस्सी लाख) चतुर्युग की हुई।

ऐसी आयु वाले सत्तर हजार शिव भी मर जाते हैं तब एक ज्योति निरंजन (ब्रह्म) मरता है। पूर्ण परमात्मा के द्वारा पूर्व निर्धारित किए समय पर एक शंख बजता है उस समय एक ब्रह्मण्ड में महाप्रलय होती है। यह समय (सत्तर हजार शिव की मृत्यु अर्थात् एक सदाशिव/ज्योति निरंजन की मृत्यु) एक युग होता है परब्रह्म का। परब्रह्म का एक दिन एक हजार युग का होता है इतनी ही रात्री होती है तीस दिन रात का एक महिना तथा बारह महिनों का परब्रह्म का एक वर्ष हुआ तथा सौ वर्ष की परब्रह्म की आयु है। परब्रह्म की भी मृत्यु होती है। ब्रह्म अर्थात् ज्योति निरंजन की मृत्यु परब्रह्म के एक दिन के पश्चात् होती है इस प्रकार कबीर परमात्मा ने कहा है कि करोड़ों ज्योति निरंजन मर लिए मेरी एक पल भी आयु कम नहीं हुई है अर्थात् अमर पुरुष हूं। कबीर साहेब कहते हैं कि हम अमर हैं। अन्य भगवान जिसका तुम आश्रय ले कर भक्ति कर रहे हो वे नाशवान हैं। फिर आप अमर कैसे हो सकते हो? अरबों तो ब्रह्मा गए, 49 कोटि कन्हैया। सात कोटि शंभु गए, मोर एक नहीं पलैया।

यहां देखें अमर पुरुष कौन है? 343 करोड़ त्रिलोकिय ब्रह्मा मर जाते हैं, 49 करोड़ त्रिलोकिय विष्णु तथा 7 करोड़ त्रिलोकिय शिव मर जाते हैं तब एक ज्योति निरंजन (काल-ब्रह्म) मरता है। जिसे गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 16 में क्षर (नाशवान) भगवान कहा है तथा इसी श्लोक में जिसे अक्षर (अविनाशी) कहा है वह परब्रह्म है जिसे अक्षर पुरुष भी कहते हैं। अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म भी नष्ट होता है। यह काल भी करोड़ों समाप्त हो जाएंगे। तब सर्व अण्ड-ब्रह्मण्ड नाश में आवेंगे। केवल सतलोक बचेगा। फिर अचिंत सत्यपुरूष के आदेश से सृष्टि रचेगा। यही क्षर पुरुष तथा अक्षर पुरुष की सृष्टि फिर शुरु हो जाएगी।

फिर जो गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 17 में कहा है कि वह उत्तम पुरुष (पूर्ण परमात्मा) तो कोई और ही है जिसे अविनाशी परमात्मा नाम से जाना जाता है। वह पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर सतपुरुष स्वयं कबीर साहेब है। केवल सतपुरुष अजर-अमर परमात्मा है तथा उसी का सतलोक (सतधाम) अमर है जिसे अमर लोक भी कहते हैं। वहाँ की भक्ति करके भक्त आत्मा पूर्ण मुक्त होती है। जिसका कभी मरण नहीं होता। कबीर साहेब ने कहा कि यह उपलब्धि सोहं शब्द के जाप से प्राप्त होती है जो उसके मर्म भेदी गुरु से मिले तथा उसके बाद सारनाम मिले। फिर सतलोक में वास तथा सतपुरुष प्राप्ति होती है। करोंड़ों नारद तथा मुहम्मद जैसी पाक (पवित्र) आत्मा भी आकर (जन्म कर) जा (मर) चुके हैं, देवताओं की तो गिनती नहीं। फिर आम मानुष शरीर धारी प्राणियों तथा जीवों का तो हिसाब क्या लगाया जा सकता है? मैं (कबीर साहेब) न बूढ़ा न बालक, मैं तो जवान रूप में रहता हूँ जो ईश्वरिय शक्ति का प्रतीक है। यह तो मैं लीलामई शरीर में आपके समक्ष हूँ। कहै कबीर सुनों जी गोरख, मेरी आयु (उम्र) यह है जो आपको ऊपर बताई है।

यह सुन कर श्री गोरखनाथ जी जमीन में गड़े लगभग 7 फूट ऊँचें त्रिशूल के ऊपर के भाग पर अपनी सिद्धि शक्ति से उड़ कर बैठ गए और कहा कि यदि आप इतने महान हो तो मेरे बराबर में (जमीन से लगभग सात फूट) ऊँचा उठ कर बातें करो। यह सुन कर कबीर साहेब बोले नाथ जी! ज्ञान गोष्टी के लिए आए हैं न कि नाटक बाजी करने के लिए। आप नीचे आएं तथा सर्व भक्त समाज के सामने यथार्थ भक्ति संदेश दें।

श्री गोरखनाथ जी ने कहा कि आपके पास कोई शक्ति नहीं है। आप तथा आपके गुरुजी दुनियाँ को गुमराह कर रहे हो। आज तुम्हारी पोल खुलेगी। ऐसे हो तो आओ बराबर। तब कबीर साहेब के बार-2 प्रार्थना करने पर भी नाथ जी बाज नहीं आए तो साहेब कबीर ने अपनी पराशक्ति (पूर्ण सिद्धि) का प्रदर्शन किया। साहेब कबीर की जेब में एक कच्चे धागे की रील (कुकड़ी) थी जिसमें लगभग 150 (एक सौ पचास) फुट लम्बा धागा लिप्टा (सिम्टा) हुआ था, को निकाला और धागे का एक सिरा (आखिरी छौर) पकड़ा और आकाश में फैंक दिया। वह सारा धागा उस बंडल (कुकड़ी) से उधड़ कर सीधा खड़ा हो गया। साहेब कबीर जमीन से आकाश में उड़े तथा लगभग 150 (एक सौ पचास) फुट सीधे खड़े धागे के ऊपर वाले सिरे (छौर) पर सुखासन (स्वाभाविक बैठते हैं) पर बैठ कर कहा कि आओ नाथ जी! बराबर में बैठकर चर्चा करें। गोरखनाथ जी ने ऊपर उड़ने की कोशिश की लेकिन उल्टा जमीन पर टिक गए।

पूर्ण परमात्मा (पूर्णब्रह्म) के सामने सिद्धियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं। जब गोरख नाथ जी की कोई कोशिश सफल नहीं हुई, तब जान गए कि यह कोई मामूली भक्त या संत नहीं है। जरूर कोई अवतार (ब्रह्मा, विष्णु, महेश में से) है। तब साहेब कबीर से कहा कि हे परम (उत्तम) पुरुष! कृप्या नीचे आएँ और अपने दास पर दया करके अपना परिचय दें। आप कौन शक्ति हो? किस लोक से आना हुआ है? तब कबीर साहेब नीचे आए और कहा कि -

अवधु अविगत से चल आया, कोई मेरा भेद मर्म नहीं पाया।।टेक।।
ना मेरा जन्म न गर्भ बसेरा, बालक है दिखलाया।
काशी नगर जल कमल पर डेरा, तहाँ जुलाहे ने पाया।।
माता–पिता मेरे कछु नहीं, ना मेरे घर दासी।
जुलहा को सुत आन कहाया, जगत करे मेरी है हांसी।।
पांच तत्व का धड़ नहीं मेरा, जानूं ज्ञान अपारा।
सत्य स्वरूपी नाम साहिब का, सो है नाम हमारा।।
अधर दीप (सतलोक) गगन गुफा में, तहां निज वस्तु सारा।
ज्योति स्वरूपी अलख निरंजन (ब्रह्म) भी, धरता ध्यान हमारा।।
हाड चाम लोहू नहीं मोरे, जाने सत्यनाम उपासी।
तारन तरन अभै पद दाता, मैं हूं कबीर अविनासी।।

साहेब कबीर ने कहा कि हे अवधूत गोरखनाथ जी मैं तो अविगत स्थान (जिसकी गति या भेद कोई नहीं जानता उस सतलोक) से आया हूँ। मैं तो स्वयं शक्ति से बालक रूप बना कर काशी (बनारस) में एक लहर तारा तालाब में कमल के फूल पर प्रकट हुआ हूँ। वहाँ पर नीरू-नीमा नामक जुलाहा दम्पति को मिला जो मुझे अपने घर ले आया। मेरे मात-पिता नहीं हैं। न ही कोई घर दासी (पत्नी) है और जो उस परमात्मा का वास्तविक नाम है, वही कबीर नाम मेरा है। आपका ज्योति स्वरूप जिसे आप अलख निरंजन (निराकार भगवान) कहते हो वह ब्रह्म भी मेरा ही जाप करता है। मैं सतनाम का जाप करने वाले साधक को प्राप्त होता हूँ अर्थात् वहीं मेरे विषय में सही जानता है।

हाड-चाम तथा लहु (खून) से बना मेरा शरीर नहीं है। कबीर साहेब सतनाम की महिमा बताते हुए कहते हैं कि मेरे मूल स्थान (सतलोक) में सतनाम के आधार से जाया जाता है। अन्य साधकों को संकेत करते हुए प्रभु कबीर (कविर्देव) जी कह रहे हैं कि मैं उसी का जाप करता रहता हूँ। इसी मन्त्र (सतनाम) से सतलोक जाने योग्य होकर फिर सारनाम प्राप्ति करके जन्म-मरण से पूर्ण छुटकारा मिलता है। यह तारन तरन पद (पूजा विधि) मैंने (कबीर साहेब अविनाशी भगवान ने) आपको बताई है। इसे कोई नहीं जानता। गोरख नाथ जी को बताया कि हे पुण्य आत्मा! आप काल क्षर पुरुष (ज्योति निरंजन) के जाल में ही हो। न जाने कितनी बार आपके जन्म हो चुके हैं। कभी चौरासी लाख जूनियों में कष्ट पाया। आपकी चारों युगों की भक्ति को काल अब (कलियुग में) नष्ट कर देता यदि आप मेरी शरण में नहीं आते।

यह काल इक्कीस ब्रह्मण्ड का मालिक है। इसको शाप लगा है कि एक लाख मानव शरीर धारी (देव व ऋषि भी) जीव प्रतिदिन खायेगा तथा सवा लाख उत्पन्न करेगा (मनुष्य शरीर वाले)। इस प्रकार प्रतिदिन पच्चीस हजार बढ़ रहे हैं। उनको ठिकाने लगाए रखने के लिए तथा कर्म भुगताने के लिए अपना कानून बना कर चौरासी लाख जूनियाँ बना रखी हैं। इनमें जीव बिल्कुल अनभिज्ञ रहता है तथा इन्हीं फालतु जीवों से ही शरीर बनाता है जैसे खून में जीवाणु, वायु में जीवाणु आदि-2। इसकी पत्नी आदि माया (प्रकृति देवी) अष्टंगी (आठ भुजाओं वाली) है। इसी से काल (ब्रह्म-अलख निरंजन) ने (पत्नी-पति के संयोग से) तीन पुत्र ब्रह्मा-विष्णु-शिव उत्पन्न किए। इन तीनों को अपने पक्के सहयोगी बना कर ब्रह्मा को शरीर बनाने का, विष्णु को पालन-पोषण का और शिव को संहार करने का कार्य दे रखा है। इनसे प्रथम तप करवाता है फिर सिद्धियाँ भर देता है जिसके आधार पर इनसे अपना उल्लु सीधा करता है और अंत में इन्हें (जब ये शक्ति रहित हो जाते हैं) भी मार कर नए तीन पुत्र पैदा करता है। ऐसे अपने काल लोक को चला रहा है। इन सब से ऊपर पूर्ण परमात्मा है। उसका ही अवतार मुझ (कबीर) को जान।

गोरख नाथ के मन में विश्वास हो गया कि कोई शक्ति है जो कुल का मालिक है। फिर गोरख नाथ ने कहा कि मेरी एक शक्ति और देखो। यह कह कर गंगा की ओर चल पड़ा। सर्व दर्शकों की भीड़ भी साथ ही चली। लगभग 500 फुट पर गंगा नदी थी। उसमें जा कर छलांग लगाते हुए कहा कि मुझे ढूंढ दो। फिर मैं (गोरखनाथ) आप का शिष्य बन जाऊँगा। गोरखनाथ मछली बन गए। साहेब कबीर ने उसी मछली को पानी से बाहर निकाल कर सबके सामने गोरखनाथ बना दिया। तब गोरखनाथ जी ने साहेब कबीर को पूर्ण परमात्मा स्वीकार किया और शिष्य बने। साहेब कबीर से सतनाम व सारनाम ले कर भक्ति की। तब काल जाल से मुक्त हुए।

गीता जी के अध्याय 14 के श्लोक 26,27 का भाव है कि साधक अव्याभिचारिणी भक्ति अर्थात् पूर्ण आश्रित मुझ (काल-ब्रह्म) पर हो कर (अन्य देवी-देवताओं तथा माता, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि की पूजा त्याग कर) भक्ति एक मेरे मन्त्र ॐ का जाप करता है वह उपासक उस परमात्मा को पाने योग्य हो जाता है और आगे की साधना करके उस परमानन्द के परम सुख को भी मेरे माध्यम से प्राप्त करता है।

जैसे कोई विधार्थी मैट्रिक, बी.ए., एम.ए. करके किसी कोर्स में प्रवेश ले कर सर्विस प्राप्त करके रोजी प्राप्त करके सुखी होता है तो उसके लिए वह मैट्रिक, बी.ए. या एम.ए. जिसके बाद कोर्स (ट्रेनिंग) में प्रवेश किया। उसको प्रतिष्ठा (अवस्था) अर्थात् सहयोगी हुआ। सर्विस प्रदान कर्त्ता नहीं हुआ। ठीक इसी प्रकार काल भगवान (ब्रह्म) कह रहा है कि उस अविनाशी परमात्मा के

अमरत्व का और नित्य रहने वाले स्वभाव का तथा धर्म का और अखण्ड स्थाई रहने के आनन्द का सहयोगी मैं (ब्रह्म) हूँ। इसी का प्रमाण गीता जी के अध्याय 18 के श्लोक 66 में कहा है कि सर्व अन्य साधनाओं को मुझमें त्याग कर एक (पूर्णब्रह्म) की शरण को प्राप्त कर तब तेरे सर्व पाप माफ करवा दूंगा। जैसे जिन भक्त आत्माओं ने काल (ब्रह्म) के ॐ मन्त्र का जाप अनन्य मन से किया। उनको कबीर भगवान ने आगे की उस पूर्ण परमात्मा की भक्ति प्रदान करके काल लोक से पार किया। जैसे नामदेव नामक परम भक्त केवल एक नाम ॐ का जाप करते थे। उससे उनको बहुत सिद्धियाँ प्राप्त हो गई थी फिर भी मुक्ति नहीं थी। फिर कबीर साहेब श्री नामदेव जी को मिले तथा सतलोक व सतपुरुष का ज्ञान कराया। सोहं मन्त्र दिया जो परब्रह्म का जाप है। फिर सार शब्द दिया जो पूर्णब्रह्म का जाप है। जब नामदेव जी मुक्त हुए।

ऐसे ही गोरखनाथ जी ने भी एक मन्त्र अलख निरंजन का जाप तथा चांचरी मुद्रा की साधना की। तब साहेब कबीर ने उन्हें ॐ तथा सोहं मन्त्र दिया। फिर सार शब्द दे कर काल (जाल से) से बाहर किया।

।। साहेब कबीर द्वारा श्री नानक जी को सत्यज्ञान समझाना।।

इसी प्रकार श्री नानकदेव जी को जो पहले एक औंकार (ओ३म) मन्त्र का जाप करते थे तथा उसी को सत मान कर कहा करते थे एक ओंकार। उन्हें बेई नदी पर कबीर साहेब ने दर्शन दे कर सतलोक (सच्चखण्ड) दिखाया तथा अपने सतपुरुष रूप को दिखाया। जब सतनाम का जाप दिया तब श्री नानक साहेब जी की काल लोक से मुक्ति हुई। श्री नानक साहेब जी ने कहा कि :

इसी का प्रमाण पंजाबी गुरु ग्रन्थ साहिब के राग ''सिरी'' महला 1 पृष्ठ नं. 24 पर शब्द नं. 29

शब्द - एक सुआन दुई सुआनी नाल, भलके भौंकही सदा बिआल।
कुड़ छुरा मुठा मुरदार, धाणक रूप रहा करतार।।1।।
मै पति की पंदि न करनी की कार। उह बिगड़ै रूप रहा बिकराल।।
तेरा एक नाम तारे संसार, मैं ऐहा आस एहो आधार।
मुख निंदा आखा दिन रात, पर घर जोही नीच मनाति।।
काम क्रोध तन वसह चंडाल, धाणक रूप रहा करतार।।2।।
फाही सुरत मलूकी वेस, उह ठगवाड़ा ठगी देस।।
खरा सिआणां बहुता भार, धाणक रूप रहा करतार।।3।।
मैं कीता न जाता हरामखोर, उह किआ मुह देसा दुष्ट चोर।
नानक नीच कह बिचार, धाणक रूप रहा करतार।।4।।

इसमें स्पष्ट लिखा है कि एक (मन रूपी) कुत्ता तथा इसके साथ दो (आसा-तृष्णा रूपी) कुतिया अनावश्यक भौंकती (उमंग उठती) रहती हैं तथा सदा नई-नई आसाएँ उत्पन्न (ब्याती हैं) होती हैं। इनको मारने का तरीका (जो सत्यनाम बिना) झूठा (कुड़) साधन (मुठ मुरदार) था। मुझे (कबीर साहेब) धाणक के रूप में परमात्मा मिला। उन्होंने मुझे सही उपासना बताई।

श्री नानक साहेब जी कहते हैं कि उस ईश्वर (धाणक कबीर साहेब) की साधना बिना न तो पति (साख) रहनी थी न ही कोई अच्छी करनी (कमाई) बन रही थी। जिससे काल का भयंकर रूप जो अब महसूस हुआ है उससे केवल कबीर साहेब तेरा एक (सत्यनाम) नाम पूर्ण संसार को पार (काल लोक से निकाल सकता है) कर सकता है। मुझे (नानक जी कहते हैं) भी एही एक तेरे नाम की आश व यही नाम मेरा आधार है। पहले अनजाने में बहुत निंदा भी की होगी क्योंकि काम क्रोध

इस तन में चंडाल रहते हैं।

मुझे धाणक (जुलाहे का कार्य करने वाले कबीर साहेब) रूपी भगवान ने आकर सतमार्ग बताया तथा काल से छुटवाया। जिसकी सुरति (स्वरूप) बहुत प्यारी व मनमोहनी है तथा सुन्दर वेष भूशा (जिन्दा रूप में) मुझे मिले उसको कोई नहीं पहचान सकता। जिसने काल को भी ठग लिया अर्थात् लगता है धाणक (जुलाहा) फिर बन गया जिन्दा। काल भगवान भी भ्रम में पड़ गया कि यह कोई नीच जाति का है, भगवान (पूर्णब्रह्म) नहीं हो सकता। इसी प्रकार कबीर साहेब अपना वास्तविक अस्तित्व छुपा कर एक सेवक बन कर आते हैं। काल या आम व्यक्ति पहचान नहीं सकता। इसलिए श्री नानक साहेब जी ने उसे प्यार में ठगवाड़ा कहा है और साथ में कहा है कि वह धाणक (जुलाहा कबीर) बहुत समझदार है। दिखाई देता है कुछ परंतु है बहुत महिमा (बहुता भार) वाला जो धाणक जुलाहा रूप में स्वयं परमात्मा पूर्ण ब्रह्म आया है। प्रत्येक जीव को आधीनी समझाने के लिए अपनी भूल को स्वीकार करते हुए कि मैंने (नानक जी ने) पूर्णब्रह्म के साथ बहस (वाद-विवाद) की तथा उन्होंने (कबीर साहेब ने) अपने आपको भी (एक लीला करके) सेवक रूप में दर्शन दे कर तथा (नानक जी को) मुझको स्वामी नाम से सम्बोधित किया। इसलिए उनकी महानता तथा अपनी नादानी का पश्चाताप करते हुए श्री नानक जी कहते हैं कि मैं (नानक जी) कुछ करने कराने योग्य नहीं था। फिर भी अपनी साधना को उत्तम मान कर भगवान से सम्मुख हुआ (ज्ञान संवाद किया)। मेरे जैसा नीच दुष्ट, हरामखोर कौन हो सकता है जो अपने स्वामी-मालिक पूर्ण परमात्मा धाणक रूप (जुलाहा रूप में आए करतार कबीर साहेब) को नहीं पहचान पाया। श्री नानक साहेब जी कहते हैं कि यह सब मैं पूर्ण सोच समझ से कह रहा हूँ कि परमात्मा धाणक (जुलाहा कबीर) रूप में हैं और अधिक प्रमाण के लिए प्रस्तुत है :--

''राग तिलंग महला 1'' पृष्ठ नं. 721

यक अर्ज गुफतम पेश तो दर गोश कुन करतार।
हक्का कबीर करीम तू बेएब परवरदगार।।
दूनियाँ मुकामे फानी तहकीक दिलदानी।
मम सर मुई अजराईल गिरफ्त दिल हेच न दानी।।
जन पिसर पदर बिरादराँ कस नेस्त दस्तं गीर।
आखिर बयफ्तम कस नदारद चूँ शब्द तकबीर।।
शबरोज गशतम दरहवा करदेम बदी ख्याल।
गाहे न नेकी कार करदम मम ई चिनी अहवाल।।
बदबख्त हम चु बखील गाफिल बेनजर बेबाक।
नानक बुगोयद जनु तुरा तेरे चाकरा पाखाक।।

सरलार्थ :-- हे (कुन करतार)करन कर्त्ता (गोश)निर्गुणी जिन्द संत (करीम)दयालु (हक्का कबीर)सतकबीर (तू)आप (बेएब परवदगार)निर्विकार परमात्मा है। (पेश तो दर)आप के समक्ष (यक)एक (अर्ज गुफ्तम)हृदय से विनती है कि (दिलदानी)हे महबुब(दूनियाँ मुकामे) यह संसार रूपी ठिकाना (फानी) नाशवान है। (तहकीक) यह पूरी तरह जान लिया है। (दानी)हे दाता(मम सर मुई) इस जीव के मरने पर (अजराईल) अजराईल नामक यम दूत (गीरफ्त दिल हेच न)बेरहमी से पकड़ कर ले जाता है (कस) कोई (दस्तं गीर) साथी (पिसर) जैसे बेटा (पदर) पिता (बिरादराँ) भाईचारा (नेस्तं) साथ नहीं देता। (आखिर) अन्त में (बयफ्तम) सभी उपाय और (तकबीर) फर्ज (कस) कोई क्रिया (नदारद चूँ शब्द)काम नहीं आता। (शबरोज) प्रतिदिन (गशतम) गश्त की तरह न रूकने (दर हवा) वाली चलती हुई वायु (बदी ख्याल)की तरह बुरे विचार (करदेम) करते रहते हैं। (नेकी कार)शुसुभ कर्म (करदम)करने का (मम ई)मुझे (चिनी) कोई (अहवाल)

जरीया या साधन (गाहे न) नहीं मिला। (बदबख्त) ऐसे बुरे समय में कलियुग में (हम चु) हमारे जैसे (बखील) नादान (गाफिल) लापरवाह (बेनजर)सत मार्ग का ज्ञान न होने से अंधे (बेबाक)गुंगे थे।

नानक जी कहते हैं कि हे परमात्मा कबीर मैं (तेरे चाकरा) आपके सेवकों का भी सेवक अर्थात् आपके सेवकों के (पाखाक)चरणों की धूर हूँ, मैं नानक (बुगोयद) सच कह रहा हूँ अज्ञान साधना से भवसागर में डूबता हुआ (जन)बन्दा (तुरा)पार हो गया।

केवल हिन्दी अनुवाद :-- हे करन कर्त्ता निर्गुणी संत दयालु ''सतकबीर'' आप निर्विकार परमात्मा हैं। आप के समक्ष एक हृदय से विनती है कि हे महबुब यह संसार रूपी ठिकाना नाशवान है। यह पूरी तरह जान लिया है। हे दाता इस जीव के मरने पर अजराईल नामक यम दूत बेरहमी से पकड़ कर ले जाता है कोई साथी जैसे बेटा पिता भाईचारा साथ नहीं देता। अन्त में सभी उपाय और फर्ज कोई क्रिया काम नहीं आता। प्रतिदिन गश्त की तरह न रूकने वाली चलती हुई वायु की तरह बुरे विचार करते रहते हैं। शुभ कर्म करने का मुझे कोई जरीया या साधन नहीं मिला। ऐसे बुरे समय कलियुग में हमारे जैसे नादान लापरवाह, सत मार्ग का ज्ञान न होने से अंधे गुंगे थे। नानक आपके सेवकों के भी सेवक के चरणों की धूर डूबता हुआ बन्दा पार हो गया।

श्री नानक जी के पूर्व जन्म - सतयुग में राजा अम्बरीष, त्रेतायुग में राजा जनक हुए थे और फिर श्री नानक जी हुए।

।। साहेब कबीर द्वारा रामानन्द जी को सतज्ञान करवाना।।

इसी प्रकार स्वामी रामानन्द जी चारों पवित्र वेदों के ज्ञाता श्री मद्भागवत् गीता के मर्मज्ञ ज्ञाता जो केवल एक ऊँ मन्त्र के जाप में पूर्ण मुक्ति चाह रहे थे, को सतलोक दिखाया और सतपुरुष रूप में दर्शन सतलोक में दिए। तब स्वामी रामानन्द जी ने कहा कि हे कबीर भगवान् आप पूर्ण परमात्मा हैं तथा मुझे पार कर दिया।

दोहु ठोर है एक तूं, भया एक से दोय। गरीबदास मुझ कारने, उतरे हो मग जोय।।
मैं भक्ता मुक्ता भया, किया कर्म कुन्द नाश। गरीबदास अविगत मिले, मेटी मन की बांस।।
बोलत रामानंद जी, सुनि कबीर करतार। गरीबदास सब रूप में, तुम ही बोलनहार।।
तुम साहेब तुम संत हो, तुम सतगुरु तुम हंस। गरीबदास तुम रूप बिन, और न दूजा अंस।।

।।गीता का ज्ञान सुनने व सुनाने वाले भी काल जाल में।।

अध्याय 18 के श्लोक 67 से 71 में लिखा है कि अर्जुन यह मेरा गीता ज्ञान अश्रद्धालुओं को नहीं कहना चाहिए तथा जो भक्त श्रद्धा से सुने उन्हें सुनाने वाला व्यक्ति भी मुझे (काल के मुख में आजाएगा) ही प्राप्त होगा। क्योंकि इनका उपास्य देव (इष्ट) मैं (काल) ही होऊँगा। क्योंकि धार्मिक शास्त्र व ग्रन्थ पढ़ने से ज्ञान यज्ञ हो जाती है। उसका कुछ समय स्वर्ग में फल भोग कर फिर चौरासी लाख जूनियों व नरक का चक्र सदा बना रहेगा। अध्याय 18 के श्लोक 72 में काल भगवान कह रहा है कि क्या गीता को तूने एक चित हो कर सुना है? हे धनंजय! क्या तेरा अज्ञान जनित मोह नष्ट हो गया? भाव यह है कि क्या अर्जुन तुझे ज्ञान हो गया और तेरा संसार से मोह हटा या नहीं? क्या आया समझ में अर्थात् क्या फैसला किया?

अध्याय 18 के श्लोक 73 में अर्जुन कह रहा है कि आप की कृप्या से मेरा मोह नष्ट हो गया और मुझे ज्ञान हो गया है। संश्य रहित हो कर स्थित हूँ और आप जो कहोगे वही करूँगा। अर्जुन (विवश तथा और कोई चारा न देख कर सोचा कि मरना तो है ही, युद्ध न करूंगा तो यह काल मारेगा। यदि एक बार फिर वही रूप दिखा दिया तो अभी भय से जीवन लीला समाप्त हो जाएगी। हो सकता है युद्ध जीत जाएँ तो राज तो करलेगें) बोला भगवान आ गई समझ में। आपकी शरण हूँ

तथा आपकी जो आज्ञा वही करूंगा अर्थात् युद्ध करूंगा।

यहाँ एक बात विशेष विचारणीय है कि अर्जुन कह रहा है कि मैं आप की शरण में हूँ। जो आप कहोगे वही करूँगा। काल भगवान अध्याय 18 के श्लोक 65 में कह रहा है कि तू मेरी शरण रह। मुझे आदर पूर्वक प्रणाम कर। मेरे में मन वाला बन फिर मुझे ही प्राप्त होगा। मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ। तू चिंता मत कर। फिर महाभारत में प्रमाण है कि पाँचों पाण्डव नरक में डाले गए। युधिष्ठिर कम समय के लिए। फिर युधिष्ठिर ने पुण्य दिए तब वे नरक से छुटे। फिर भगवन वचन जो अध्याय 18 के श्लोक 65 में कहे थे, उनका क्या बना?

अध्याय 18 के श्लोक 74 से 78 तक संजय धृतराष्ट्र के दिल को फेल कर रहा है, कह रहा है कि जिसके पक्ष में श्री कृष्ण है वे (पाण्डव) तो निसंदेह विजयी होंगे। धृतराष्ट्र की छाती पर पहले ही पहाड़ रख दिया। गीता सुन कर धृतराष्ट्र कितना चिंतित हुआ होगा। शांति तो दूर रही चूंकि श्री कृष्ण पाण्डवों के पक्ष में थे जिसका परिणाम धृतराष्ट्र के पुत्रों की हार निश्चित थी।

❑❑❑

।।अठारहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नम:

अथाष्टादशोऽध्याय:

अध्याय 18 का श्लोक 1(अर्जुन उवाच)

सन्न्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन।१।

सन्न्यासस्य, महाबाहो, तत्त्वम्, इच्छामि, वेदितुम्,
त्यागस्य, च, हृषीकेश, पृथक्, केशिनिषूदन।।1।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे महाबाहो! (हृषीकेश) हे अन्तर्यामिन! (केशिनिषूदन) केशिनाशक (सन्न्यासस्य) संन्यास (च) और (त्यागस्य) त्यागके (तत्त्वम्) तत्वको (पृथक्) पृथक्-पृथक् (वेदितुम्) जानना (इच्छामि) चाहता हूँ। (1)

अध्याय 18 का श्लोक 2

काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्न्यासं कवयो विदु:।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणा:।२।

काम्यानाम्, कर्मणाम्, न्यासम्, सन्न्यासम्, कवय:, विदु:,
सर्वकर्मफलत्यागम्, प्राहु:, त्यागम्, विचक्षणा:।।2।।

अनुवाद : (कवय:) पण्डितजन तो (काम्यानाम्) मनोकामना के लिए किए धार्मिक (कर्मणाम्) कर्मोंके (न्यासम्) त्यागको (सन्न्यासम्) संन्यास (विदु:) समझते हैं तथा दूसरे (विचक्षणा:) विचारकुशल पुरुष (सर्वकर्मफलत्यागम्) सब कर्मोंके फलके त्यागको (त्यागम्) त्याग (प्राहु:) कहते हैं। (2)

अध्याय 18 का श्लोक 3

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिण:।
यज्ञदानतप:कर्म न त्याज्यमिति चापरे।३।

त्याज्यम्, दोषवत्, इति, एके, कर्म, प्राहु:, मनीषिण:,
यज्ञदानतप:कर्म, न, त्याज्यम्, इति, च, अपरे।।3।।

अनुवाद : (एके) कई एक (मनीषिण:) विद्वान् (इति) ऐसा (प्राहु:) कहते हैं कि (कर्म) शास्त्र विधि रहित भक्ति कर्म (दोषवत्) दोषयुक्त हैं इसलिये (त्याज्यम्) त्यागनेके योग्य हैं (च) और (अपरे) दूसरे विद्वान् (इति) यह कहते हैं कि (यज्ञदानतप:कर्म:) यज्ञ, दान और तपरूपी कर्म (न,त्याज्यम्) त्यागने योग्य नहीं हैं। (3)

अध्याय 18 का श्लोक 4 (भगवान उवाच)

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविध: सम्प्रकीर्तित:।४।

निश्चयम्, श्रृणु, मे, तत्र, त्यागे, भरतसत्तम,
त्यागः, हि, पुरुषव्याघ्र, त्रिविधः, सम्प्रकीर्तितः।।4।।

अनुवाद : (पुरुषव्याघ्र) हे शेर पुरुष (भरतसत्तम) अर्जुन! (तत्र) संन्यास और त्याग इन दोनोंमेसे पहले (त्यागे) त्यागके विषयमें तू (मे) मेरा (निश्चयम्) निश्चय (श्रृणु) सुन (हि) क्योंकि (त्यागः) त्याग (त्रिविधः) तीन प्रकारका (सम्प्रकीर्तितः) कहा गया है। (4)

अध्याय 18 का श्लोक 5

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।५।

यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, कार्यम्, एव, तत्,
यज्ञः, दानम्, तपः, च, एव, पावनानि, मनीषिणाम्।।5।।

अनुवाद : (यज्ञदानतपःकर्म) यज्ञ, दान और तपरूप कर्म (न, त्याज्यम्) त्याग करनेके योग्य नहीं है बल्कि (तत्) वह तो (एव) अवश्य (कार्यम्) कर्तव्य है क्योंकि (यज्ञः) यज्ञ (दानम्) दान (च) और (तपः) तप (एव) ही कर्म (मनीषिणाम्) बुद्धिमान् पुरुषोंको (पावनानि) पवित्र करनेवाले हैं। (5)

विशेष :- यहाँ पर हठयोग द्वारा किया जाने वाले तप के विषय में नहीं कहा है यहाँ पर गीता अध्याय 17 श्लोक 14 से 17 में कहे तप के विषय में कहा है।

अध्याय 18 का श्लोक 6

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्।६।

एतानि, अपि, तु, कर्माणि, संगम्, त्यक्त्वा, फलानि, च,
कर्तव्यानि, इति, मे, पार्थ निश्चितम्, मतम्, उत्तमम्।।6।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (एतानि) इन यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंको (तु) तथा (अपि) भी (कर्माणि) सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको (संगम्) आसक्ति (च) और (फलानि) फलोंका (त्यक्त्वा) त्याग करके (कर्तव्यानि) करना चाहिए (इति) यह (मे) मेरा (निश्चितम्) निश्चय किया हुआ (उत्तमम्) उत्तम (मतम्) मत है। (6)

अध्याय 18 का श्लोक 7

नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः। ७ ।

नियतस्य, तु, सन्न्यासः, कर्मणः, न, उपपद्यते,
मोहात्, तस्य, परित्यागः, तामसः, परिकीर्तितः।।7।।

अनुवाद : (तु) परंतु (नियतस्य) नियत शास्त्रानुकूल (कर्मणः) कर्मका (सन्न्यासः) त्याग (न,उपपद्यते) उचित नहीं है (मोहात्) मोहके कारण अज्ञानता वश भाविक होकर (तस्य) उसका (परित्यागः) त्याग कर देना (तामसः) तामस (परिकीर्तितः) त्याग कहा गया है। (7)

अध्याय 18 का श्लोक 8

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्। ८ ।

दुःखम्, इति, एव, यत्, कर्म, कायक्लेशभयात्, त्यजेत्,
सः, कृत्वा, राजसम्, त्यागम्, न, एव, त्यागफलम्, लभेत्।।8।।

अनुवाद : (यत्) जो कुछ (कर्म) भक्ति साधना का व शरीर निर्वाह के लिए कर्म है (दुःखम्, एव) दुःखरूप ही है (इति) ऐसा समझकर यदि कोई (कायक्लेशभयात्) शारीरिक क्लेशके भयसे अर्थात् कार्य करने को कष्ट मानकर कर्तव्य कर्मोंका (त्यजेत्) त्याग कर दे तो (सः) वह ऐसा (राजसम्) राजस (त्यागम्) त्याग (कृत्वा) करके (त्यागफलम्) त्यागके फलको (एव) किसी प्रकार भी (न, लभेत्) नहीं पाता। (8)

अध्याय 18 का श्लोक 9

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः। ९ ।

कार्यम्, इति, एव, यत्, कर्म, नियतम्, क्रियते, अर्जुन,
संगम्, त्यक्त्वा, फलम्, च, एव, सः, त्यागः, सात्त्विकः, मतः।।9।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (यत्) जो (नियतम्) शास्त्रानुकूल (कर्म) कर्म (कार्यम्) करना कर्तव्य है (इति,एव) इसी भावसे (संगम्) आसक्ति (च) और (फलम्) फलका (त्यक्त्वा) त्याग करके (क्रियते) किया जाता है (सः,एव) वही (सात्त्विकः) सात्विक (त्यागः) त्याग (मतः) माना गया है। (9)

अध्याय 18 का श्लोक 10

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः। १०।

न, द्वेष्टि, अकुशलम्, कर्म, कुशले, न, अनुषज्जते,
त्यागी, सत्त्वसमाविष्टः, मेधावी, छिन्नसंशयः।।10।।

अनुवाद : (अकुशलम्) अकुशल (कर्म) कर्मसे तो (न,द्वेष्टि)) द्वेष नहीं करता और (कुशले) कुशल कर्ममें (न,अनुषज्जते) आसक्त नहीं होता वह (सत्त्वसमाविष्टः) सत्वगुणसे युक्त पुरुष (छिन्नसंशयः) संश्यरहित (मेधावी) बुद्धिमान् और (त्यागी) सच्चा त्यागी है। (10)

अध्याय 18 का श्लोक 11

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते। ११।

न, हि, देहभृता, शक्यम्, त्यक्तुम्, कर्माणि, अशेषतः,
यः, तु, कर्मफलत्यागी, सः, त्यागी, इति, अभिधीयते।।11।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (देहभृता) शरीरधारी किसी भी मनुष्यके द्वारा (अशेषतः) सम्पूर्णतासे (कर्माणि) सब कर्मोंका (त्यक्तुम्) त्याग किया जाना (न, शक्यम्) शक्य नहीं है (यः) जो (कर्मफलत्यागी) कर्मफलका त्यागी है (सः, तु) वही (त्यागी) त्यागी है (इति) यह (अभिधीयते) कहा जाता है। (11)

यही प्रमाण गीता अध्याय 3 श्लोक 4 से 8 व 19 से 21 में है।

अध्याय 18 का श्लोक 12

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु सन्न्यासिनां क्वचित्। १२।

अनिष्टम्, इष्टम्, मिश्रम्, च, त्रिविधम्, कर्मणः, फलम्,
भवति, अत्यागिनाम्, प्रेत्य, न, तु, सन्न्यासिनाम्, क्वचित्।।12।।

अनुवाद : (अत्यागिनाम्) कर्मफलका त्याग न करनेवाले मनुष्योंके (कर्मणः) कर्मोंका (इष्टम्) शुभ (अनिष्टम्) अशुभ (च) और (मिश्रम्) मिला हुआ (त्रिविधम्) तीन प्रकारका (फलम्) फल (प्रेत्य) मरनेके पश्चात् (भवति) होता है (तु) किंतु (सन्न्यासिनाम्) कर्मफलका त्याग कर देनेवाले मनुष्योंके कर्मोंका फल (क्वचित्) किसी कालमें भी (न) नहीं होता (पूर्ण मोक्ष हो जाता है)। (12)

अध्याय 18 का श्लोक 13

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्। १३।

पच, एतानि, महाबाहो, कारणानि, निबोध, मे,
साङ्ख्ये, कृतान्ते, प्रोक्तानि, सिद्धये, सर्वकर्मणाम्।।13।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे महाबाहो! (सर्वकर्मणाम्) सम्पूर्ण कर्मोंकी (सिद्धये) सिद्धिके (एतानि) ये (पच) पाँच (कारणानि) हेतु (कृतान्ते) कर्मोंका अन्त करनेके लिये उपाय बतलानेवाले (साङ्ख्ये) सांख्यशास्त्रमें (प्रोक्तानि) कहे गये हैं उनको तू (मे) मुझसे (निबोध) भलीभाँति जान। (13)

अध्याय 18 का श्लोक 14

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्। १४।

अधिष्ठानम्, तथा, कर्ता, करणम्, च, पृथग्विधम्,
विविधाः, च, पृथक्, चेष्टाः, दैवम्, च, एव, अत्र, पचमम्।। 14।।

अनुवाद : (अत्र) इस विषयमें अर्थात् कर्मोंकी सिद्धिमें (अधिष्ठानम्) अधिष्ठान (च) और (कर्ता) कर्त्ता (च) तथा (पृथग्विधम्) भिन्न-भिन्न प्रकारके (करणम्) करण (च) एवं (विविधाः) नाना प्रकारकी (पृथक्) अलग-अलग (चेष्टाः) चेष्टाएँ और (तथा) वैसे (एव) ही (पचमम्) पाँचवाँ हेतु (दैवम्) दैव अर्थात् ईश्वरीय देन है। (14)

अध्याय 18 का श्लोक 15

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः। १५।

शरीरवाङ्मनोभिः, यत्, कर्म, प्रारभते, नरः,
न्याय्यम्, वा, विपरीतम्, वा, पच, एते, तस्य, हेतवः।। 15।।

अनुवाद : (नरः) मनुष्य (शरीरवाङ्मनोभिः) मन, वाणी और शरीरसे (न्याय्यम्) शास्त्रानुकूल (वा) अथवा (विपरीतम्,वा) विपरीत (यत्,कर्म) जो कुछ भी कर्म (प्रारभते) करता है (तस्य) उसके (एते) ये (पच) पाँचों (हेतवः) कारण हैं। (15)

अध्याय 18 का श्लोक 16

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः।१६।

तत्र, एवम्, सति, कर्तारम्, आत्मानम्, केवलम्, तु, यः,
पश्यति, अकृतबुद्धित्वात्, न, सः, पश्यति, दुर्मतिः।।16।।

अनुवाद : (तु) परंतु (एवम्) ऐसा (सति) होनेपर भी (यः) जो मनुष्य (अकृतबुद्धित्वात्) अशुद्धबुद्धि होने के कारण (तत्र) उस विषयमें यानी कर्मोंके होनेमें (केवलम्) केवल (आत्मानम्) जीवात्मा अर्थात् जीव को (कर्तारम्) कर्त्ता (पश्यति) समझता है (सः) वह (दुर्मतिः) दुर्बुद्धिवाला अज्ञानी (न,पश्यति) यथार्थ नहीं समझता। (16)

अध्याय 18 का श्लोक 17

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते।१७।

यस्य, न, अहङ्कृतः, भावः, बुद्धिः, यस्य, न, लिप्यते,
हत्वा, अपि, सः, इमान्, लोकान्, न, हन्ति, न, निबध्यते।।17।।

अनुवाद : (यस्य) जिसे (अहङ्कृतः) 'मैं कर्त्ता हूँ' ऐसा (भावः) भाव (न) नहीं है तथा (यस्य) जिसकी (बुद्धिः) बुद्धि (न, लिप्यते) लिपायमान नहीं होती (सः) वह (इमान्) इन (लोकान्) सब लोकोंको (हत्वा) मारकर (अपि) भी (न) न तो (हन्ति) मारता है और (न) न (निबध्यते) बँधता है। (17)

अध्याय 18 का श्लोक 18

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः।१८।

ज्ञानम्, ज्ञेयम्, परिज्ञाता, त्रिविधा, कर्मचोदना,
करणम्, कर्म, कर्ता, इति, त्रिविधः, कर्मसंग्रहः।।18।।

अनुवाद : (परिज्ञाता) ज्ञाता (ज्ञानम्) ज्ञान और (ज्ञेयम्) ज्ञेय (त्रिविधा) यह तीन प्रकारकी (कर्मचोदना) कर्म-प्रेरणा है और (कर्ता) कर्त्ता (करणम्) करनी तथा (कर्म) क्रिया (इति) यह (त्रिविधः) तीन प्रकारका (कर्मसंग्रहः) कर्म-संग्रह है। (18)

अध्याय 18 का श्लोक 19

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि।१९।

ज्ञानम्, कर्म, च, कर्ता, च, त्रिधा, एव, गुणभेदतः,
प्रोच्यते, गुणसङ्ख्याने, यथावत्, श्रृणु, तानि, अपि।।19।।

अनुवाद : (गुणसङ्ख्याने) गुणोंकी संख्या करनेवाले शास्त्रमें (ज्ञानम्) ज्ञान (च) और (कर्म) कर्म (च) तथा (कर्ता) कर्त्ता (गुणभेदतः) गुणोंके भेदसे (त्रिधा) तीन-तीन प्रकारके (एव) ही (प्रोच्यते) कहे गए हैं। (तानि) उनको (अपि) भी तू मुझसे (यथावत्) भलीभाँति (श्रृणु) सुन। (19)

अध्याय 18 का श्लोक 20

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्। २०।

सर्वभूतेषु, येन, एकम्, भावम्, अव्ययम्, ईक्षते,
अविभक्तम्, विभक्तेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, सात्त्विकम्।।20।।

अनुवाद : (येन) जिस ज्ञानसे मनुष्य (विभक्तेषु) पृथक्-पृथक् (सर्वभूतेषु) सब प्राणियोंमें (एकम्) एक (अव्ययम्) अविनाशी परमात्मा (भावम्) भावको (अविभक्तम्) विभागरहित समभावसे स्थित (ईक्षते) देखता है (तत्) उस (ज्ञानम्) ज्ञानको तो तू (सात्त्विकम्) सात्विक (विद्धि) जान। (20)

अध्याय 18 का श्लोक 21

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्। २१।

पृथक्त्वेन, तु, यत्, ज्ञानम्, नानाभावान्, पृथग्विधान्,
वेत्ति, सर्वेषु, भूतेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, राजसम्।।21।।

अनुवाद : (तु) किंतु (यत्) जो (ज्ञानम्) ज्ञान (सर्वेषु) सम्पूर्ण (भूतेषु) प्राणियोंमें (पृथग्विधान्) भिन्न-भिन्न प्रकारके (नानाभावान्) नाना भावोंको (पृथक्त्वेन) अलग-अलग (वेत्ति) जानता है (तत्) उस (ज्ञानम्) ज्ञानको तू (राजसम्) राजस (विद्धि) जान। (21)

अध्याय 18 का श्लोक 22

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम्। २२।

यत्, तु, कृत्स्नवत्, एकस्मिन्, कार्ये, सक्तम्, अहैतुकम्,
अतत्त्वार्थवत्, अल्पम्, च, तत्, तामसम्, उदाहृतम्।।22।।

अनुवाद : (तु) परंतु (यत्) जो ज्ञान (एकस्मिन्) एक (कार्ये) कार्यरूप शरीरमें ही (कृत्स्नवत्) सम्पूर्णके सदृश (सक्तम्) आसक्त है (च) तथा जो (अहैतुकम्) बिना युक्तिवाला (अतत्त्वार्थवत्) बिना सोचे व बिना कारण के (अल्पम्) तुच्छ है (तत्) वह (तामसम्) तामस (उदाहृतम्) कहा गया है। (22)

अध्याय 18 का श्लोक 23

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते। २३।

नियतम्, संगरहितम्, अरागद्वेषतः, कृतम्,
अफलप्रेप्सुना, कर्म, यत्, तत्, सात्त्विकम्, उच्यते।।23।।

अनुवाद : (यत्) जो (कर्म) कर्म (नियतम्) शास्त्रानुकूल (संगरहितम्) कर्त्तापनके अभिमानसे रहित हो तथा (अफलप्रेप्सुना) फल न चाहनेवाले द्वारा (अरागद्वेषतः) बिना राग द्वेषके (कृतम्) किया गया हो (तत्) वह (सात्त्विकम्) सात्विक (उच्यते) कहा जाता है। (23)

अध्याय 18 का श्लोक 24

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम्।२४।

यत्, तु, कामेप्सुना, कर्म, साहंकारेण, वा, पुनः,
क्रियते, बहुलायासम्, तत्, राजसम्, उदाहृतम्।।24।।

अनुवाद : (तु) परंतु (यत्) जो (कर्म) कर्म (बहुलायासम्) बहुत परिश्रमसे युक्त होता है (पुनः) तथा (कामेप्सुना) भोगोंको चाहनेवाले पुरुष (वा) या (साहंकारेण) अहंकारयुक्त (क्रियते) किया जाता है (तत्) वह कर्म (राजसम्) राजस (उदाहृतम्) कहा गया है। (24)

अध्याय 18 का श्लोक 25

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते।२५।

अनुबन्धम्, क्षयम्, हिंसाम् अनवेक्ष्य, च, पौरुषम्,
मोहात्, आरभ्यते, कर्म, यत्, तत्, तामसम्, उच्यते।।25।।

अनुवाद : (यत्) जो (कर्म) कर्म (अनुबन्धम्) परिणाम (क्षयम्) हानि (हिंसाम्) हिंसा (च) और (पौरुषम्) सामर्थ्यको (अनवेक्ष्य) न विचारकर (मोहात्) केवल अज्ञानसे (आरभ्यते) आरम्भ किया जाता है (तत्) वह कर्म (तामसम्) तामस (उच्यते) कहा जाता है। (25)

अध्याय 18 का श्लोक 26

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते। २६।

मुक्तसंगः, अनहंवादी, धृत्युत्साहसमन्वितः,
सिद्ध्यसिद्ध्योः, निर्विकारः, कर्ता, सात्त्विकः, उच्यते।।26।।

अनुवाद : (कर्ता) कर्त्ता (मुक्तसंगः) संगरहित (अनहंवादी) अहंकारके वचन न बोलनेवाला (धृत्युत्साहसमन्वितः) धैर्य और उत्साहसे युक्त तथा (सिद्धयसिद्धयोः) कार्यके सिद्ध होने और न होनेमें (निर्विकारः) विकारोंसे रहित (सात्त्विकः) सात्विक (उच्यते) कहा जाता है। (26)

अध्याय 18 का श्लोक 27

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः।२७।

रागी, कर्मफलप्रेप्सुः, लुब्धः, हिंसात्मकः, अशुचिः,
हर्षशोकान्वितः, कर्ता, राजसः, परिकीर्तितः।।27।।

अनुवाद : (कर्ता) कर्त्ता (रागी) आसक्तिसे युक्त (कर्मफलप्रेप्सुः) कर्मोंके फलको चाहनेवाला और (लुब्धः) लोभी है तथा (हिंसात्मकः) दूसरों को कष्ट देनेके स्वभाववाला (अशुचिः) अशुद्धाचारी और (हर्षशोकान्वितः) हर्ष-शोकसे लिप्त है वह (राजसः) राजस (परिकीर्तितः) कहा गया है। (27)

अध्याय 18 का श्लोक 28

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठोऽनैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते।२८।

अयुक्तः, प्राकृतः, स्तब्धः, शठः, नैष्कृतिकः, अलसः,
विषादी, दीर्घसूत्री, च, कर्ता, तामसः, उच्यते।।28।।

अनुवाद : (कर्ता) कर्त्ता (अयुक्तः) अयुक्त (प्राकृतः) स्वभाविक (स्तब्धः) घमण्डी (शठः) धूर्त (नैष्कृतिकः) और दूसरों की जीविकाका नाश करनेवाला तथा (विषादी) शोक करनेवाला (अलसः) आलसी (च) और (दीर्घसूत्री) आज के कार्य को कल पर छोड़ना (तामसः) तामस (उच्यते) कहा जाता है। (28)

अध्याय 18 का श्लोक 29

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं श्रृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय।२९।

बुद्धेः, भेदम्, धृतेः, च, एव, गुणतः, त्रिविधम्, श्रृणु,
प्रोच्यमानम्, अशेषेण, पृथक्त्वेन, धनजय।। 29।।

अनुवाद : (धनजय) हे धनजय! अब तू (बुद्धेः) बुद्धिका (च) और (ध ृतेः) धृतिका (एव) भी (गुणतः) गुणोंके अनुसार (त्रिविधम्) तीन प्रकारका (भेदम्) भेद मेरे द्वारा (अशेषेण) सम्पूर्णतासे (पृथक्त्वेन) विभागपूर्वक (प्रोच्यमानम्) कहा जानेवाला (श्रृणु) सुन। (29)

अध्याय 18 का श्लोक 30

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी। ३०।

प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम्, च, कार्याकार्ये, भयाभये,
बन्धम्, मोक्षम्, च, या, वेत्ति, बुद्धिः, सा, पार्थ, सात्त्विकी।।30।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (या) जो बुद्धि (प्रवृत्तिम्) प्रवृतिमार्ग (च) और (निवृत्तिम्) निवृतिमार्गको (कार्याकार्ये) कर्तव्य और अकर्तव्यको (भयाभये) भय और अभयको (च) तथा (बन्धम्) बन्धन (च) और (मोक्षम्) मोक्षको (वेत्ति) यथार्थ जानती है (सा) वह (बुद्धिः) बुद्धि (सात्त्विकी) सात्विकी है। (30)

अध्याय 18 का श्लोक 31

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी। ३१।

यया, धर्मम्, अधर्मम्, च, कार्यम्, च, अकार्यम्, एव, च,
अयथावत्, प्रजानाति, बुद्धिः, सा, पार्थ, राजसी।।31।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! मनुष्य (यया) जिस बुद्धिके द्वारा (धर्मम्) धर्म (च) और (अधर्मम्) अधर्मको (च) तथा (कार्यम्) कर्तव्य (च) और (अकार्यम्) अकर्तव्यको (एव) भी (अयथावत्) यथार्थ नहीं (प्रजानाति) जानता (सा) वह (बुद्धिः) बुद्धि (राजसी) राजसी है। (31)

अध्याय 18 का श्लोक 32

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी। ३२।

अधर्मम्, धर्मम्, इति, या, मन्यते, तमसा, आवृता,
सर्वार्थान्, विपरीतान्, च, बुद्धिः, सा, पार्थ, तामसी।।32।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (या) जो (तमसा) तमोगणुसे (आवृता) घिरी हुई बुद्धि (अधर्मम्) अर्धमको भी (धर्मम्) 'यह धर्म है' (इति) ऐसा मान लेती है (च) तथा इसी प्रकार अन्य (सर्वार्थान्) सम्पूर्ण पदार्थोको भी (विपरीतान्) विपरीत (मन्यते) मान लेती है (सा) वह (बुद्धिः) बुद्धि (तामसी) तामसी है। (32)

अध्याय 18 का श्लोक 33

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी। ३३।

धृत्या, यया, धारयते, मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः,
योगेन, अव्यभिचारिण्या, धृतिः, सा, पार्थ, सात्त्विकी।।33।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (यया) जिस (अव्यभिचारिण्या) अव्यभिचारिणी एक इष्ट पर आधारित (धृत्या) धारणशक्तिसे मनुष्य (योगेन) भक्तियोगके द्वारा (मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः) मन, स्वांस और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको (धारयते) धारण करता है (सा) वह (धृतिः) धृति (सात्त्विकी) सात्विकी है। (33)

अध्याय 18 का श्लोक 34

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी। ३४।

यया, तु, धर्मकामार्थान्, धृत्या, धारयते, अर्जुन,
प्रसंगेन, फलाकाङ्क्षी, धृतिः, सा, पार्थ, राजसी।।34।।

अनुवाद : (तु) परंतु (पार्थ) हे पृथापुत्र (अर्जुन) अर्जुन! (फलाकाङ्क्षी) फलकी इच्छावाला मनुष्य (यया) जिस (धृत्या) धारणशक्तिके द्वारा (प्रसंगेन) अत्यन्त आसक्तिसे (धर्मकामार्थान्) धर्म, अर्थ और कामोंको (धारयते) धारण करता है (सा) वह (धृतिः) धारणभक्ति (राजसी) राजसी है। (34)

अध्याय 18 का श्लोक 35

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी। ३५।

यया, स्वप्नम्, भयम्, शोकम्, विषादम्, मदम् एव, च,
न, विमुचति, दुर्मेधाः, धृतिः, सा, पार्थ, तामसी।।35।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (दुर्मेधाः) नीच स्वभाव वाला (यया) जिस (स्पप्नम्) निंद्रा (भयम्) भय (शोकम्) चिन्ता (च) और (विषादम्) दुःखको तथा (मदम्) नशे को (एव)भी (न,विमुचति)नहीं छोड़ता (सा)वह (धृतिः)भक्तिधारणा (तामसी) तामसी है। (35)

अध्याय 18 का श्लोक 36.37

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति। ३६।

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्।३७।

सुखम्, तु, इदानीम्, त्रिविधम्, श्रृणु, मे, भरतर्षभ,
अभ्यासात्, रमते, यत्र, दुःखान्तम्, च, निगच्छति।।36।।
यत्, तत्, अग्रे, विषम्, इव, परिणामे, अमृतोपमम्,
तत्, सुखम्, सात्विकम्, प्रोक्तम्, आत्मबुद्धिप्रसादजम्।।37।।

अनुवाद : (भरतर्षभ) हे भरतश्रेष्ठ! (इदानीम्) अब (त्रिविधम्) तीन प्रकारके (सुखम्) सुखको (तु) भी तू (मे) मुझसे (श्रृणु) सुन। (यत्र) जिस (अभ्यासात्) भजन अभ्यासमें (रमते) लीन रहता है (च) और जिससे (दुःखान्तम्) दुःखोंके अन्तको (निगच्छति) प्राप्त हो जाता है (यत्) जो ऐसा सुख है (तत्) वह (अग्रे) आरम्भकालमें यद्यपि (विषम्) विषके (इव) तुल्य प्रतीत होता है परंतु (परिणामे) परिणाममें (अमृतोपमम्) अमृतके तुल्य है इसलिये (तत्) वह (आत्मबुद्धिप्रसादजम्) परमात्मविषयक बुद्धिके प्रसादसे उत्पन्न होनेवाला (सुखम्) सुख (सात्त्विकम्) सात्विक (प्रोक्तम्) कहा गया है। (36,37)

अध्याय 18 का श्लोक 38

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्।३८।

विषयेन्द्रियसंयोगात्, यत्, तत्, अग्रे, अमृतोपमम्,
परिणामे, विषम्, इव, तत्, सुखम्, राजसम्, स्मृतम्।।38।।

अनुवाद : (यत्) जो (सुखम्) सुख (विषयेन्द्रियसंयोगात्) विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होता है (तत्) वह (अग्रे) पहले भोगकालमें (अमृतोपमम्) अमृतके तुल्य प्रतीत होनेपर भी (परिणामे) परिणाममें (विषम्) विषके (इव) तुल्य है इसलिये (तत्) वह सुख (राजसम्) राजस (स्मृतम्) कहा गया है। (38)

अध्याय 18 का श्लोक 39

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्।३९।

यत्, अग्रे, च, अनुबन्धे, च, सुखम् मोहनम्, आत्मनः,
निद्रालस्यप्रमादोत्थम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम्।।39।।

अनुवाद : (यत्) जो (सुखम्) सुख (च) तथा (अग्रे) पहले भोगकालमें (च) तथा (अनुबन्धे) परिणाममें (आत्मनः) आत्माको (मोहनम्) मोहित करनेवाला है (तत्) वह (निद्रालस्यप्रमादोत्थम्) निंद्रा आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न सुख (तामसम्) तामस (उदाहृतम्) कहा गया है। (39)

अध्याय 18 का श्लोक 40

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः।४०।

न, तत्, अस्ति, पृथिव्याम्, वा, दिवि, देवेषु, वा, पुनः,
सत्त्वम्, प्रकृतिजैः, मुक्तम्, यत्, एभिः, स्यात्, त्रिभिः, गुणैः।।40।।

अनुवाद : (पृथिव्याम्) पृथ्वीमें (वा) या (दिवि) आकाशमें (वा) अथवा (देवेषु) देवताओंमें (पुनः) फिर कहीं भी (तत्) वह ऐसा कोई भी (सत्त्वम्) सत्व (न) नहीं (अस्ति) है (यत्) जो (प्रकृतिजैः) प्रकृतिसे उत्पन्न (एभिः) इन (त्रिभिः) तीनों (गुणैः) गुणोंसे (मुक्तम्) रहित (स्यात्) हो। (40)

अध्याय 18 का श्लोक 41

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः। ४१।

ब्राह्मणक्षत्रियविशाम्, शूद्राणाम्, च, परन्तप,
कर्माणि, प्रविभक्तानि, स्वभावप्रभवैः, गुणैः।।41।।

अनुवाद : (परन्तप) हे परन्तप! (ब्राह्मणक्षत्रियविशाम्) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके (च) तथा (शूद्राणाम्) शूद्रोंके (कर्माणि) कर्म (स्वभावप्रभवैः) स्वभावसे उत्पन्न (गुणैः) गुणोंके द्वारा (प्रविभक्तानि) विभक्त किये गये हैं। (41)

अध्याय 18 का श्लोक 42

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्। ४२।

शमः, दमः, तपः, शौचम्, क्षान्तिः, आर्जवम्, एव, च,
ज्ञानम्, विज्ञानम्, आस्तिक्यम्, ब्रह्मकर्म, स्वभावजम्।।42।।

अनुवाद : (शमः) छूआ छूत रहित तथा सुख दुःख को प्रभु कृप्या जानना (दमः) इन्द्रियोंका दमन करना (तपः) धार्मिक नियमों के पालनके लिये कष्ट सहना (शौचम्) बाहर-भीतरसे शुद्ध रहना अर्थात् छलकपट रहित रहना (क्षान्तिः) दूसरोंके अपराधोंको क्षमा करना (आर्जवम्) मन, इन्द्रिय और शरीरको सरल रखना (आस्तिक्यम्) शास्त्र विधि अनुसार भक्ति से परमेश्वर तथा उसके सत्लोक में श्रद्धा रखना (ज्ञानम्) प्रभु भक्ति बहुत आवश्यक है। नहीं तो मानव जीवन व्यर्थ है, यह साधारण ज्ञान तथा पूर्ण परमात्मा कौन है, कैसा है? उसकी प्राप्ति की विधि क्या है इस प्रकार का ज्ञान (च) और (विज्ञानम्) परमात्माके तत्वज्ञान को जानना तथा अन्य तीनों वर्णों को शास्त्र विधि अनुसार साधना समझाना (एव) ही (ब्रह्मकर्म) ब्रह्म के विषय में कर्त्तव्य कर्म को जानने वाले ब्रह्मण के कर्म हैं। जो (स्वभावजम्) स्वभाव जनित होते हैं क्योंकि भगवान प्राप्ति के विषय में भक्त के स्वाभाविक कर्म हैं। (42)

अध्याय 18 का श्लोक 43

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्। ४३।

शौर्यम्, तेजः, धृतिः, दाक्ष्यम्, युद्धे, च, अपि, अपलायनम्,
दानम्, ईश्वरभावः, च, क्षात्रम्, कर्म, स्वभावजम्।।43।।

अनुवाद : (शौर्यम्) शूर-वीरता (तेजः) तेज (धृतिः) धैर्य (दाक्ष्यम्) चतुरता (च) और (युद्धे) युद्धमें (अपि) भी (अपलायनम्) न भागना (दानम्) दान देना (च) और (ईश्वरभावः) पूर्ण परमात्मामें रूचि स्वामिभाव ये सब के सब ही (क्षात्रम्) क्षत्रियके (स्वभावजम्) स्वाभाविक (कर्म) कर्म हैं। (43)

अध्याय 18 का श्लोक 44

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्। ४४।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यम्, वैश्यकर्म, स्वभावजम्,
परिचर्यात्मकम्, कर्म, शूद्रस्य, अपि, स्वभावजम्।।44।।

अनुवाद : (कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यम्) खेती, गऊ रक्षा और उदर के लिए परमात्मा प्राप्ति का सौदा करना ये (वैश्यकर्म, स्वभावजम्) वैश्यके स्वाभाविक कर्म हैं तथा (परिचर्यात्मकम्) सब वर्णोंकी सेवा तथा पूर्ण प्रभु की भक्ति करना (शूद्रस्य) शूद्रका (अपि) भी (स्वभावजम्) स्वाभाविक (कर्म) कर्म है। (44)

अध्याय 18 का श्लोक 45

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु। ४५।

स्वे, स्वे, कर्मणि, अभिरतः, संसिद्धिम्, लभते, नरः,
स्वकर्मनिरतः, सिद्धिम्, यथा, विन्दति, तत्, श्रृणु।।45।।

अनुवाद : (स्वे,स्वे) अपने-अपने स्वाभाविक (कर्मणि) व्यवहारिक कर्मों तथा सत् भक्ति रूपी कर्मों में (अभिरतः) तत्परतासे लगा हुआ (नरः) मनुष्य (संसिद्धिम्) परम सिद्धिको (लभते) प्राप्त हो जाता है (स्वकर्मनिरतः) अपने स्वाभाविक कर्ममें लगा हुआ मनुष्य (यथा) जिस प्रकारसे (सिद्धिम्) परम सिद्धिको (विन्दति) प्राप्त होता है (तत्) उस विधिको तू (श्रृणु) सुन। (45)

अध्याय 18 का श्लोक 46

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः। ४६।

यतः, प्रवृत्तिः, भूतानाम्, येन्, सर्वम्, इदम्, ततम्,
स्वकर्मणा, तम्, अभ्यर्च्य, सिद्धिं, विन्दति, मानवः।।46।।

अनुवाद : (यतः) जिस परमेश्वरसे (भूतानाम्) सम्पूर्ण प्राणियोंकी (प्रवृतिः) उत्पत्ति हुई है और (येन) जिससे (इदम्) यह (तम्) माया रूप (सर्वम्) समस्त जगत् (ततम्) व्याप्त है उस परमेश्वरकी (स्वकर्मणा) अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा अर्थात् हठ योग न करके सांसारिक कार्य करता हुआ (अभ्यर्च्य) पूजा करके (मानवः) मनुष्य (सिद्धिम्) सिद्धिको (विन्दति) प्राप्त हो जाता है। (46)

अध्याय 18 का श्लोक 47

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्। ४७।

श्रेयान्, स्वधर्मः, विगुणः, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्,
स्वभावनियतम्, कर्म, कुर्वन्, न, आप्नोति, किल्बिषम्।।47।।

अनुवाद : (विगुणः) गुण रहित (स्वनुष्ठितात्) स्वयं मनमाना अर्थात् शास्त्र विधि रहित अच्छी प्रकार आचरण किए हुए (परधर्मात्) दूसरेके धर्म अर्थात् धार्मिक पूजा से (स्वधर्मः) अपना धर्म

अर्थात् शास्त्र विधि अनुसार धार्मिक पूजा (श्रेयान्) श्रेष्ठ है (स्वभावनियतम्) अपने वर्ण के स्वभाविक अर्थात् जो भी जिस क्षत्री, वैश्य, ब्राह्मण व शुद्र वर्ण में उत्पन्न है (कर्म) कर्म तथा भक्ति कर्म (कुर्वन्) करता हुआ (किल्बिषम्) पापको (न आप्नोति) प्राप्त नहीं होता। (47)

अध्याय 18 का श्लोक 48

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः। ४८।

सहजम्, कर्म, कौन्तेय, सदोषम्, अपि, न, त्यजेत्,
सर्वारम्भाः, हि, दोषेण, धूमेन, अग्निः, इव, आवृताः।।48।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे कुन्तीपुत्र! (सदोषम्) दोष युक्त होने पर (अपि) भी (सहजम्) सहज योग अर्थात् वर्णानुसार कार्य करते हुए शास्त्र विधि अनुसार भक्ति (कर्म) कर्मको (न) नहीं (त्यजेत्) त्यागना चाहिए (हि) क्योंकि (धूमेन) धूएँसे (अग्निः) अग्निकी (इव) भाँति (सर्वारम्भाः) सभी कर्म (दोषेण) दोषसे (आवृताः) युक्त हैं। (48)

भावार्थ :-- जिस भी व्यक्ति का जिस वर्ण (ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रीव शुद्र कुल) में जन्म है उस के कर्म में पाप भी समाया है। जैसे ब्राह्मण हवन करता है उसमें प्राणियों कि हिंसा होती है। वैश्य खेती व व्यापार करता है, क्षत्री शत्रु से युद्ध करता है। शुद्र सफाई आदि सेवा करता है। प्रत्येक कर्म में हिंसा होती है। फिर भी त्यागने योग्य कर्म नहीं है। क्योंकि इन कर्मों में हिंसा करना उद्देश्य नहीं होता। यदि देखा जाए तो सर्व उपरोक्त कर्म दोष युक्त हैं। तो भी प्रभु आज्ञा होने से कर्त्तव्य कर्म हैं। यही प्रमाण अध्याय 4 श्लोक 21 में है कि शरीर समबन्धि कर्म करता हुआ पाप को प्राप्त नहीं होता। गीता अध्याय 18 श्लोक 56 में भी है।

अध्याय 18 का श्लोक 49

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्न्यासेनाधिगच्छति। ४९।

असक्तबुद्धिः, सर्वत्र, जितात्मा, विगतस्पृहः,
नैष्कर्म्यसिद्धिम्, परमाम्, सन्न्यासेन, अधिगच्छति।।49।।

अनुवाद : (सर्वत्र) सर्वत्र (असक्तबुद्धिः) आसक्तिरहित बुद्धिवाला (विगतस्पृहः) स्पृहारहित और (जितात्मा) बुरे कर्मों से विजय प्राप्त भक्त आत्मा (सन्न्यासेन) तत्व ज्ञान के अतिरिक्त सर्व ज्ञानों से सन्यास प्राप्त करने वाले द्वारा (परमाम्) उस परम अर्थात् सर्व श्रेष्ठ (नैष्कर्म्यसिद्धिम्) पूर्ण पाप विनाश होने पर जो पूर्ण मुक्ति होती है, उस सिद्धि अर्थात् परमगति को (अधिगच्छति) प्राप्त होता है। (49)

अध्याय 18 का श्लोक 50

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा। ५०।

सिद्धिम्, प्राप्तः, यथा, ब्रह्म, तथा, आप्नोति, निबोध, मे,
समासेन, एव, कौन्तेय, निष्ठा, ज्ञानस्य, या, परा।।50।।

अनुवाद : (या) जो कि (ज्ञानस्य) ज्ञानकी (परा) श्रेष्ठ (निष्ठा) उपलब्धि है (सिद्धिम्) उस नैष्कर्म्यसिद्धिको (यथा) जिसे (प्राप्तः) प्राप्त होकर (ब्रह्म) परमात्मा को (आप्नोति) प्राप्त होता है

(तथा) उस प्रकारको (कौन्तेय) हे कुन्तीपुत्र! तू (समासेन) संक्षेपमें (एव) ही (मे) मुझसे (निबोध) समझ। (50)

अध्याय 18 का श्लोक 51

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च। ५१।

बुद्ध्या, विशुद्धया, युक्तः, धृत्या, आत्मानम्, नियम्य, च,
शब्दादीन्, विषयान्, त्यक्त्वा, रागद्वेषौ, व्युदस्य, च।।51।।

अनुवाद : (विशुद्धया) विशुद्ध (बुद्धया) बुद्धिसे (युक्तः) युक्त (च) तथा (धृत्या) सात्विक धारण शक्ति के द्वारा (आत्मानम् नियम्य) अपने आप को संयमी करके (च) और (शब्दादीन्) शब्दादी (विषयान्) विकारों को (त्यक्त्वा) त्यागकर (रागद्वेषौ) राग द्वेष को (व्युदस्य) सर्वदा नष्ट करके (51)

गीता अध्याय 18 श्लोक 52

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः। ५२।

विविक्तसेवी, लघ्वाशी, यतवाक्कायमानसः,
ध्यानयोगपरः, नित्यम्, वैराग्यम्, समुपाश्रितः।।52।।

(लघ्वाशी) अन्न जल का संयमी (विविक्त सेवी) व्यर्थ वार्ता से बच कर एकान्त प्रेमी (यत वाक् काय मानसः) मन-कर्म वचन पर संयम करने वाला (नित्यम्) निरन्तर (ध्यान योग परः) सहज ध्यान योग के प्रायाण (वैराग्यम्) वैराग्य का (समुपाश्रितः) आश्रय लेने वाला (52)

गीता अध्याय 18 श्लोक 53

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते। ५३।

अहंकारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, परिग्रहम्,
विमुच्य निर्ममः, शान्तः, ब्रह्मभूयाय, कल्पते।।53।।

अनुवाद :-- (अहंकारम्) अहंकार (बलम्) शक्ति (दर्पम्) घमण्ड (कामम्) काम अर्थात् विलास (क्रोधम्) क्रोध (परिग्रहम्) परिग्रह अर्थात् आवश्यकता से अधिक संग्रह का (विमुच्य) त्याग करके (निर्ममः) ममता रहित (शान्तः) शान्त साधक (ब्रह्मभूयाय) पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होने का (कल्पते) पात्र होता है। (53)

अध्याय 18 का श्लोक 54

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्। ५४।

ब्रह्मभूतः, प्रसन्नात्मा, न, शोचति, न, काङ्क्षति,
समः, सर्वेषु, भूतेषु, मद्भक्तिम्, लभते, पराम्।।54।।

अनुावद : (ब्रह्मभूतः) परमात्मा प्राप्ति योग्य हुआ प्राणी (प्रसन्नात्मा) प्रसन्न मनवाला योगी (न) न (शोचति) शोक करता है (न) न (कांक्षति) आकांक्षा ही करता है ऐसा (सर्वेषु) समस्त (भूतेषु)

प्राणियोंमें (समः) एक जैसा भाव वाला (पराम्,मद्भक्तिम्) मेरे वाली शास्त्रानुकूल श्रेष्ठ भक्ति को (लभते) प्राप्त हो जाता है। (54)

भावार्थ :-- इस श्लोक 54 का भावार्थ है कि जो प्रथम ब्रह्म गायत्री मन्त्र साधक को प्रदान किया जाता है जिस से सर्व कमल चक्र खुल जाते हैं अर्थात् कुण्डलनि शक्ति जागृत हो जाती है वह उपासक परमात्मा प्राप्ति का पात्र बन जाता है। उस सुपात्र को ब्रह्म काल की परम भक्ति का मन्त्र ओं (ॐ) दिया जाता है। ओम्+तत् मिलकर दो अक्षर का सत्यनाम बनता है। इससे पूर्ण मोक्ष मार्ग प्रारम्भ होता है। इसलिए इस गीता अध्याय 18 श्लोक 54 में वर्णन है।

अध्याय 18 का श्लोक 55

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।५५।

भक्त्या, माम्, अभिजानाति, यावान्, यः, च, अस्मि, तत्त्वतः,
ततः, माम्, तत्त्वतः, ज्ञात्वा, विशते, तदनन्तरम्।।55।।

अनुवाद : (भक्त्या) वह भक्त (माम्) मुझ को (यः) जो (च) और (यावान्) जितना (अस्मि) हूँ, (तत्त्वतः, अभिजानाति) ठीक वैसा का वैसा तत्वसे जान लेता है तथा (ततः) उस भक्तिसे (माम्) मुझको (तत्त्वतः) तत्वसे (ज्ञात्वा) जानकर (तदनन्तरम्) तत्काल ही (विशते) पूर्ण परमात्मा की भक्ति में लीन हो जाता है। (55)

अध्याय 18 का श्लोक 56

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्।५६।

सर्वकर्माणि, अपि, सदा, कुर्वाणः, मद्व्यपाश्रयः,
मत्प्रसादात्, अवाप्नोति, शाश्वतम्, पदम्, अव्ययम्।।56।।

अनुवाद : (मद्व्यपाश्रयः) मेरे द्वारा बताए शास्त्रानुकूल मार्ग के आश्रित अर्थात् मतावलम्बी (सर्वकर्माणि) सम्पूर्ण कर्मोंको (सदा) सदा (कुर्वाणः) करता हुआ (अपि) भी (मत्प्रसादात्) मेरे उस मत अर्थात् शास्त्रानुकूल साधना के पूर्ण ज्ञान की कृप्यासे (शाश्वतम्) सनातन (अव्ययम्) अविनाशी (पदम्) पदको (अवाप्नोति) प्राप्त हो जाता है। (56)

नोट : मत का भाव है कि जैसे कहते हैं कि संतमत सतसंग अर्थात् संतों द्वारा दिए गए विचारों के आधार पर परमात्मा का विवरण (सतसंग)। मत का अर्थात् प्रकरण अनुसार मेरा भी होता है।

अध्याय 18 का श्लोक 57

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।५७।

चेतसा, सर्वकर्माणि, मयि, सन्न्यस्य, मत्परः,
बुद्धियोगम्, उपाश्रित्य, मच्चित्तः, सततम्, भव।।57।।

अनुवाद : (सर्वकर्माणि) सब कर्मोंको (चेतसा) मनसे (सन्न्यस्य) त्याग कर तथा (बुद्धियोगम्) ज्ञान योगको (उपाश्रित्य) आश्रय करके (मयि) मेरे (मत्परः) मत पर आधारित होकर और (सततम्) निरन्तर (मच्चित्तः) मेरे में चितवाला (भव) हो। (57)

अध्याय 18 का श्लोक 58

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि।५८।

मच्चित्तः, सर्वदुर्गाणि, मत्प्रसादात्, तरिष्यसि,
अथ, चेत्, त्वम्, अहंकारात्, न, श्रोष्यसि, विनङ्क्ष्यसि।।58।।

अनुवाद : (मच्चितः) मेरे में चितवाला होकर (त्वम्) तू (मत्प्रसादात्) मेरे द्वारा बताई शास्त्रानुकूल विचार धारा की कृप्यासे (सर्वदुर्गाणि) समस्त संकटोंको अनायास ही (तरिष्यसि) पार कर जाएगा (अथ) और (चेत्) यदि (अहंकारात्) अहंकारके कारण मेरे वचनोंको (न) न (श्रोष्यसि) सुनेगा तो (विनङ्क्ष्यसि) नष्ट हो जायगा अर्थात् योग भ्रष्ट हो गया तो नष्ट हो जाएगा। यही प्रमाण अध्याय 6 श्लोक 40-46 तक है। (58)

अध्याय 18 का श्लोक 59

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति।५९।

यत्, अहंकारम्, आश्रित्य, न, योत्स्ये, इति, मन्यसे,
मिथ्या, एषः, व्यवसायः, ते, प्रकृतिः, त्वाम्, नियोक्ष्यति।।59।।

अनुवाद : (यत्) जो तू (अहंकारम्) अहंकारका (आश्रित्य) आश्रय लेकर (इति) यह (मन्यसे) मान रहा है कि (न,योत्स्ये) मैं युद्ध नहीं करूँगा, (ते) तेरा (एषः) यह (व्यवसायः) निश्चय (मिथ्या) मिथ्या है क्योंकि तेरा (प्रकृतिः) क्षत्री स्वभाव (त्वाम्) तुझे (नियोक्ष्यति) जबरदस्ती युद्धमें लगा देगा। (59)

अध्याय 18 का श्लोक 60

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत्।६०।

स्वभावजेन, कौन्तेय, निबद्धः, स्वेन्, कर्मणा,
कर्तुम्, न, इच्छसि, यत्, मोहात्, करिष्यसि, अवशः, अपि, तत्।।60।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे कुन्तीपुत्र! (यत्) जिस कर्मको तू (मोहात्) मोहके कारण (कर्तुम्) करना (न) नहीं (इच्छसि) चाहता (तत्) उसको (अपि) भी (स्वेन्) अपनेपूर्वकृत (स्वभावजेन) स्वाभाविक क्षत्री (कर्मणा) कर्मसे (निबद्धः) बँधा हुआ (अवशः) परवश होकर (करिष्यसि) करेगा। (60)

अध्याय 18 का श्लोक 61

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।६१।

ईश्वरः, सर्वभूतानाम्, हृद्देशे, अर्जुन, तिष्ठति,
भ्रामयन्, सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि, मायया।।61।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (यन्त्रारूढानि) शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए (सर्वभूतानि) सम्पूर्ण प्राणियोंको (ईश्वरः) अन्तर्यामी ईश्वर (मायया) अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार (भ्रामयन्)

भ्रमण करवाता हुआ (सर्वभूतानाम्) सब प्राणियोंके (हृद्देशे) हृदयमें (तिष्ठति) स्थित है। (61)

अध्याय 18 का श्लोक 62

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्। ६२।

तम्, एव, शरणम्, गच्छ, सर्वभावेन, भारत,
तत्प्रसादात्, पराम्, शान्तिम्, स्थानम्, प्राप्स्यसि, शाश्वतम्।।62।।

अनुवाद : (भारत) हे भारत! तू (सर्वभावेन) सब प्रकारसे (तम्) उस परमेश्वरकी (एव) ही (शरणम्) शरणमें (गच्छ) जा। (तत्प्रसादात्) उस परमात्माकी कृपा से ही तू (पराम्) परम (शान्तिम्) शान्तिको तथा (शाश्वतम्) सदा रहने वाला सत (स्थानम्) स्थान/धाम/लोक को अर्थात् सत्लोक को (प्राप्स्यसि) प्राप्त होगा। (62)

अध्याय 18 का श्लोक 63

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु। ६३।

इति, ते, ज्ञानम्, आख्यातम्, गुह्यात्, गुह्यतरम्, मया,
विमृश्य, एतत्, अशेषेण, यथा, इच्छसि, तथा, कुरु।।63।।

अनुवाद : (इति) इस प्रकार (गुह्यात्) गोपनीयसे (गुह्यतरम्) अति गोपनीय (ज्ञानम्) ज्ञान (मया) मैंने (ते) तुझसे (आख्यातम्) कह दिया (एतत्) इस रहस्ययुक्त ज्ञानको (अशेषेण) पूर्णतया (विमृश्य) भलीभाँति विचारकर (यथा) जैसे (इच्छसि) चाहता है (तथा) वैसे ही (कुरु) कर। (63)

अध्याय 18 का श्लोक 64

सर्वगुह्यतमं भूयः श्रृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्। ६४।

सर्वगुह्यतमम्, भूयः, श्रृणु, मे, परमम्, वचः,
इष्टः, असि, मे, दृढम्, इति, ततः, वक्ष्यामि, ते, हितम्।।64।।

अनुवाद : (सर्वगुह्यतमम्) सम्पूर्ण गोपनीयोंसे अति गोपनीय (मे) मेरे (परमम्) परम रहस्ययुक्त (हितम्) हितकारक (वचः) वचन (ते) तुझे (भूयः) फिर (वक्ष्यामि) कहूँगा (ततः) इसे (श्रृणु) सुन (इति) यह पूर्ण ब्रह्म (मे) मेरा (दृढम्) पक्का निश्चित (इष्टः) इष्टदेव अर्थात् पूज्यदेव (असि) है। (64)

अध्याय 18 का श्लोक 65

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे। ६५।

मन्मनाः, भव, मद्भक्तः, मद्याजी, माम्, नमस्कुरु,
माम्, एव, एष्यसि, सत्यम्, ते, प्रतिजाने, प्रियः, असि, मे।।65।।

अनुवाद : (मन्मनाः) एक मनवाला (मद्भक्तः) मेरा मतानुसार भक्त (भव) हो (मद्याजी) मतानुसार मेरा पूजन करनेवाला (माम्) मुझको (नमस्कुरु) प्रणाम कर। (माम्) मुझे (एव) ही (एष्यसि) प्राप्त होगा (ते) तुझसे (सत्यम्) सत्य (प्रतिजाने) प्रतिज्ञा करता हूँ (मे) मेरा (प्रियः) अत्यन्त प्रिय (असि) है। (65)

अध्याय 18 का श्लोक 66

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। ६६।

सर्वधर्मान्, परित्यज्य, माम्, एकम्, शरणम्, व्रज,
अहम्, त्वा, सर्वपापेभ्यः, मोक्षयिष्यामि, मा, शुचः।।66।।

अनुवाद : गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में जिस परमेश्वर की शरण में जाने को कहा है इस श्लोक 66 में भी उसी के विषय में कहा है कि (माम्) मेरी (सर्वधर्मान्) सम्पूर्ण पूजाओंको (माम्) मुझ में (परित्यज्य) त्यागकर तू केवल (एकम्) एक उस अद्वितीय अर्थात् पूर्ण परमात्मा की (शरणम्) शरणमें (व्रज) जा। (अहम्) मैं (त्वा) तुझे (सर्वपापेभ्यः) सम्पूर्ण पापोंसे (मोक्षयिष्यामि) छुड़वा दूँगा तू (मा,शुचः) शोक मत कर। (66)

विशेष :- अन्य गीता अनुवाद कर्ताओं ने ''व्रज्'' शब्द का अर्थ आना किया है जो अनुचित है ''व्रज्'' शब्द का अर्थ जाना, चला जाना आदि होता है।

भावार्थ :- श्लोक 63 का भावार्थ है कि गीता ज्ञान दाता ब्रह्म कह रहा है कि हे अर्जुन! यह गीता वाला अति गोपनीय ज्ञान मैंने तुझे कह दिया। फिर श्लोक 64 में गीता ज्ञानदाता एक और सम्पूर्ण गोपनीयों से भी गोपनीय वचन कहता है कि वह परमेश्वर जिस के विषय में श्लोक 62 में कहा है वह परमेश्वर मेरा (गीता ज्ञान दाता) का ईष्ट देव अर्थात् पूज्य देव है यही प्रमाण अध्याय 15 श्लोक 4 में भी कहा है कि मैं भी उस परमेश्वर की शरण हूँ। इससे सिद्ध है कि गीता ज्ञान दाता प्रभु से कोई अन्य सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर है वही पूजा के योग्य है। यही प्रमाण अध्याय 15 श्लोक 17 में भी है गीता ज्ञान दाता प्रभु कहता है कि अध्याय 15 श्लोक 16 में वर्णित क्षर पुरूष (ब्रह्म) तथा अक्षर पुरूष (परब्रह्म) से भी श्रेष्ठ परमेश्वर तो उपरोक्त दोनों से अन्य ही है वही वास्तव में परमात्मा कहलाता है। वह वास्तव में अविनाशी है। उसी की शरण में जाने के लिए कहा है।

अध्याय 18 का श्लोक 67

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति। ६७।

इदम्, ते, न, अतपस्काय, न, अभक्ताय, कदाचन,
न, च, अशुश्रुषवे, वाच्यम्, न, च, माम्, यः, अभ्यसूयति।।67।।

अनुवाद : (ते) तुझे (इदम्) यह गीतारूप रहस्यमय उपदेश (कदाचन) किसी भी कालमें (न) न तो (अतपस्काय) तपरहित मनुष्यसे (वाच्यम्) कहना चाहिए (न) न (अभक्ताय) भक्तिरहितसे (च) और (न) न (अशुश्रूषवे) बिना सुननेकी इच्छावालेसे ही कहना चाहिए (च) तथा (यः) जो (माम्) मुझमें (अभ्यसूयति) दोषदृष्टि रखता है (न) नहीं कहना चाहिए। (67)

अध्याय 18 का श्लोक 68

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः। ६८।

यः, इमम्, परमम्, गुह्यम्, मद्भक्तेषु, अभिधास्यति,
भक्तिम्, मयि, पराम्, कृत्वा, माम्, एव, एष्यति, असंशयः।।68।।

अनुवाद : (यः) जो पुरुष (मयि) मुझमें (पराम्) परम (भक्तिम्) भक्ति (कृत्वा) करके (इमम्)

इस (परमम्) परम (गुह्यम्) रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको (मद्भक्तेषु) भक्तोंमें (अभिधास्यति) कहेगा वह (माम्) मुझको (एव) ही (एष्यति) प्राप्त होगा (असंशयः) इसमें कोई संदेह नहीं है। (68)

अध्याय 18 का श्लोक 69

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि।६९।

न, च, तस्मात्, मनुष्येषु, कश्चित्, मे, प्रियकृत्तमः,
भविता, न, च, मे, तस्मात्, अन्यः, प्रियतरः, भुवि।।69।।

अनुवाद : (तस्मात्) उससे बढ़कर (मे) मेरा (प्रियकृत्तमः) प्रिय कार्य करनेवाला (मनुष्येषु) मनुष्योंमें (कश्चित्) कोई (च) भी (न) नहीं है (च) तथा (भुवि) पृथ्वीभरमें (तस्मात्) उससे बढ़कर (मे) मेरा (प्रियतरः) प्रिय (अन्यः) दूसरा कोई (भविता) भविष्यमें होगा भी (न) नहीं। (69)

अध्याय 18 का श्लोक 70

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः।७०।

अध्येष्यते, च, यः, इमम्, धर्म्यम्, संवादम्, आवयोः,
ज्ञानयज्ञेन, तेन, अहम्, इष्टः, स्याम्, इति, मे, मतिः।।70।।

अनुवाद : (यः) जो पुरुष (इमम्) इस (धर्म्यम्) धर्ममय (आवयोः) हम दोनोंके (संवादम्) संवादरूप गीताशास्त्रको (अध्येष्यते) पढ़ेगा (तेन) उसके द्वारा (च) भी (अहम्) मैं (ज्ञानयज्ञेन) ज्ञानयज्ञसे (इष्टः) पूज्यदेव (स्याम्) होऊँगा (इति) ऐसा (मे) मेरा (मतिः) मत है। (70)

अध्याय 18 का श्लोक 71

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्। ७१।

श्रद्धावान्, अनसूयः, च, श्रृणुयात्, अपि, यः, नरः,
सः, अपि, मुक्तः, शुभान्, लोकान्, प्राप्नुयात्, पुण्यकर्मणाम्।।71।।

अनुवाद : (यः) जो (नरः) मनुष्य (श्रद्धावान्) श्रद्धायुक्त (च) और (अनसूयः) दोष-दृष्टिसे रहित होकर इस गीताशास्त्रका (श्रृणुयात् अपि) श्रवण भी करेगा, (सः) वह (अपि) भी (मुक्तः) मुक्त होकर (पुण्यकर्मणाम्) उत्तम कर्म करनेवालोंके (शुभान्) श्रेष्ठ (लोकान्) लोकोंको (प्राप्नुयात्) प्राप्त होगा। (71)

अध्याय 18 का श्लोक 72

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय।७२।

कच्चित्, एतत्, श्रुतम्, पार्थ, त्वया, एकाग्रेण, चेतसा,
कच्चित्, अज्ञानसम्मोहः, प्रनष्टः, ते, धनजय।। 72।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (कच्चित्) क्या (एतत्) इस गीताशास्त्रको (त्वया) तूने (एकाग्रेण, चेतसा) एकाग्रचितसे (श्रुतम्) श्रवण किया और (धनजय) हे धनजय! (कच्चित्) क्या (ते) तेरा (अज्ञानसम्मोहः) अज्ञानजनित मोह (प्रनष्टः) नष्ट हो गया। (72)

अध्याय 18 का श्लोक 73 (अर्जुन उवाच)

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।७३।

नष्टः, मोहः, स्मृतिः, लब्धा, त्वत्प्रसादात्, मया, अच्युत,
स्थितः, अस्मि, गतसन्देहः, करिष्ये, वचनम्, तव।।73।।

अनुवाद : (अच्युत) हे अच्युत! (त्वत्प्रसादात्) आपकी कृप्यासे मेरा (मोहः) मोह (नष्टः) नष्ट हो गया और (मया) मुझे (स्मृतिः) ज्ञान (लब्धा) प्राप्त हो गया (गतसन्देहः) संश्यरहित होकर (स्थितः) स्थित (अस्मि) हूँ अतः (तव) आपकी (वचनम्) आज्ञाका (करिष्ये) पालन करूँगा। (73)

अध्याय 18 का श्लोक 74 (संजय उवाच)

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम्।७४।

इति, अहम्, वासुदेवस्य, पार्थस्य, च, महात्मनः,
संवादम्, इमम्, अश्रौषम्, अद्भुतम्, रोमहर्षणम्।।74।।

अनुवाद : (इति) इस प्रकार (अहम्) मैंने (वासुदेवस्य) श्रीवासुदेवके (च) और (महात्मनः) महात्मा (पार्थस्य) अर्जुनके (इमम्) इस (अद्भुतम्) अद्भुत रहस्ययुक्त (रोमहर्षणम्) रोमांचकारक (संवादम्) संवादको (अश्रौषम्) सुना। (74)

अध्याय 18 का श्लोक 75

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम्।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्।७५।

व्यासप्रसादात्, श्रुतवान्, एतत्, गुह्यम्, अहम्, परम्
योगम्, योगेश्वरात्, कृष्णात्, साक्षात्, कथयतः, स्वयम्।।75।।

अनुवाद : (व्यासप्रसादात्) श्रीव्यासजीकी कृप्यासे दिव्य दृष्टि पाकर (अहम्) मैंने (एतत्) इस (परम्) परम (गुह्यम्) गोपनीय (योगम्) योगको अर्जुनके प्रति (कथयतः) कहते हुए (स्वयम्) स्वयं (योगेश्वरात्) योगेश्वर (कृष्णात्) भगवान् श्रीकृष्णसे (साक्षात्) प्रत्यक्ष (श्रुतवान्) सुना है। (75)

अध्याय 18 का श्लोक 76

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः।७६।

राजन्, संस्मृत्य, संस्मृत्य, संवादम्, इमम्, अद्भुतम्,
केशवार्जुनयोः, पुण्यम्, हृष्यामि, च, मुहुर्मुहुः।।76।।

अनुवाद : (राजन्) हे राजन् (केशवार्जुनयोः) भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनके (इमम्) इस रहस्ययुक्त (पुण्यम्) कल्याणकारक (च) और (अद्भुतम्) अद्भुत (संवादम्) संवादको (संस्मृत्य,संस्मृत्य) पुनः-पुनः सुमरण करके मैं (मुहुर्मुहु) बार-बार (हृष्यामि) हर्षित हो रहा हूँ। (76)

अध्याय 18 का श्लोक 77

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः।७७।

तत्, च, संस्मृत्य, संस्मृत्य, रूपम्, अति, अद्भुतम्, हरेः,
विस्मयः, मे, महान्, राजन्, हृष्यामि, च, पुनः, पुनः।।77।।

अनुवाद : (राजन्) हे राजन्! (हरेः) श्रीहरिके (तत्) उस (अति) अत्यन्त (अद्भुतम्) विलक्षण (रूपम्) रूपको (च) भी (संस्मृत्य,संस्मृत्य) पुनः-पुनः सुमरण करके (मे) मेरे चितमें (महान्) महान् (विस्मयः) आश्चर्य होता है (च) और (पुनः,पुनः) बार-बार (हृष्यामि) हर्षित हो रहा हूँ। (77)

अध्याय 18 का श्लोक 78

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।७८।

यत्र, योगेश्वरः, कृष्णः, यत्र, पार्थः, धनुर्धरः,
तत्र श्रीः, विजयः, भूतिः, ध्रुवा, नीतिः, मतिः, मम।।78।।

अनुवाद : (यत्र) जहाँ (योगेश्वरः) योगेश्वर (कृष्णः) भगवान् श्रीकृष्ण हैं और (यत्र) जहाँ (धनुर्धरः) गाण्डीव-धनुषधारी (पार्थः) अर्जुन हैं (तत्र) वहींपर (श्रीः) श्री (विजयः) विजय (भूतिः) विभूति और (ध्रुवा) अचल (नीतिः) नीति है (मम) मेरा (मतिः) मत है। (78)

(इति अध्याय अठारहवाँ)

❑❑❑

स्वयं काल (ब्रह्म) भगवान कह रहा है कि मैं नाशवान (क्षर पुरुष) हूँ तथा मेरे से ऊपर एक अविनाशी (अक्षर पुरुष) है परंतु वास्तव में हम दोनों से ऊपर अविनाशी तो अन्य ही है। जिसे अविनाशी परमात्मा (परम अक्षर पुरुष) नाम से जाना जाता है। वही परमात्मा तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण पोषण करता है। फिर अपनी वास्तविकता बताते हुए ब्रह्म (काल) भगवान कहता है कि मैं तो इसलिए पुरुषोत्तम कहलाता हूँ कि स्थूल शरीर धारी प्राणियों तथा सूक्ष्म शरीर में आत्मा से ही उत्तम हूँ। वास्तव में अविनाशी तो कोई और ही है। (अध्याय नं.15 के श्लोक नं. 16,18)

फिर अर्जुन को सलाह देता है कि यदि पूर्ण मुक्त होना है तो उस परमात्मा की शरण में जा। (अध्याय नं. 18 के श्लोक नं. 62, 64,66)। मैं भी उसी की शरण हूँ तथा मेरा उपास्य इष्ट भी वही है। (अध्याय नं. 15 के श्लोक नं. 4)

क्या गीता जी के पढ़ने वालों ने व प्रचार करने वाले संतों ने यह नहीं पढ़ा कि भगवान ने व्रत के लिए मना किया है? इससे साधक अपनी साधना में सफल नहीं हो सकता? गीता जी के अध्याय नं. 6 का श्लोक नं. 16 में लिखा है कि साधना न तो बिल्कुल न खाने वाले की पूरी होती है और न ही अधिक खाने वाले की अर्थात् व्रत (अन्न न खाना) वर्जित है। न अधिक जागने वाले की तथा न अधिक सोने वाले की।

क्या यह नहीं पढ़ा कि पित्र-पूजा, भूत-पूजा तथा देवी-देवताओं की पूजा न करके मेरी (सर्गुण परमात्मा गुरु की) पूजा करो। गीता जी के अध्याय नं. 9 का श्लोक नं. 25 है जिसमें प्रमुख प्रमाण ब्रजवासियों से इन्द्र (जो देवी देवताओं के राजा (स्वर्ग के राजा) देवराज इन्द्र) की पूजा भी बन्द करवाके कहा था कि भगवान की पूजा करो। इन देवी-देवताओं से अच्छा तो अपनी गऊओं (गायों) की सेवा (पूजा) करो जिससे वे अधिक दूध देवें या अपने उन चरगाह पहाड़ों की पूजा करों जहां आपकी गऊऐं चारा चर कर आती हैं तथा आपको अमृत दूध पिलाती हैं। यह देवी-देवता, पित्र-भूत आपको अस्थाई लाभ देकर नरक में ले जाते हैं तथा यह पूजा मूर्ख लोग करते हैं जिसके कारण फिर वे पतन को प्राप्त होते हैं अर्थात् जन्म-मरण में जाते हैं। गीता जी के अध्याय नं. 9 के श्लोक नं. 23, 24, 25 का भाव यह है --

एक समय पाँच अंधों ने हाथी वाले से कहा - ओ हाथी वाले हमें हाथी दिखा! हाथी वाले ने कहा अब अंधेरा है तथा आप भी अंधे हो। हाथी कैसे देखोगे? अंधों ने कहा हमारे हाथ आँखों का काम करते हैं। तब हाथी वाले ने कहा अच्छा आओ देखो हाथी। उस व्यक्ति ने उन पाँचों अंधों को हाथी के चारों ओर खड़ा कर दिया। अब एक ने सूंड को पकड़ा तथा अच्छी तरह हाथों से निरिक्षण किया। दूसरे ने पैरों का तीसरे ने पूँछ का, चौथे ने कानों का, पाँचवे ने पेट का। अपनी-2 तसल्ली करके चल पड़े। रास्ते में किसी ने पूछा कहां गए थे सूरदास? अंधों ने कहा हाथी देख कर आए हैं। व्यक्ति ने पूछा कैसा था हाथी? अंधों ने अपना-2 अनुभव बताया। एक (जिसने सूंड का निरिक्षण किया था) ने बताया हाथी लम्बी पाईप जैसा है। दूसरे (जिसने पैर का निरिक्षण किया था) ने कहा नहीं, हाथी थाम्ब (खम्बा) जैसा होता है। उसने पैरों को हाथी मान रखा था। तीसरे (जिसने पूँछ का निरिक्षण किया था) ने कहा हाथी पट्टे जैसा होता है। उसने पूँछ को ही हाथी समझ रखा था।

चौथे (जिसने कान का निरिक्षण किया था) ने कहा अरे! हाथी तो छाज (सूप) जैसा होता है। उसने कानों को ही हाथी समझ रखा था। पाँचवें (जिसने पेट का निरिक्षण किया था) ने कहा कि हाथी तो भींत (दिवार) जैसा होता है। उसने हाथी के पेट को ही हाथी मान रखा था।

यहां पर काल भगवान कह रहा है कि जो देवी-देवता हैं वे मेरे ही अंश हैं। परंतु वे आपको पूरा लाभ नहीं दे सकते। जैसे कोई हाथी की पूँछ से चिपका हो और हाथी चल रहा हो। वह सफर तो कर रहा है परंतु झटकम-लटकम हो रहा है। कोई कहे कि यहाँ मत चिपटो! नादान (मूर्ख) रास्ते में गिर जाओगे, ऊपर बैठो आपको हाथी यात्रा का सही लाभ मिलेगा। वे नादान कहते हैं कि 'पूंछ हाथी की ही है। यह लाभ भी हाथी ही दे रहा है।' परंतु यह पूर्ण लाभ नहीं है।

इसलिए यह यात्रा (देवी-देवताओं, पितरो, भूतों की पूजा) मूर्ख लोग करते हैं जो बार-2 गिर जाते हैं अर्थात् जन्म-मरण व चौरासी लाख जूनियों को बार-2 प्राप्त होते रहते हैं। इसलिए हाथी के ऊपर बैठो अर्थात् पूर्ण परमात्मा की पूजा करो जिससे यात्रा (परमात्मा की पूजा) का पूर्ण आनन्द प्राप्त हो सके। प्रमाण के लिए देखें गीता जी के अध्याय नं. 9 के श्लोक नं. 23, 24, 25 तथा अध्याय नं. 7 के श्लोक नं. 12 से 15 तथा 20 से 23 तक।

फिर वे संतजन लाखों भक्तजनों को पित्र-पूजा (श्राद्ध निकालना), देवी-देवताओं की पूजा, एकादशी-सोमवार- मंगलवार-शुक्रवार-शनिवार के व्रत आदि की सलाह देते हैं। भगवान के वचन की अवहेलना करके स्वयं भी नरक में जाते हैं तथा अनुयाईयों को भी नरक ले जाते हैं। कृप्या देखें गीता जी के अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तथा अध्याय 16 के श्लोक नं. 15 से 20 तक और अध्याय नं. 17 के श्लोक नं. 1 से 6 तक।

ऐसे साधकों को तथा मार्ग दर्शकों को राक्षस वृत्ति (स्वभाव) के कहा है। केवल मान-बड़ाई या पैसा प्राप्ति उनका प्रमुख उद्देश्य है, जीव कल्याण नहीं। यदि एक दिन भी ये संतजन कह दें कि गीता जी में भगवान ने यह सब मना किया है अर्थात् यह सब नहीं करना तो उनके पण्डाल खाली हो जाएँ तथा भक्तजन समूह कम हो जाए। उनके धंधे बंद हो जाएँ। गरीबदास जी महाराज कहते हैं :--

''तत्त्व भेद कोई ना कहै राई झूमकरा। पैसे ऊपर नाच सुनो राई झूमकरा।।''

भाव यह है कि गरीबदास जी महाराज कह रहे हैं कि तत्त्व भेद अर्थात् सही ज्ञान जनता को नहीं कहा जाता क्योंकि पैसा संतों का मुख्य उद्देश्य है, जिसके कारण समाज को धोखे में डाला गया है।

❑❑❑

शंका समाधान

''मुझ दास (रामपाल दास) को तत्व भेद प्राप्ति''

एक दिन इस दास(रामपाल दास) ने अपने पूज्य गुरुदेव स्वामी राम देवानन्द जी से पूछा कि हे गुरुवर ! यह सारनाम क्या है ? जिसके विषय में बार-2 सतग्रन्थ साहेब तथा परमेश्वर कबीर साहेब जी की वाणी में आता है। तब उन्होंने कहा कि आज तक किसी ने मेरे से इस विषय में नहीं पूछा। लाखों का समूह है। परंतु ये प्रभु नहीं चाहते ये तो माया चाहते हैं या प्रभुत्ता। गुरु जी ने कहा कि आपके दादा गुरु जी ने मुझे कहा था कि आपसे कोई ऐसी बात पूछे तो उसे यह वास्तविक मन्त्र तथा सारशब्द का भेद देना। वह पूर्ण संत होगा तथा कबीर परमेश्वर का वास्तविक भक्ति मार्ग प्रारम्भ होगा। ऐसा कह कर पूज्य गुरुदेव स्वामी रामदेवानन्द जी महाराज ने उनके पास उपस्थित संगत को अपनी कुटिया से बाहर कर दिया तथा सर्व भेद समझाया और कहा कि रामपाल तेरे समान संत इस पृथ्वी पर नहीं होगा। मुझे तेरा ही इंतजार था। सतलोक प्रस्थान करने से पूर्व सर्व आश्रम त्याग कर मुझ दास के पास जीन्द(हरियाणा) कुटिया में स्वामी जी चालीस दिन रहे तथा कहा कि किसी को नहीं बताना कि मैंने तेरे को सारनाम तथा सारशब्द दिया है। क्योंकि तेरे दादा गुरु जी की आज्ञा थी कि जो शिष्य सारशब्द के विषय में पूछे केवल उसी को बताना। वह एक ही होगा। अन्य को सारशब्द नहीं देना। इसलिए अन्य जो शिष्य हैं वे अधिकारी नहीं हैं। उन्हें पता चलेगा तो वे द्वेष करेंगे तथा पाप के भागी हो जाएंगे। ये सर्व अगले जन्मों में आपके (रामपाल दास) शिष्य होंगे।

मुझ दास के पास चालीस दिन जीन्द कुटिया में ठहर कर स्वामी जी 24 जनवरी 1997 को पंजाब में बने आश्रम कस्बा तलवण्डी भाई में गए। वहाँ पर 26 जनवरी 1997 को सुबह 10 बजे सतलोक प्रस्थान किया। सन् 1994 को मुझ दास को नाम दान करने का आदेश दिया तथा अपने सर्व शिष्यों से कह दिया कि आज के बाद यह रामपाल ही तुम्हारा गुरु है। आज के बाद मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। जिसने कल्याण करवाना हो, इस रामपाल से उपदेश प्राप्त करो। इन शब्दों द्वारा पूज्य गुरुदेव ने भी नकली शिष्यों का भार अपने सिर से डाल दिया। यह सारशब्द अभी तक पूर्ण रूप से गुप्त रखना था।

पूज्य गुरुदेव के सतलोक सिधारने के पश्चात् यह दास(रामपाल दास) बहुत अकेलापन महसूस करने लगा। बहुत चिंतित रहने लगा। अब मेरे साथ कौन रहेगा ? मैं क्या करूँ ? इतनी बड़ी जिम्मेवारी को यह अकेला दास कैसे निभा पाएगा ? परमेश्वर कबीर साहेब जी ने सारनाम व शब्द देना मना किया हुआ है। मेरी यह चिंता गहन होने लगी। मार्च 1997 में फाल्गुन शुक्ल एकम संवत् 2054 को दिन के दस बजे परमेश्वर कबीर साहेब जी अपने वास्तविक रूप में मुझे मिले तथा कहा कि चिंता मत कर, मैं तेरे साथ हूँ। अब सारनाम तथा सारशब्द प्रदान करने का समय आ गया है तथा कहा कि संत गरीबदास से भी मैंने ही कहा था कि आप की परम्परा में केवल एक संत को सारनाम व शब्द बताना है। उसे कसम दिलाना है कि केवल एक ही शिष्य को वह भी सारनाम व शब्द बताए जो ऐसे प्रश्न पूछे। यह परम्परा संत गरीबदास जी से संत शीतल दास जी को तथा अब केवल तेरे(रामपाल दास) तक पहूँची है। यह रहस्य जान

बूझ कर रखा था। कहा पुत्र निश्चित हो कर मेरा गुनगान कर। अब सारी पृथ्वी पर तत्व ज्ञान फैलेगा। परमेश्वर कबीर साहेब जी ने कहा कि अभी किसी से मत कहना कि मुझे कबीर प्रभु मिले थे। आप पर कोई विश्वास नहीं करेगा। तुझे कुछ समय उपरांत फिर मिलूँगा। परमेश्वर कबीर साहेब जी दास को समय-2 पर दर्शन देकर कृत्यार्थ करते रहते हैं। अब परमेश्वर का स्पष्ट संकेत हो गया है। इसलिए दास वर्णन कर रहा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आदरणीय गरीबदास जी की वाणी "सुमरण का अंग" में लिखा है कि 'सोहं ऊपर और है, सत सुकृत एक नाम'। जो अभी तक संत गरीबदास पंथ में उस सारनाम का ज्ञान नहीं था। अब इस दास (रामपाल दास) से विमुख हुए गुरु द्रोही ही उन्हें बताने लगे हैं। लेकिन अब सभ्य समाज इनकी दाल नहीं गलने देगा। कुछे बातें ऐसी होती हैं जो गुप्त रखनी होती है। परमेश्वर कबीर साहेब जी ने स्वामी रामानन्द जी को भी यही कसम दिलाई थी कि मेरा भेद मत देना। आप मेरे गुरु बने रहो तथा संत धर्मदास जी को भी यही कहा था कि - "गुप्त कल्प तुम राखो मोरी, देऊं मकरतार की डोरी"

भावार्थ है कि अन्य किसी को मेरे विषय में मत बताना। क्योंकि कोई आप पर विश्वास नहीं करेगा और जो भक्ति मार्ग मैं तुझे बता रहा हूँ यह किसी को मत बताना। मैं तुझे सतलोक जाने की वह(मकरतार अर्थात् मकड़ी के तार की तरह अभेद भक्ति मार्ग जिस के सहारे प्राणी भ्रमित न होकर सतलोक चला जाता है वह प्रभु पाने की) विशेष विधि बताता हूँ जिसके द्वारा आप सतलोक पहुँच जाओगे। परमेश्वर कबीर साहेब जी ने अपने प्रिय शिष्य धर्मदास जी साहेब से कहा था कि यह सारशब्द मैं तुझे प्रदान करता हूँ। परंतु आप यह सारशब्द अन्य किसी को नहीं देना। तुझे लाख दुहाई है अर्थात् सख्त मना है। यदि यह सारशब्द किसी अन्य के हाथ में पड़ गया तो आने वाले समय में जो बिचली(मध्य वाली) पीढ़ी पार नहीं हो पावेगी। धर्मदास जी ने कसम खाई है कि प्रभु आपके आदेश की अवहेलना कभी नहीं होगी। इसलिए धर्मदास जी ने अपने किसी भी वंशज को यह वास्तविक नाम जाप तथा सारशब्द नहीं बताया। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि संत धर्मदास जी ने पुरी(जगन्नाथ पुरी) में शरीर त्यागा। जहाँ कबीर परमश्वेर ने एक पत्थर चौरा(चबुतरा) जिस पर बैठ कर समुंद्र को रोक कर श्री जगन्नाथ जी के मन्दिर की रक्षा की थी। संत धर्मदास जी तथा धर्मपत्नी भक्तमति आमिनी देवी दोनों की यादगार वहाँ पुरी में बनी है। यह दास कई सेवकों सहित इस तथ्य को आँखों देख कर आया है। बाद में श्री चुड़ामणी जी को (जो संत धर्मदास जी को कबीर परमेश्वर की कृपया से नेक संतान प्राप्त हुई थी) अन्य श्रद्धालुओं ने महंत बना दिया। वह नाम दान करने लगा। धर्मदास जी ने भी चूड़ामणी जी को केवल प्रथम मन्त्र जो सात नामों का है प्रदान किया। वह प्रथम वास्तविक नाम भी धर्मदास की सातवीं पीढ़ी में काल का दूत महंत बना उसने प्रथम नाम छोड़ कर मनमुखी नामदान करने प्रारम्भ कर दिये। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि श्री चूड़ामणी जी की महंत परम्परा में यह वास्तविक मंत्र नहीं दिया जाता केवल मनमुखी नाम दिए जाते हैं जो अजर नाम, अमर नाम, पाताले सप्त सिंधु नाम, आदि... हैं। इससे सिद्ध हुआ कि यह भी मनमुखी साधना तथा स्वयंभू गुरु बन कर गद्दी परम्परा चला रहे हैं।

सतलोक आश्रम करौंथा में मुझ दास(रामपाल दास) से उपदेश लेने से सर्व सुख व लाभ भी प्राप्त होंगे तथा पूर्ण मोक्ष भी प्राप्त होगा। कहते हैं - आम के आम, गुठलियों के दाम। कृप्या निःशुल्क प्राप्त करें।

गरीब, समझा है तो शिर धर पाव। बहुर नहीं है ऐसा दाव।।

मुझ दास की प्रार्थना है कि मानव जीवन दुर्लभ है, इसे नादान संतों, महंतों व आचार्यों, महर्षियों तथा पंथों के पीछे लग कर नष्ट नहीं करना चाहिए। पूर्ण संत की खोज करके उपदेश प्राप्त करके आत्म कल्याण करवाना ही श्रेयकर है। सर्व पवित्र सद्ग्रन्थों के अनुसार अर्थात् शास्त्र अनुकूल यथार्थ भक्ति मार्ग मुझ दास(रामपाल दास) के पास उपलब्ध है। कृपया निःशुल्क प्राप्त करें।

सर्व पवित्र धर्मों की पवित्र आत्माऐं तत्वज्ञान से अपरिचित हैं। जिस कारण नकली गुरुओं, संतों, महंतों तथा ऋषियों तथा पंथों का दाव लगा हुआ है। जिस समय पवित्र भक्त समाज आध्यात्मिक तत्वज्ञान से परिचित हो जाएगा उस समय इन नकली संतों, गुरुओं व आचार्यों को छुपने का स्थान नहीं मिलेगा। सर्व प्रभु प्रेमियों का शुभ चिन्तक तथा दासों का भी दास। "सत् साहेब"

संत रामपाल दास
सतलोक आश्रम करौंथा, जिला रोहतक(हरियाणा)।
दूरभाष : 9812026821, 9812142324

''संत धर्मदास जी के वंशों के विषय में''

प्रश्न : संत धर्मदास जी की गद्दी दामा खेड़ा वाले कहते हैं कि इस गद्दी से नाम प्राप्त करने से मोक्ष संभव है ?

उत्तर : संत धर्मदास जी का ज्येष्ठ पुत्र श्री नारायण दास काल का भेजा हुआ दूत था। उसने बार-बार समझाने से भी परमेश्वर कबीर साहेब जी से उपदेश नहीं लिया। पुत्र प्रेम में व्याकुल संत धर्मदास जी को परमेश्वर कबीर साहेब जी ने नारायण दास जी का वास्तविक स्वरूप दर्शाया। संत धर्मदास जी ने कहा कि हे प्रभु ! मेरा वंश तो काल का वंश होगा। यह कह कर संत धर्मदास जी बेहोश(अचेत) हो गए। काफी देर बाद होश में आए। फिर भी अतिचिंतित रहने लगे। उस प्रिय भक्त का दुःख निवारण करने के लिए परमेश्वर कबीर साहेब जी ने कहा कि धर्मदास वंश की चिंता मत कर। यह काल का दूत है। उसका वंश पूरा नष्ट हो जाएगा तथा तेरा बियालीस पीढी तक वंश चलेगा। तब संत धर्मदास जी ने पूछा कि हे दीन दयाल ! मेरा तो इकलौता पुत्र नारायण दास ही है। तब परमेश्वर ने कहा कि आपको एक शुभ संतान पुत्र रूप में मेरे आदेश से प्राप्त होगी। उससे केवल तेरा वंश चलेगा। तब धर्मदास जी ने कहा था कि हे प्रभु ! आप का दास वृद्ध हो चुका है। अब संतान का होना असंभव है। आपकी शिष्या भक्तमति आमिनी देवी का मासिक धर्म भी बंद है। परमेश्वर कबीर साहेब ने कहा कि मेरी आज्ञा से आपको पुत्र प्राप्त होगा। उसका नाम चुड़ामणी रखना। यह कह कर परमेश्वर कबीर साहेब ने उस भावी पुत्र को धर्मदास के आंगन में खेलते दिखाया। फिर अन्तर्ध्यान कर दिया। संत धर्मदास जी शांत हुए। कुछ समय पश्चात् भक्तमति आमिनी देवी को संतान रूप में पुत्र प्राप्त हुआ उसका नाम श्री चुड़ामणी जी रखा। बड़ा पुत्र नारायण दास अपने छोटे भाई चुड़ामणी जी से द्वेष करने लगा। जिस कारण से श्री चुड़ामणी जी बांधवगढ़ त्याग कर कुदरमाल

नामक शहर(मध्य प्रदेश) में रहने लगा। कबीर परमेश्वर जी ने संत धर्मदास जी से कहा था कि धार्मिकता बनाए रखने के लिए अपने पुत्र चुड़ामणी को केवल प्रथम मन्त्र(जो यह दास/रामपाल दास प्रदान करता है) देना जिससे इनमें धार्मिकता बनी रहेगी तथा तेरा वंश चलता रहेगा। परंतु आपकी सातवीं पीढ़ी में काल का दूत आएगा। वह इस वास्तविक प्रथम मन्त्र को भी समाप्त करके मनमुखी अन्य नाम चलाएगा। शेष धार्मिकता का अंत ग्यारहवां, तेरहवां तथा सतरहवां गद्दी वाले महंत कर देंगे। इस प्रकार तेरे वंश से भक्ति तो समाप्त हो जाएगी। परंतु तेरा वंश फिर भी बियालीस(42) पीढ़ी तक चलेगा। फिर तेरा वंश नष्ट हो जाएगा।

प्रमाण पुस्तक "सुमिरण शरण गह बयालिश वंश" लेखक : महंत श्री हरिसिंह राठौर, पृष्ठ 52 पर -

वाणी :सुन धर्मनि जो वंश नशाई, जिनकी कथा कहूँ समझाई।।93।।
काल चपेटा देवै आई, मम सिर नहीं दोष कछु भाई।।94।।
सप्त, एकादश, त्रयोदस अंशा, अरु सत्रह ये चारों वंशा।।95।।
इनको काल छलेगा भाई, मिथ्या वचन हमारा न जाई।।96।।
जब-2 वंश हानि होई जाई, शाखा वंश करै गुरुवाई।।97।।
दस हजार शाखा होई है, पुरुष अंश वो ही कहलाही है।।98।।
वंश भेद यही है सारा, मूढ जीव पावै नहीं पारा।।99।।
भटकत फिरि हैं दोरहि दौरा, वंश बिलाय गये केही ठौरा।।100।।
सब अपनी बुद्धि कहै भाई, अंश वंश सब गए नसाई।।101।।

उपरोक्त वाणी में कबीर परमेश्वर ने अपने निजी सेवक संत धर्मदास साहेब जी से कहा कि धर्मदास तेरे वंश से भक्ति नष्ट हो जाएगी वह कथा सुनाता हूँ। सातवीं पीढ़ी में काल का दूत उत्पन्न होगा। वह तेरे वंश से भक्ति समाप्त कर देगा। जो प्रथम मन्त्र आप दान करोगे उसके स्थान पर अन्य मनमुखी नाम प्रारम्भ करेगा। धार्मिकता का शेष विनाश ग्यारहवां, तेरहवां तथा सतरहवां महंत करेगा। मेरा वचन खाली नहीं जाएगा भाई। सर्व अंश वंश भक्ति हीन हो जाएंगे। अपनी-2 मन मुखी साधना किया करेंगे।

"चौदहवीं महंत गद्दी का परिचय"

पुस्तक "धनी धर्मदास जीवन दर्शन एवं वंश परिचय" पृष्ठ 49 पर तेरहवें महंत दयानाम के बाद कबीर पंथ में उथल–पुथल मची। काल का चक्र चलने लगा। क्योंकि इस परम्परा में कोई पुत्र नहीं था। तब तक व्यवस्था बनाए रखने के लिए महंत काशीदास जी को चादर दिया गया। कुछ समय पश्चात् काशी दास ने स्वयं को कबीर पंथ का आचार्य घोषित कर दिया तथा खरसीया में अलग गद्दी की स्थापना कर दी। यह देख तीनों माताऐं रोने लगी कि काल का चक्र चलने लगा। बाद में कबीर पंथ के हित में ढाई वर्ष के बालक चतुर्भुज साहेब को बड़ी माता साहिब ने गद्दी सौंप दी जो "गृन्धमुनि नाम साहेब" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

विचार करें : एक ढाई वर्ष का बालक क्या नाम व ज्ञान देगा ?

माता जी ने गद्दी पर बैठा दिया। बेटा महंत बन गया। जिसे भक्ति का क-ख का भी ज्ञान नहीं। सन्त धर्मदास जी के वंशज भोले श्रद्धालुओं को दंत कथाओं (लोकवेद) के आधार से भ्रमित करके गुमराह कर रहे हैं।

महंत काशी दास जी ने खरसिया शहर में नकली कबीर पंथी गद्दी प्रारम्भ कर दी। उसी खरसिया से एक श्री उदीतनाम साहेब ने मनमुखी गद्दी लहर तारा तालाब पर काशी(बनारस) में चालु कर रखी है। कबीर चौरा काशी में श्री गंगाशरण शास्त्री जी भी अलग से महंत पद पर विराजमान है। परंतु तत्व ज्ञान व वास्तविक भक्ति का किसी को क-ख भी ज्ञान नहीं है।

उपरोक्त विवरण से प्रभु प्रेमी पाठक स्वयं निर्णय करें कि दामा खेड़ा वाले महंतों के पास वास्तविक भक्ति है या ड्रामाबाजी?

श्री चुड़ामणी जी के कुदरमाल चले जाने के पश्चात् बांधवगढ़ पूरा नष्ट हो गया। आज भी प्रमाण है।

प्रश्न : दामा खेड़ा गद्दी वाले तो कहते हैं कि कबीर जी ने कहा था कि जब तक तेरी बियालीस वंश की गद्दी चलेगी तब तक मैं पृथ्वी पर नहीं आऊँगा अर्थात् अन्य को यह नाम दान आदेश नहीं दूंगा?

उत्तर : यह उनकी मनघड़ंत कहानी है। कबीर सागर में कबीर बानी नामक अध्याय में पृष्ठ 136-137 पर बारह पंथों का विवरण देते हुए वाणी लिखी हैं जो निम्न हैं :-

द्वादश पंथ चलो सो भेद

द्वादश पंथ काल फुरमाना। भूले जीव न जाय ठिकाना।।
प्रथम आगम कहि हम राखा। वंश हमार चूरामणि शाखा।
दूसर जगमें जागू भ्रमावै। विना भेद ओ ग्रन्थ चुरावै।।
तीसरा सुरति गोपालहि होई। अक्षर जो जोग द्दढ़ावे सोई।।
चौथा मूल निरञ्जन बानी। लोकवेद की निर्णय ठानी।।
पंचम पंथ टकसार भेद लै आवै। नीर पवन को सन्धि बतावै।।
सो ब्रह्म अभिमानी जानी। सो बहुत जीवन की करी है हानी।।
छठवाँ पंथ बीज को लेखा। लोक प्रलोक कहें हममें देखा।।
पांच तत्व का मर्म द्दढावै। सो बीजक शुक्ल ले आवै।।
सातवाँ पंथ सत्यनामि प्रकाशा। घटके माहीं मार्ग निवासा।।
आठवाँ जीव पंथले बोले बानी। भयो प्रतीत मर्म नहिं जानी।।
नौवें राम कबीर कहावै। सतगुरू भ्रमले जीव द्दढावै।।
दसवें ज्ञान की काल दिखावै। भई प्रतीत जीव सुख पावै।।
ग्यारहवें भेद परमधाम की बानी। साख हमारी निर्णय ठानी।।
साखी भाव प्रेम उपजावै। ब्रह्मज्ञान की राह चलावै।।
तिनमें वंश अंश अधिकारा। तिनमें सो शब्द होय निरधारा।।
सम्वत् सत्रासै पचहत्तर होई, तादिन प्रेम प्रकटें जग सोई।।
साखी हमारी ले जीव समझावै, असंख्य जन्म ठौर नहीं पावै।।
बारवें पंथ प्रगट है बानी, शब्द हमारे की निर्णय ठानी।।
अस्थिर घर का मरम न पावैं, ये बारा पंथ हमही को ध्यावैं।
बारवें पंथ हम ही चलि आवैं, सब पंथ मेटि एक ही पंथ चलावें।।

उपरोक्त वाणी में ''बारह पंथों'' का विवरण किया है तथा लिखा है कि संवत् 1775 में प्रभु का प्रेम प्रकट होगा तथा हमरी बानी प्रकट होवेगी। (संत गरीबदास जी महाराज छुड़ानी, (हरियाणा) वाले का जन्म 1774 में वैसाख पूर्णमासी को हुआ है उनको प्रभु कबीर 1784 में मिले

थे। यहाँ पर इसी का वर्णन है तथा सम्वत् 1775 के स्थान पर 1774 होना चाहिए, गलती से 1775 लिखा है दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि भारतीय वर्ष चैत्र मास से प्रारम्भ होता है सन्त गरीबदास जी का जन्म वैसाख मास में हुआ जो चैत्र के बाद प्रारम्भ होता है। कई बार दो चैत्र मास भी बनाए जाते हैं। उस समय शिक्षा का अति अभाव था। प्रत्येक गाँव में एक ही तीथि बताने वाला होता था। वह भी अशिक्षित ही होता था। आस–पास के शहर या गाँव से तिथि किसी अन्य ब्राह्मण से पता करके फिर गाँव में सर्व को बताता इस कारण से भी संवत् 1775 के स्थान पर संवत् 1774 लिखा गया हो वास्तव में यह संकेत गरीबदास जी के विषय में ही है)।

भावार्थ यह है कि :- कबीर परमात्मा ने गरीबदास जी का ज्ञान योग खोल कर उनके द्वारा अपना तत्वज्ञान स्वयं ही प्रकट किया। जो सत्ग्रन्थ साहेब रूप में लीपि बद्ध है। कारण यह था कि कबीर वाणी में नकली कबीर पंथियों ने मिलावट कर दी थी। इसलिए परमेश्वर कबीर जी की महिमा का ज्ञान पुनर् प्रकट कराया फिर भी तत्व भेद (सार ज्ञान) गुप्त ही रखा (जो अब प्रकट हो रहा है।) इस कारण गरीबदास जी के पंथ में तत्वज्ञान नहीं है जिस कारण से वे गरीदास साहेब की वाणी का विपरीत अर्थ लगा कर जन्म व्यर्थ करते रहे उन्हें असंख जन्म भी ठौर नहीं है अर्थात् वे मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते केवल एक सन्त शीतल दास जी वाली प्रणाली में मुझ दास तक एक सन्त ही पार होता आया है जो एक सन्त सारनाम प्राप्त करके केवल एक को आगे बताकर गुप्त रखने की कसम दिलाता था। वह भी आगे केवल एक शिष्य को बताकर गुप्त रखता था समय आने पर परमेश्वर कबीर जी के संकेत से ही आगे शिष्य को आज्ञा देता था। इस प्रकार मुझ दास तक यह सारनाम कड़ी से जुड़ा हुआ पहुँचा है अब यह सर्व अधिकारी श्रद्धालु भक्तों को देने का आदेश प्रभु कबीर जी का है इसलिए कहा है बारहवां पंथ जो गरीबदास जी का चलेगा यह पंथ हमारी साखी लेकर जीव को समझाएगें। परन्तु वास्तविक मन्त्र के अपरिचित होने के कारण गरीबदास पंथ के साधक असंख्य जन्म तक सतलोक नहीं जा सकते। उपरोक्त बारह पंथ हमको ही प्रमाण करके भक्ति करेगें परन्तु स्थाई स्थान (सतलोक) प्राप्त नहीं कर सकते। बारहवें पंथ (गरीबदास वाले पंथ) में आगे चलकर हम (कबीर जी) स्वयं ही आऐगें तथा सब बारह पंथों को मिटा एक ही पंथ चलाऐगें। उस समय तक सारशब्द छुपा कर रखना है। यही प्रमाण सन्त गरीबदास जी महाराज ने अपनी अमृतवाणी ''असुर निकंन्दन रमैणी'' में किया है कि ''सतगुरू दिल्ली मण्डल आयसी, सूती धरती सूम जगायसी'' पुराना रोहतक जिला (वर्तमान में सोनीपत जिला, झज्जर जिला, रोहतक जिला) दिल्ली मण्डल कहलाता है। जो पहले अग्रेंजों के शासन काल में केन्द्र के आधीन था। बारह पंथों का विवरण कबीर चरित्र बोध (बोध सागर) पृष्ठ नं. 1870 पर भी है जिसमें बारहवां पंथ गरीबदास जी वाला पंथ स्पष्ट लिखा है।

कबीर साहेब के पंथ में काल द्वार प्रचलित बारह पंथों का विवरण कबीर चरित्र बोध (कबीर सागर) पृष्ठ नं. 1870 से :- (1) नारायण दास जी का पंथ (2) यागौदास (जागू) पंथ (3) सूरत गोपाल पंथ (4) मूल निरंजन पंथ (5) टकसार पंथ (6) भगवान दास (ब्रह्म) पंथ (7) सत्यनामी पंथ (8) कमाली (कमाल का) पंथ (9) राम कबीर पंथ (10) प्रेम धाम (परम धाम)

की वाणी पंथ (11) जीवा पंथ (12) गरीबदास पंथ।

यदि कबीर परमश्वेर जी ऐसा वचन कहते कि ''जब तक धर्मदास का वंश चलेगा तब तक मैं पृथ्वी पर पग नहीं रखुंगा अर्थात् पृथ्वी पर प्रकट नहीं होऊँगा। तो सन् 1518 में सतलोक प्रस्थान के 33 वर्ष पश्चात् सन् 1551 में सात वर्षीय संत दादू साहेब जी को नहीं मिलते, 209 वर्ष पश्चात् सन् 1727 में दस वर्षीय संत गरीबदास जी को गाँव छुड़ानी, जिला झज्जर(हरियाणा प्रदेश, भारत) में नहीं मिलते तथा गरीबदास जी को नामदान नहीं देते और आगे नामदान करने का आदेश नहीं देते। इसके बाद फिर 292 वर्ष पश्चात् सात वर्षीय संत घीसा दास जी को गाँव खेखड़ा, जिला मेरठ(उतर प्रदेश) में नहीं मिलते। जो आज भी यादगार साक्षी हैं तथा उपरोक्त संतों द्वारा लिखी अमृत वाणी साक्षी रूप हलफिया ब्यान(एफिडेविट) है कि परमेश्वर कबीर जी काशी वाले जुलाहा धाणक ने स्वयं साक्षात दर्शन दिए तथा अपने सतलोक के भी दर्शन करा करके अपनी समर्थता का प्रमाण दिया।

मुझ दास(रामपाल दास) को परमेश्वर कबीर साहेब जी संवत् 2054 फाल्गुन मास शुक्ल पक्ष एकम(मार्च) 1997 को दिन के दस बजे मिले तथा सारशब्द की वास्तविकता तथा संगत को दान करने का सही समय का संकेत दे कर अर्न्तध्यान हो गए तथा इसको अगले आदेश तक रहस्य युक्त रखने का आदेश दिया।

''पवित्र कबीर सागर में अद्भुत रहस्य''

''अनुराग सागर'' :- यह अध्याय कबीर सागर का ही अंग है।

वर्तमान कबीर सागर के संशोधन कर्ता श्री युगलानन्द बिहारी (प्रकाशक एवं मुद्रक-खेमराज श्री कृष्ण दास, श्री वेंकेटेश्वर प्रैस मुंबई) द्वारा अपने प्रस्तावना में लिखा है कि मेरे पास अनुराग सागर की 46 (छियालिस) प्रतियाँ हैं। जिनमें हस्त लिखित तथा प्रिन्टिड हैं। सभी की व्याख्या एक दूसरे से भिन्न हैं। अब मैंने (श्री युगलानन्द जी ने) शुद्ध करके सत्य विवरण लिखा है।

विवेचनः- श्री युगलानन्द जी ने अनुराग सागर पृष्ठ 110 पर लिखा है कि धर्मदास साहेब जी नीरू का अवतार अर्थात् नीरू वाली आत्मा ही धर्मदास रूप में जन्मी थी तथा नीमा वाली आत्मा ही आमनी रूप में जन्मी थी। वाणी बना कर लिखी है, कबीर वचन :-

चलेहु हम तब सीस नवाई, धर्मदास अब तुम लग आई।
धर्मदास तुम नीरू अवतारा, आमिनि नीमा प्रगट बिचारा।।

तथा ''ज्ञान सागर'' पृष्ठ नं. 72 पर धर्मदास को नीरू अवतार नहीं लिखा है तथा नीरू के स्थान पर नूरी लिखा है।

विशेषः- पुस्तक ''धनी धर्मदास जीवन दर्शन एवं वंश परिचय'' दामाखेड़ा से प्रकाशित पृष्ठ नं. 9 पर लिखा है। धर्मदास जी का जन्म संवत् 1452(सन् 1395) तथा कबीर सागर ''कबीर चरित्र बोध'' पृष्ठ-1790 पर कबीर जी के जन्म के विषय में लिखा है कि संवत् 1455 (सन् 1398) ज्येष्ठ शुद्धि पूर्णिमा सोमवार के दिन सतपुरूष का तेज काशी के लहरतारा तालाब पर उतरा अर्थात् कबीर जी बालक रूप में प्रकट हुए।

पृष्ठ नं. 1791, 1792 (कबीर चरित्र बोध) पर लिखा है कि नीरू जुलाहा तथा उसकी पत्नी नीमा चले आ रहे थे। उन्हें एक बालक देखा उसे उठा लिया।

पृष्ठ नं. 1794 से 1818 तक आदरणीय गरीबदास जी महाराज (छुड़ानी-हरियाणा वाले) की वाणी के द्वारा महिमा समझाई है। सन्त गरीबदास जी महाराज की वाणी लिखी है (यह भी कबीर सागर में प्रक्षेप अर्थात् मिलावट का प्रत्यक्ष प्रमाण है)

उपरोक्त विवरण से सिद्ध हुआ कि :-

(1.) संत धर्मदास साहेब का जन्म सन् 1395 में तथा परमेश्वर कबीर जी का अवतरण सन् 1398 में तथा नीरू व नीमा को मिलन सन् 1398 में तो धर्मदास जी व परमेश्वर कबीर जी तथा नीरू व नीमा समकालीन हुए। यह वाणी की धर्मदास जी नीरू वाली आत्मा थी, गलत सिद्ध हुई। इससे सिद्ध हुआ कि कबीर सागर में मिलावट (प्रक्षेप) है जो दामाखेड़ा वालो द्वारा जान बूझ कर किया गया। सन्त गरीबदास जी (छुडानी-हरियाणा वाले) का जन्म सन् 1717 (सम्वत् 1774) में हुआ। जो कबीर जी के अन्तर्ध्यान के 199 वर्ष बाद की गरीबदास जी की वाणी भी कबीर सागर में कबीर चरित्र बोध में लिखी है। जो प्रत्यक्ष प्रमाण करती है कि कबीर सागर में मिलावट है।

स्वसम वेद बोध (बोध सागर) पृष्ठ नं. 137 पर साखी लिखी है की काशी में भण्डारे के समय कबीर जी तो घर छोड़ कर चले गए तथा विष्णु ने भण्डारा किया:-

भीर भई साधुन की भारी, गृह तजि सत्य कबीर सिधारी।
आये विष्णु भये भण्डारी, साधुन को आदर करि भारी।।

इससे सिद्ध है कि कोई नकली कबीर पंथी मिलावट कर्ता श्री कृष्ण का भी पुजारी है तथा सत् कबीर जी की महिमा से अपरिचित है।

विशेष विवरण:- कबीर सागर ''कबीर चरित्र बोध'' पृष्ठ नं. 1862 से 1865 तक लिखा है कि कलयुग में कबीर साहेब ने चार गुरू नियत किये हैं।

(1.) धर्मदास जी जिस के बयालिश वंश है तथा ''उत्तर'' में गुरूवाई सौंपी है।

(2.) दूसरे चतुर्भुज ''दक्षिण'' में गुरूवाई करेगें।

(3.) तीसरे बंक जी ''पूर्व'' में गुरूवाई करेगें।

(4.) चौथे सहती जी ''पश्चिम'' में गुरूवाई करेगें।

जिस समय कबीर सागर लिखा गया सन् 1505(सम्वत् 1562) में उस समय तक केवल एक धर्मदास जी ही प्रकट हुए थे। जब ये चारों गुरू प्रकट हो जाऐगें तब पूरी पृथ्वी पर केवल कबीर साहेब जी का ही ज्ञान चलेगा।

यही प्रमाण ''अनुराग सागर'' पृष्ठ नं. 104-105 पर है। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हुआ कि कलयुग में धर्मदास जी के अतिरिक्त तीन गुरू और पृथ्वी पर प्रकट होगें, उनके द्वारा भी जीव उद्धार होगा। दामा खेड़ा वालों द्वारा बनाई दन्त कथा गलत सिद्ध हुई कि कलयुग में केवल धर्मदास जी के वंशजो द्वारा ही जीव उद्धार सम्भव है अन्य द्वारा नहीं। यह उल्लेख कबीर सागर में कबीर वाणी पृष्ठ 160 पर लिखा है जो स्पष्ट मिलावट दिखाई देती है।

मुझ दास (रामपाल दास) को एक 450 वर्ष पुराना कबीर सागर प्राप्त हुआ है। जो बहुत ही जीरण-सीरण है। उसके आधार पर कबीर सागर का संशोधन किया जाएगा। ''वर्तमान कबीर सागर'' के संशोधन कर्ता श्री युगलानन्द जी ने ज्ञान प्रकाश- बोध सागर पृष्ठ नं. 37

के नीचे टिप्पणी की है कि इस ज्ञान प्रकाश की कई लीपी मेरे पास हैं परन्तु कोई भी एक दूसरे से मेल नहीं खाती। लेखक महात्माओं की कृपा से पक्षपात और अविद्यावश कबीर पंथ के ग्रन्थों की दुर्दशा हुई है।

विशेष :- भक्त जन विचार करें कि काल ने कैसा जाल फैलाया है। अपने दूतों द्वारा परमेश्वर के सत् ग्रन्थों को ही बदलवा डाला। फिर भी सत्य को छुपा नहीं सके।

कबीर :– चोर चुराई तूम्बड़ी, गाढे पानी मांही। वो गाढे वह उपर आवै, सच्चाई छयानी नाहिं।।

इसकी पूर्ति परमेश्वर ने संत गरीबदास जी (छुड़ानी-हरियाणा वाले) द्वारा करवाई है। गरीबदास जी द्वारा भी संस्ययुक्त वाणी युक्त करवाई है जिस में श्री विष्णु जी की महिमा भी अधिक वर्णित है तथा सारज्ञान (तत्वज्ञान) भी गुप्त ढ़ंग से लिखा हैं संत गरीबदास जी की वाणी में निर्णायक ज्ञान नहीं है। कबीर जी की शक्ति से ही आदरणीय गरीबदास जी ने वाणी बोली है। कबीर जी ने जो बुलवाना था वही बुलवाया ताकि अब तक(मुझ दास रामपाल तक) भेद छुपा रहे। अब उसी बन्दी छोड़ कबीर परमेश्वर जी ने वह पूर्ण ज्ञान(तत्वज्ञान) मुझ दास(रामपाल दास) तेरहवां वंश द्वारा प्रकट कराया है।

कबीर वाणी पृष्ठ 134 :- ''वंश प्रकार''

प्रथम वंश उत्तम ।1। दूसरा वंश अहंकारी ।2। तीसरा वंश प्रचंड ।3। चौथे वंश बीरहे ।4। पाँचवें वंश निद्रा ।5। छटे वंश उदास ।6। सांतवें वंश ज्ञानचतुराई ।7। आठे द्वादश पन्थ विरोध ।8। नौवं वंश पंथ पूजा ।9। दसवें वंश प्रकाश ।।10। ग्यारहवें वंश प्रकट पसारा ।।11। बारहवें वंश प्रगट होय उजियारा ।।12। तेरहवें वंश मिटे सकल अँधियारा ।।13।

भावार्थ :- उपरोक्त विवरण में प्रथम वंश जो उत्तम लिखा है वह चूड़ामणी साहेब के विषय में है, दूसरा वंश अहंकारी लिखा है ''यागौदास'' पंथ है, तीसरा वंश प्रचण्ड लिखा है, यह सूरत गोपाल पंथ है, चौथा वंश बीरहे लिखा है, यह ''मूल निरंजन पंथ'' है। पांचवाँ वंश ''पूजा टकसार पंथ'' है। छठा वंश ''उदास'' यह ''भगवान दास पंथ'' सातवां वंश ''ज्ञान चतुराई'' यह सत्यनामी पंथ है। आठवाँ वंश''द्वादश पंथ विरोद्ध'' यह कमाल का पंथ है। नौवाँ वंश ''पंथ पूजा'' यह राम कबीर पंथ है। दशवाँ वंश प्रकाश यह प्रेमधाम (परम धाम) की वाणी पंथ है। ग्यारहवाँ वंश ''प्रकट पसारा'' यह जीवा पंथ है। बारहवाँ वंश ''गरीबदास पंथ'' है। तेरहवाँ वंश यह यथार्थ कबीर पंथ है जो मुझ दास (सन्त रामपाल दास) द्वारा बिचली पीढ़ी के उद्धार के लिए प्रारम्भ कराया है। कबीर परमेश्वर ने अपनी वाणी में काल से कहा था कि तेरे बारह पंथ चल चुके होगें तब मैं अपना नाद (वचन-शिष्य परम्परा वाला) वंश अथार्त् अंस भेजेगें उसी आधार पर यह विवरण लिखा है। बारहवां वंश (अंश) सन्त गरीबदास जी से कबीर वाणी तथा परमेश्वर कबीर जी की महिमा का कुछ-कुछ संस्य युक्त ज्ञान विस्तार होगा। जैसे सन्त गरीबदास जी की परम्परा में परमेश्वर कबीर जी को विष्णु अवतार मान कर साधना तथा प्रचार करते हैं। संत गरीबदास जी ने ''असुर निकन्दन रमैणी'' में कहा है ''साहेब तख्त कबीर खवासा। दिल्ली मण्डल लीजै वासा। सतगुरू दिल्ली मण्डल आयसी, सूती धरणी सूम जगायसी'' भावार्थ है कि सन्त गरीबदास जी वाला बारहवाँ पंथ (अंश) तो काल तक साधना बताने वाला कहा है। इसलिए केवल कबीर महिमा की वाणी ही संत गरीबदास जी द्वारा प्रकट की गई है। उसमें कहा है कि कबीर परमात्मा के तख्त अर्थात् सिंहासन का ख्वास अर्थात् नौकर

दिल्ली के आस-पास के क्षेत्र में आएगा वह उस क्षेत्र के कृपण अर्थात् कंजूस व्यक्तियों को परमात्मा की महिमा बता कर जगाएगा अर्थात् दान-धर्म में उनकी रूची बढ़ाएगा। वह तेरहवाँ अंश कबीर परमात्मा के दरबार का उच्चतम् सेवक होगा। वह कबीर परमेश्वर का अत्यंत कृपा पात्र होगा। ऋग्वेद मण्डल 1 सुक्त 1 मन्त्र 7 में उप अग्ने अर्थात् उप परमेश्वर कहा है। इसलिए पूर्ण परमात्मा अपना भेद छुपा कर दास रूप में प्रकट होकर अपनी महिमा करता है। इसलिए उसी परमेश्वर को ऋग्वेद मण्डल 10 सुक्त 4 मन्त्र 6 में तस्करा अर्थात् आँखों मे धूल झोंक का कार्य करने वाला तस्कर कहा है। श्री नानक जी ने उसे ठगवाड़ा कहा है। इसलिए तेरहवें अंश को (सन्त रामपाल दास को) उनका दास जाने चाहे स्वयं पूर्ण प्रभु का उपशक्तिरूप(उप अग्ने) समझें। इसलिए लिखा है कि बारहवें अंश की परम्परा में हम ही चलकर तेरहवें अंश रूप में आऐंगे। वह तेरहवां वंश (अंस) पूर्ण रूप से अज्ञान अंधेरा समाप्त करके परमेश्वर कबीर जी की वास्तविक महिमा तथा नाम का ज्ञान करा कर सभी पंथों को समाप्त करके एक ही पंथ चलाएगा, वह तेरहवां वंश हम (परमेश्वर कबीर) ही होंगे।

कबीर वाणी (कबीर सागर) पृष्ठ 136 पर :-

बारह पंथों का विवरण दिया है। बारहवें पंथ (गरीबदास पंथ, बारहवां पंथ लिखा है कबीर सागर, कबीर चरित्र बोध पृष्ठ 1870 पर) के विषय में कबीर सागर कबीर वाणी पृष्ठ नं. 136-137 पर वाणी लिखी है कि :- **द्वादश पंथ चलो सो भेद**

द्वादश पंथ काल फुरमाना। भुले जीव न जाय ठिकाना।।
(प्रथम) आगम कहि हम राखा। वंश हमार चूरामणि शाखा।
दूसर जग में जागू भ्रमावै। बिना भेद ओ ग्रन्थ चुरावे।।
तीसरा सुरति गोपालहि होई। अक्षर जो जोग दृढ़ावे सोई।।
चौथा मूल निरञ्जन बानी। लोकवेद की निर्णय ठानी।।
पंचम पंथ टकसार भेद लै आवै। नीर पवन को सन्धि बतावै।।
सो ब्रह्म अभिमानी जानी। सो बहुत जीवनकीकरी है हानी।।
छठवाँ पंथ बीज को लेखा। लोक प्रलोक कहें हममें देखा।।
पांच तत्व का मर्म दृढ़ावै। सो बीजक शुक्ल ले आवै।।
सातवाँ पंथ सत्यनामि प्रकाशा। घटके माहीं मार्ग निवासा।।
आठवाँ जीव पंथले बोले बानी। भयो प्रतीत मर्म नहिं जानी।।
नौमा राम कबीर कहावै। सतगुरू भ्रमलै जीव दृढ़ावै।।
दशवां ज्ञानकी काल दिखावै। भई प्रतीत जीव सुख पावै।।
ग्यारहवाँ भेद परमधाम की बानी। साख हमारी निर्णय ठानी।।
साखी भाव प्रेम उपजावै। ब्रह्मज्ञान की राह चलावै।।
तिनमें वंश अंश अधिकारा। तिनमेंसो शब्द होय निरधारा।।
संवत सत्रासै पचहत्तर होई। तादिन प्रेम प्रकटें जग सोई।।
आज्ञा रहै ब्रह्म बोध लावे। कोली चमार सबके घर खावे।।
साखि हमार लै जिव समुझावै। असंख्य जन्म में ठौर ना पावै।।

बारवै पन्थ प्रगट होवै बानी। शब्द हमारे की निर्णय ठानी।।
अस्थिर घर का मरम न पावैं। ये बरा पंथ हमहीको ध्यावैं।।
बारहें पन्थ हमही चलि आवै। सब पंथ मिटा एकहीपंथ चलावै।।
तब लगि बोधो कुरी चमारा। फेरी तुम बोधो राज दर्बारा।।
प्रथम चरन कलजुग नियराना। तब मगहर माडौ मैदाना।।
धर्मराय से मांडौ बाजी। तब धरि बोधो पंडित काजी।।
धर्मदास मोरी लाख दोहाई, सार शब्द बाहर नहीं जाई।
सार शब्द बाहर जो परही, बिचली पीढी हंस नहीं तरहीं।
तेतिस अर्ब ज्ञान हम भाखा, तत्वज्ञान गुप्त हम राखा।
मूल ज्ञान(तत्वज्ञान) तब तक छुपाई, जब लग द्वादश पंथ न मिट जाई।

कबीर सागर ''कबीर बानी'' नामक अध्याय (बोध सागर) पृष्ठ नं. 134 से 138 पर लिखे विवरण का भावार्थ है :-

पृष्ठ नं. 134 पर बारह वंशों (अंसों) के बाद तेरहवें वंश (अंस) में सब अज्ञान अंधेरा मिट जाएगा। संत गरीबदास पंथ तक काल के बारह वंश अपनी-2 चतुरता दिखाएगें। पृष्ठ नं. 136-137 पर ''बारह पंथों'' का विवरण किया है तथा लिखा है कि संवत् 1775 में प्रभु का प्रेम प्रकट होगा तथा हमरी बानी प्रकट होवेगी। (संत गरीबदास जी महाराज छुड़ानी हरियाणा वाले का जन्म 1774 में हुआ है उनको प्रभु कबीर 1784 में मिले थे। यहाँ पर इसी का वर्णन है तथा सम्वत् 1775 के स्थान पर 1774 होना चाहिए, गलती से 1775 लिखा है दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि संत गरीब दास जी का जन्म वैशाख मास की पूर्णमासी को हुआ। संवत् वाला वर्ष चैत्र से प्रारम्भ होता है जो वैसाख मास के साथ वाला है। कई बार तिथीयों के घटने बढ़ने से दो मास बन जाते हैं। उस समय शिक्षा का अभाव था तिथी व संवत् बताने वाले भी अशिक्षित होते थे। जिस कारण से संवत् 1775 के स्थान पर गरीबदास जी का जन्म संवत् 1774 लिखा गया होगा परन्तु यह संकेत संत गरीबदास जी की ओर है।)।

भावार्थ है कि बारहवां पंथ जो गरीबदास जी का चलेगा उस पंथ सहित अर्थात् उपरोक्त बारह पंथों के अनुयाई मेरी महिमा का गुणगान करेगें तथा हमारी साखी लेकर जीव को समझाएगें। परन्तु वास्तविक मन्त्र के अपरिचित होने के कारण साधक असंख्य जन्म सतलोक नहीं जा सकते। उपरोक्त बारह पंथ हमको ही प्रमाण करके भक्ति करेगें परन्तु स्थाई स्थान (सतलोक) प्राप्त नहीं कर सकते। बारहवें पंथ (गरीबदास वाले पंथ) में आगे चलकर हम (कबीर जी) स्वयं ही आऐगें तथा सब बारह पंथों को मिटा एक ही पंथ चलाऐगें। उस समय तक सारशब्द तथा सारज्ञान (तत्वज्ञान) छुपा कर रखना है। यही प्रमाण सन्त गरीबदास जी महाराज ने अपनी अमृतवाणी ''असुर निकंन्दन रमैणी'' में किया है कि ''सतगुरू दिल्ली मण्डल आयसी, सूती धरती सूम जगायसी'' पुराना रोहतक जिला (वर्तमान में, सोनीपत, झज्जर तथा रोहतक जो पहले एक ही जिला था) दिल्ली मण्डल कहलाता है। जो पहले अग्रेंजों के शासन काल में केन्द्र के आधीन था। मुझ दास का पैत्रिक गाँव धनाना इसी पुराने रोहतक जिले में है। सन्

1951 में मेरा (संत रामपाल का) जन्म हुआ था। बारह पंथों का विवरण कबीर चरित्र बोध (बोध सागर) पृष्ठ नं. 1870 पर भी है जिसमें बारहवां पंथ गरीबदास लिखा है।

कबीर साहेब के पंथ में काल द्वारा प्रचलित बारह पंथों का विवरण (कबीर चरित्र बोध (कबीर सागर) पृष्ठ नं. 1870 से) :- (1) नारायण दास जी का पंथ (2) यागौदास (जागू) पंथ (3) सूरत गोपाल पंथ (4) मूल निरंजन पंथ (5) टकसार पंथ (6) भगवान दास (ब्रह्म) पंथ (7) सत्यनामी पंथ (8) कमाली (कमाल का) पंथ (9) राम कबीर पंथ (10) प्रेम धाम (परम धाम) की वाणी पंथ (11) जीवा पंथ (12) गरीबदास पंथ।

विशेष :- यहाँ पर प्रथम पंथ का संचालक नारायण दास लिखा है जबकी कबीर वाणी (कबीर सागर) पृष्ठ 136 पर प्रथम पंथ का संचालक चूरामणी लिखा है, शेष प्रकरण ठीक है। इसमें भी दामाखेड़ा वाले अनुयाइयों ने चुड़ामणी को हटाने का प्रयत्न किया है। उसके स्थान पर नारायण दास लिख दिया। जबकि नारायण दास तो बिल्कुल विपरित था। उसका तो विनाश हो गया था। इसलिए प्रथम पंथ चुड़ामणी जी का ही मानना चाहिए। दूसरी बात है कि कबीर वाणी (कबीर सागर) पृष्ठ नं. 136 पर लिखी वाणी में चूड़ामणी को मिला कर ही बारह पंथ बनते हैं।

विचार करें:- अब वही एक पंथ मुझ दास (रामपाल दास) द्वारा परमेश्वर कबीर जी की आज्ञा व शक्ति से चलाया जा रहा है जो सभी पंथों को एक करेगा।

वर्तमान कबीर सागर का संशोधन कर्ता भी दामा खेड़ा वालों का अनुयायी है। कबीर सागर में कबीर चरित्र बोध (बोध सागर) में लेखक ने लिखा है कि धर्मदास जी के बयालीस वंश का नियम है कि प्रत्येक वंश पच्चीस वर्ष बीस दिन तक गद्दी पर बैठा करे तथा स्वःइच्छा से शरीर छोड़े। इस से अधिक तथा कम समय कोई गद्दी पर न रहे। यह भी लिखा है कि वर्तमान में यही क्रिया चल रही है।

''धर्मदास जीवन दर्शन एवं वंश परिचय'' पुस्तक पृष्ठ नं. 32 से 49 तक विवरण दिया है :-

पहला चुरामणी जी सम्वत् 1570 से 1630 तक 60 वर्ष कुदुरमाल नामक स्थान की गद्दी पर रहे।

दूसरा सुदर्शन नाम जी सम्वत् 1630 से 1690 तक 60 वर्ष रतनपुर नामक स्थान की गद्दी पर रहे।

तीसरा कुलपत नाम जी सम्वत् 1690 से 1750 तक 60 वर्ष कुदुरमाल नामक स्थान की गद्दी पर रहे।

चौथा प्रमोद गुरु बाला पीर जी सम्वत् 1750 से 1804 तक 54 वर्ष मंढला नामक स्थान की गद्दी पर रहे।

पाँचवां केवल नाम जी सम्वत् 1804 से 1824 तक 20 वर्ष धमधा गद्दी पर रहे।

छठवां अमोल नाम जी सम्वत् 1824 से 1846 तक 22 वर्ष मंडला नामक स्थान की गद्दी पर रहे।

सातवां सूरत सनेही जी सम्वत् 1846 से 1871 तक 25 वर्ष सिंघाड़ी नामक स्थान की गद्दी पर रहे।

आठवां 1872 से 1890 तक 18 वर्ष कवर्धा नामक स्थान की गद्दी पर रहा।

नौवां 1890 से 1912 तक 22 वर्ष कवर्धा नामक स्थान की गद्दी पर रहा।

दसवां 1912 से 1939 तक 27 वर्ष कवर्धा नामक स्थान की गद्दी पर रहा।

ग्यारहवें को गद्दी ही नहीं हुई। क्योंकि दो वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई।

बारहवां उग्र नाम साहब जी सम्वत् 1953 में गद्दी पर बैठा तथा सम्वत् 1971 में मृत्यु हुई, 18 वर्ष तक कवर्धा स्थान को त्याग कर दामा खेड़ा में स्वयं गद्दी बना कर रहा तथा सम्वत् 1939 से 1953 तक 14 वर्ष तक दामाखेड़ा नामक स्थान की गद्दी के पंथ वंश बिना पंथ रहा।

तेरहवां वंश दयानाम साहेब सम्वत् 1971 से 1984 तक 13 वर्ष दामाखेड़ा नामक स्थान की गद्दी पर रहा।

उपरोक्त विवरण से सिद्ध है कि दामाखेड़ा वालों की मनघड़न्त कहानी है कि वंश गद्दी से ही कलयुग में मुक्ति सम्भव है तथा प्रत्येक गद्दी वाला महंत 25 वर्ष 20 दिन तक गद्दी पर रहता है। फिर दूसरे को उत्तराधिकारी बना कर शरीर त्याग जाता है। न अधिक समय, न कम समय अपितु पूरे 25 वर्ष 20 दिन ही रहता है, यह गलत सिद्ध हुआ। क्योंकि उपरोक्त विवरण में किसी भी गद्दी वाले ने 25 वर्ष 20 दिन का समय नहीं रखा कोई 60 वर्ष कोई 54, 22, 27 या पूरे 25 या 18 वर्ष समय गद्दी पर रहे हैं।

शंकाः- अनुराग सागर पृष्ठ नं. 120 से 123 तक बारह दूतों का वर्णन किया है। जिसमें लिखा है कि आठवां दूत जो पंथ चलाएगा वह कुछ कुरान तथा कुछ वेद चुरा कर कुछ कबीर जी का केवल निर्गुण ज्ञान लेकर अपना ज्ञान प्रचार करेगा तथा एक तारतम्य पुस्तक लिखेगा। आप भी वेद व कुरान आदि का वर्णन करके पुस्तक लिख रहे हो। आपका मार्ग कबीर मार्ग ही है क्या प्रमाण है?

समाधानः- यहाँ पर बारह काल पंथों का विवरण है जो दामा खेड़ा वालों के द्वारा मिलावट करके लिखा गया है।

(1.) क्योंकि कबीर बानी (बोध सागर) पृष्ठ नं. 134 से 138 तथा कबीर चरित्र बोध पृष्ठ नं. 1870 पर लिखे बारह पंथों के विवरण से नहीं मिलती।

(2.) यह विवरण आठवें पंथ के प्रवर्तक का है। उसके बाद राम कबीर पंथ, सतनामी पंथ आदि सर्व बारह पंथ चल चुके हैं।

अब इस दास (रामपाल दास) द्वारा तेरहवां अर्थात् एक वास्तविक मार्ग चलाया जा रहा है। जिससे सर्व पंथ मिट कर एक पंथ ही रह जाएगा। जिसका प्रमाण आप पूर्व लिखे विवरण में पढ़ चुके हैं। जो स्वयं कबीर परमेश्वर जी की आज्ञा व कृपा से चल रहा है। यह दास (रामपाल दास) वेदों तथा कुरान व कबीर वाणी आदि को चुरा कर पुस्तक नहीं लिख रहा है अपितु परमेश्वर कबीर साहेब जी की वाणी के आधार से प्रचार किया जा रहा है तथा परमेश्वर

की कर्विवाणी (कबीर वाणी) की सत्यता के लिए वेदों तथा कुरान आदि का समर्थन लिया जा रहा है। वाणी चुराने का अर्थ होता है कि वास्तविक ज्ञान को छुपाने के लिए सतग्रन्थों के ज्ञान को मरोड़-तरोड़ कर अपने लोक वेद (दंत कथा) को उजागर करना परन्तु यह दास तो परमेश्वर कबीर जी की वाणी को ही आधार मान कर यथार्थ ज्ञान के आधार से मार्ग दर्शन कर रहा है।

इसलिए हमारा मार्ग कबीर मार्ग (पंथ) है। शेष पंथों की साधना शास्त्र विरुद्ध अर्थात् मनमाना आचरण (पूजा) है जो मोक्षदायक नहीं है।

कबीर सागर– ''अमर मूल'' पृष्ठ 196 पर साखी लिखी है :

साखीः- नाम भेद जो जान ही, सोई वंश हमार।
नातर दुनियाँ बहुत ही, बूड़ मुआ संसार।।

पृष्ठ 205 पर लिखा हैः- नाम जाने सो वंश तुम्हारा, बिना नाम बुड़ा संसारा।

पृष्ठ 207 पर लिखा हैः- सोई वंश सत शब्द समाना, शब्द हि हेत कथा निज ज्ञाना।

पृष्ठ 217 पर लिखा हैः- बिना नाम मिटे नहीं संशा, नाम जाने सो हमारे वंशा।
नाम जाने सो वंश कहावे, नाम बिना मुक्ति न पावे।
नाम जाने सो वंश हमारा, बिना नाम बुड़ा संसारा।

पृष्ठ 244 पर लिखा हैः- बिन्द के बालक रहें उरझाई, मान गुमान और प्रभुताई।
साखीः– हमरे बालक नाम के, और सकल सब झूठ।
सत्य शब्द कह जानही, काल गह नहीं खूंठ।।
वंश हमारा शब्द निज जाना, बिना नाम नहिं वंशहि माना।।
धर्मदास निर्मोहि हिय गहेहू। वंश की चिन्ता छाड़ तुम देहू।

कबीर सागर के अध्याय अनुराग सागर पृष्ठ 138 से 141 तक का भावार्थ है किः- तेरे वंश में बिन्द (सन्तान) तो अभिमानी होगें तथा साथ ही अहंकार वश झगड़ा करेगें तथा कहेगें कि हम तो धर्मदास के वंश (सन्तान) से हैं। हम श्रेष्ठ है। कबीर परमेश्वर ने कहा है कि मेरा वास्तविक वंश वही है जो मेरे निज शब्द अर्थात् सारशब्द से परिचित है जो सारशब्द से परिचित नहीं है वह हमारा वंश नही माना जाएगा। इसलिए बारहवें पंथ अर्थात् गरीबदास जी वाले पंथ तक काल के पंथ ही कहा गया है। इसलिए धर्मदास जी से कबीर जी ने कहा है कि आप अपने वंश की चिन्ता छोड़ कर निर्मोही हो जाओ।

कबीर साहेब ने कहा कि यदि तेरे वंश वाले मेरे वचन अनुसार चलेगें तो उन्हे भी पार कर दूंगा अन्यथा नहीं।

पृष्ठ नं. 139 से :- वचन गहे सो वंश हमारा, बिना वचन (नाम) नहीं उतरे पारा।
धर्मदास तब बंस तुम्हारा, वचन बंस रोके बटपारा।।
शब्द की चास नाद कह होई, बिन्द तुम्हारा जाय बिगोई।
बिन्द ते होय ना पंथ उजागर। परखि के देखहु धर्मनिनागर।।
चारहु युग देखहु समवादा, पन्थ उजागर किन्हों नादा।
और वंस जो नाद सम्हारै, आप तरें और जीवहीं तारे।
कहां नाद और बिन्द रै भाई। नाम भक्ति बिनु लोक ना जाई।।

उपरोक्त वाणी का भावार्थ है कि परमेश्वर कबीर जी ने धर्मदास जी से कहा जो मेरी आज्ञा का पालन करेगा। वही हमारा वंश अर्थात् अनुयाई होगा अन्यथा वह पार नहीं होगा तेरे बिन्द वाले अर्थात् शरीर से उत्पन्न सन्तान महंत परम्परा तो अभिमानी हो जाऐगें। वे तो सीधे नरक के भागी होगें। केवल नाद (शिष्य परम्परा) से ही तेरा पंथ चल सकेगा यदि वास्तविक नाम चलता रहेगा तो अन्यथा तेरे दोनों ही नाद (शिष्य) बिन्द (शरीर की संतान) भक्तिहीन हो जाएगें। केवल तेरा वंश फिर भी चलेगा।

धर्मदास आप की दोनों परम्परा (नाद व बिन्द) से अन्य कोई मेरे वचन अर्थात् नाद (शिष्य परम्परा) के अनुयायी होगें उनसे मेरा यथार्थ कबीर पंथ उजागर (प्रसिद्ध) होगा। कबीर साहेब कह रहे हैं कि धर्मदास किसी युग में देख ले केवल नाद (वचन) अर्थात् शिष्य परम्परा से ही जीव कल्याण हुआ है तथा बिन्द (शरीर) की सन्तान अर्थात् महंत परम्परा से कोई सत्य मार्ग नहीं चलता, वे तो अभिमानी होते हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हुआ कि दामाखेड़ा वाली गद्‌दी वाले महंत जी मनघड़ंत कहानी बना कर श्रद्धालुओं को गुमराह कर रहे हैं। जो वास्तविक सतनाम(जो दो मंत्र का है जिससे एक ओ३म् तथा दूसरा सांकेतिक तत् मन्त्र है) यह दास(रामपाल दास) दान करता है। उसका प्रमाण आदरणीय धर्मदास साहेब जी की वाणी जो कबीर सागर तथा कबीर पंथी शब्दावली में तथा आदरणीय गरीबदास साहेब जी की वाणी में तथा आदरणीय दादू साहेब जी की वाणी में तथा आदरणीय घीसा दास साहेब की वाणी में तथा परमेश्वर कबीर साहेब जी की वाणी में प्रमाण है। परंतु वर्तमान के सर्व तथा कथित कबीर पंथी तथा उपरोक्त अन्य संतों के पंथी सतनाम से अपरीचित हैं तथा मनमाने नाम जाप दान कर रहे हैं। जो व्यर्थ हैं।

प्रश्न : एक भक्त कह रहा था कि सातवीं पीढ़ी के बाद सुधार कर लिया था?

उत्तर : यदि सुधार कर लिया होता तो उनके पास सतनाम मंत्र होता। यह भी किसी काल के दूत की ही सोच है। यदि अब कोई मुझ दास से नाम प्राप्त करके ढोंग रचे कि मेरे पास भी वही मंत्र हैं तो वह अनअधिकारी होने के कारण व्यर्थ है।

प्रश्न : आप तीन बार नाम देते हो तथा फिर सारशब्द भी प्रदान करके चौथा पद प्राप्त कराते हो। परंतु दामा खेड़ा वाले तथा अन्य कबीर पंथी महंत, संत तो नाम एक ही बार देते हैं। कौन सा सत्य है ? इसकी परख कैसे हो ?

कबीर पंथ में दामाखेड़ा वाले महन्तों द्वारा तथा उन्हीं से भिन्न हुए खरसिया गद्दी वालों तथा लहरतारा काशी (बनारस) वालों द्वारा जो उपदेश मन्त्र (नाम) दिया जाता है। वह निम्न है :- ''सत सुकृत की रहनी रहो। अजर अमर गहो सत्य नाम। कह कबीर मूल दीक्षा सत्य शब्द प्रमाण। आदि नाम, अजर नाम, अमी नाम, पाताले सप्त सिंधु नाम, आकाशे अदली निज नाम। यही नाम हंस का काम। खुले कुंजी खुले कपाट पांजी चढ़े मूल के घाट। भर्म भूत का बान्धो गोला कह कबीर यही प्रमाण पांच नाम ले हंसा सत्यलोक समान''

उत्तर : कबीर सागर में अमर मूल बोध सागर पृष्ठ 265 पर लिखा है :-

तब कबीर अस कहेवे लीन्हा, ज्ञानभेद सकल कह दीन्हा।।
धर्मदास मैं कहो बिचारी, जिहिते निबहै सब संसारी।।
प्रथमहि शिष्य होय जो आई, ता कहैं पान देहु तुम भाई।।1।।

जब देखहु तुम दृढ़ता ज्ञाना, ता कहैं कहु शब्द प्रवाना।।2।।
शब्द मांहि जब निश्चय आवै, ता कहैं ज्ञान अगाध सुनावै।।3।।

दोबारा फिर समझाया है -

बालक सम जाकर है ज्ञाना। तासों कहहू वचन प्रवाना।।1।।
जा कहैं सूक्ष्म ज्ञान है भाई। ता कहें स्मरन देहु लखाई।।2।।
ज्ञान गम्य जा कहैं पुनि होई। सार शब्द जा कहैं कह सोई।।3।।
जा कहैं दिव्य ज्ञान परवेशा, ताकहैं तत्व ज्ञान उपदेशा।।4।।

उपरोक्त वाणी से स्पष्ट है कि कड़िहार गुरु तीन स्थिति में सार नाम तक प्रदान करता है तथा चौथी स्थिति में सार शब्द प्रदान करना होता है। धर्मदास जी के माध्यम से इस दास (रामपाल दास) को संकेत है। क्योंकि कबीर सागर में तो प्रमाण बाद में देखा था परंतु उपदेश विधि पहले ही पूज्य गुरुदेव तथा परमेश्वर कबीर साहेब जी ने मुझ दास को प्रदान कर दी थी। जो उपदेश मन्त्र (नाम) दामाखेड़ा वाले व खरसीया तथा लहरतारा काशी वाले देते हैं वह मन्त्र व्यर्थ है। उस में तो सत्यनाम तथा निजनाम (सारनाम) तथा पांच नामों की महीमा बताई है जो यह दास (रामपाल दास) प्रदान करता है। यह उपरोक्त पूरा शब्द(जो दामाखेड़ा व खरसीया व लहरतारा काशी वाले उपदेश में देते हैं) रटने से कुछ लाभ नहीं जो इसमें संकेत है उस सत्यनाम व निज नाम (सारशब्द) तथा पांच नामों को मुझ दास से प्राप्त करके साधना करने से मोक्ष होगा।

धर्मदास जी को तो परमश्वेर कबीर साहेब जी ने सार शब्द देने से मना कर दिया था तथा कहा था कि यदि सार शब्द किसी काल के दूत के हाथ पड़ गया तो बिचली पीढ़ी वाले हंस पार नहीं हो पाऐंगे।

इसलिए कबीर सागर, जीव धर्म बोध, बोध सागर, पृष्ठ 1937 पर लिखा है :-

धर्मदास तोहि लाख दुहाई, सार शब्द कहीं बाहर नहीं जाई।
सार शब्द बाहर जो परि है, बिचली पीढ़ी हंस नहीं तरि है।

जैसे कलयुग के प्रारम्भ में प्रथम पीढ़ी वाले भक्त अशिक्षित थे तथा कलयुग के अंत में अंतिम पीढ़ी वाले भक्त कृतघनी हो जाऐंगे तथा अब वर्तमान में सन् 1947 से भारत स्वतंत्र होने के पश्चात् बिचली पीढ़ी प्रारम्भ हुई है। सन् 1951 में मुझ दास को भेजा है। अब सर्व भक्तजन शिक्षित हैं। वह बिचली पीढी वाला भक्ति समय प्रारम्भ हो चुका है। मुझ दास के पास सत्यनाम तथा सार शब्द तथा पांच नाम परमेश्वर कबीर दत्त हैं। उपदेश प्राप्त करके अपना कल्याण करायें। मानव जीवन तथा बिचली पीढ़ी वाला समय आप को प्राप्त है। अविलम्ब मुझ दास के पास आऐं अन्यथा पश्चाताप् करना पड़ेगा। यथार्थ कबीर पंथ अर्थात् एक पंथ प्रारम्भ हो चुका है। अब यह सत मार्ग सत साधना पूरे संसार में फैलेगी तथा नकली गुरु तथा संत, महंत छुपते फिरेंगे।

पुस्तक "धनी धर्मदास जीवन दर्शन एवं वंश परिचय" के पृष्ठ 46 पर लिखा है कि ग्यारहवीं पीढ़ी को गद्दी नहीं मिली। जिस महंत जी का नाम "धीरज नाम साहब" कवर्धा में रहता था। उसके बाद बारहवां महंत उग्र नाम साहेब ने दामाखेड़ा में गद्दी की स्थापना की तथा स्वयं ही महंत बन बैठा। इससे पहले दामाखेड़ा में गद्दी नहीं थी।

इससे स्पष्ट है कि पूरे विश्व में मुझ दास के अतिरिक्त वास्तविक भक्ति मार्ग नहीं है।

सर्व प्रभु प्रेमी श्रद्धालुओं से प्रार्थना है कि प्रभु का भेजा हुआ दास जान कर अपना कल्याण करवाऐं।

यह संसार समझदा नाहीं, कहन्दा श्याम दोपहरे नूं।
गरीबदास यह वक्त जात है, रोवोगे इस पहरे नूं।।

संत रामपाल दास
सतलोक आश्रम करौंथा,
जिला रोहतक(हरियाणा)।

"प्रभु प्रेमी पाठकों की शंकाओं का समाधान - रामपाल दास"

परमेश्वर के तत्वज्ञान सम्बन्धित लेखों को विज्ञापन के माध्यम से समाचार पत्रों में पढ़कर 99.99 प्रतिशत पाठक श्रद्धालुओं के प्रशंसा युक्त पत्र सतलोक आश्रम करौंथा में प्राप्त हुए। जिन्होंने लगभग सर्व लेख पढ़े हैं। एक आध श्रद्धालु ने केवल एक ही विज्ञापन पढ़ा, उसी के आधार पर नाराज होकर बिना पते का पत्र डाल दिया तथा एक पाठक ने 9 जुलाई 2005 के दैनिक भास्कर पृष्ठ 6 पर एक कोने में शंका व्यक्त की है। उन श्रद्धालुओं से प्रार्थना है कि पूर्ण जानकारी के लिए दो पुस्तकें (1. गहरी नजर गीता में 2. परमेश्वर का सार संदेश) सतलोक आश्रम करौंथा से मुफ्त प्राप्त करें। दूरभाष (9812026821, 9812142324) द्वारा अपना पता लिखवायें, पुस्तकें आपके पास पहुँच जाएंगी। केवल डाकखर्च आपको देना होगा।

शंका - (क) किसी की निंदा नहीं करनी चाहिए। जो संत जैसा मार्ग दर्शन करता है करता रहे।

उत्तर - मुझ दास का उद्देश्य है कि सर्व भक्त समाज को तत्वज्ञान कराऊँ। जिस भी शास्त्र पर जो भक्त वृंदआधारित है उसी की वास्तविकता आप के समक्ष रखूं, तभी उन अधूरे शास्त्रों को त्यागने तथा सत भक्ति ग्रहण करने की तड़फ जाग्रत होगी। जैसे पेंटर (रंग करने वाला) जंग अर्थात् पूर्व किया गलत पैंट हटाने के लिए रेगमार लगाता है, फिर पेंट सही पकड़ करता है। इसी प्रकार शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण (पूजा) करने वाले श्रद्धालुओं पर जंग लगा है, जिसे छुड़ाने के लिए शास्त्रों का तत्वज्ञान रूपी रेगमार लगाना अति आवश्यक है, यह निंदा नहीं है।

वास्तविक वस्तु का बोध कराने के लिए नकली वस्तु को साथ दिखाना आवश्यक होता है। जैसे सरकार ने 500 रूपये के नकली नोट पकड़े थे। जनता को धोखे से बचाने के लिए नकली तथा असली दोनों नोट समाचार पत्रों तथा टी.वी. के माध्यम से दिखाए थे। सरकार ने निंदा नहीं, परोपकार किया था, जो अति आवश्यक था। सरकार के उपरोक्त प्रयत्न को तीन प्रकार के व्यक्ति निंदा कह सकते हैं, एक तो जिसने नशा कर रखा हो, दूसरा अबोध बालक तथा तीसरा उसी गिरोह का व्यक्ति जो नकली नोट छापते थे।

सर्व पवित्र धर्मों के पवित्र शास्त्र वास्तविक (असली) नोट हैं। परन्तु उन्हीं की आड़ में वर्तमान के मार्गदर्शकों ने जो साधना की विधि बताई है, दास ने तो उसकी तुलना असली शास्त्रों से की है। जैसे किसी अध्यापक ने गणित का प्रश्न ठीक हल नहीं किया है उसी पर सर्व कक्षा के विद्यार्थी आश्रित हैं। दूसरा अध्यापक उसे ठीक कराए और विद्यार्थी कहें की

अध्यापक जी तो पूर्व अध्यापक की निंदा कर रहा है, तो वह उन विद्यार्थियों की बाल बुद्धि ही है। मूल व्याख्या फिर पढ़ें। किसी अन्य अध्यापक से भी जानकारी लें। पूर्ण निश्चय करके परीक्षा की तैयारी करना ही उचित है।

अपने शास्त्र (सद्ग्रन्थ) सत्यज्ञान युक्त हैं, जिनमें मूल व्याख्या है। उन्हें पुनर् पढ़कर निर्णय लेना ही हितकर है। मूल शास्त्र हैं - 1. पवित्र चारों वेद, 2. पवित्र श्रीमद्भगवत गीता जी, अठारह पुराण, श्रीमद्भागवत सुधासागर जो पवित्र हिन्दु समाज के शास्त्र माने जाते हैं। वास्तव में उपरोक्त शास्त्र महर्षि व्यास जी द्वारा उस समय लिपिबद्ध किए गए थे जब कोई अन्य धर्म(हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि) नहीं था। केवल वेदों के अनुसार साधना सर्व भक्त समाज किया करता था, ऋषिजन एक ही प्रकार की साधना श्रद्धालुओं को बताते थे। परन्तु वर्तमान के मार्गदर्शक शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण (पूजा) कर तथा करवा रहे हैं जो हानिकारक है। प्रमाण श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में कहा है कि अर्जुन ! जो साधक शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण (पूजा) करता है उसे न तो कोई सुख होता है, न परमगति, न ही कोई कार्य ही सिद्ध होता है। इसलिए भगवत भक्ति के करने तथा न करने योग्य कर्मों (साधनाओं) के निर्णय के लिए शास्त्र ही प्रमाण हैं(श्रीमद्भगवत गीता जी का ज्ञान बोला जा रहा था, अतः चारों वेदों की तरफ संकेत है)।

पवित्र गीता जी चारों पवित्र वेदों का ही सारांश है, जो भक्ति के लिए प्रभु का संविधान है। संविधान की अवहेलना करने वाला दोषी होता है। पवित्र गीता जी तथा पवित्र चारों वेदों का ज्ञान ब्रह्म (ज्योति निरंजन-काल) द्वारा ही दिया गया है। जिसमें ब्रह्म(क्षर पुरुष), परब्रह्म(अक्षर पुरुष) तथा पूर्णब्रह्म(परम अक्षर पुरुष) के विषय में विवरण है। प्रमाण : पवित्र श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 तथा 16-17 में, पवित्र यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 17, पवित्र ऋग्वेद मण्डल 10 सूक्त 90 मंत्र 1 से 5 आदि-आदि।

उपरोक्त शास्त्रों में पूजा की विधि केवल ब्रह्म तक की ही वर्णित है। पूर्णब्रह्म की पूजा की विधि के विषय में पवित्र गीता तथा पवित्र वेदों का ज्ञान दाता ब्रह्म(ज्योति निरंजन-काल) ने कहा है कि उस पूर्ण परमात्मा के विषय में मुझे ज्ञान नहीं है। उसके लिए किसी तत्वज्ञान युक्त तत्वदर्शी संतों की खोज कर, फिर जैसे वे तत्वदर्शी संत बताऐं वैसे साधना उस परमात्मा की करना। प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 4 श्लोक 34, यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 10 ।

अपनी साधना के विषय में पवित्र श्रीमद्भगवत गीता के ज्ञान दाता ब्रह्म ने अध्याय 8 मंत्र 13 में कहा है -

ओम् इति एकाक्षरम्, ब्रह्म व्याहरन् माम् अनुस्मरन्, यः प्रयाति त्यजन् देहम्, सः याति परमाम् गतिम्।।13।।

इसका शब्दार्थ है कि गीता बोलने वाला ब्रह्म अर्थात् काल कह रहा है कि (माम् ब्रह्म) मुझ ब्रह्म का तो (इति) यह (ओम् एकाक्षरम्) ओं अर्थात् ॐ एक अक्षर है (व्याहरन्) उच्चारण करके (अनुस्मरन्) स्मरण करने का (यः) जो साधक (त्यजन् देहम्) शरीर त्यागने तक अर्थात् अन्तिम स्वांस तक (प्रयाति) स्मरण साधना करता है (सः) वह साधक ही मेरे वाली (परमाम् गतिम्) परमगति को (याति) प्राप्त होता है। भावार्थ है कि श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रेतवत् प्रवेश करके ब्रह्म अर्थात् हजार भुजा वाला ज्योति निरंजन काल कह रहा है कि मुझ ब्रह्म की साधना केवल एक ओम् (ॐ) नाम से मृत्यु पर्यन्त करने वाले साधक को मुझसे मिलने वाला

लाभ प्राप्त होता है। अन्य कोई मंत्र मेरी भक्ति का नहीं है तथा अपनी गति को भी गीता अध्याय 7 मंत्र 18 में अनुत्तमाम् अर्थात् अति घटिया बताया है। इसलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि अर्जुन सर्व भाव से उस परमेश्वर की शरण में जा, तब तू पूर्ण मुक्त होकर परम शान्ति को तथा सतलोक अर्थात् सनातन धाम को प्राप्त होगा। यदि मेरी शरण में रहेगा तो युद्ध भी कर तथा मेरा स्मरण भी कर (गीता अध्याय 8 श्लोक 7)। परन्तु तू तथा मैं (गीता ज्ञान दाता प्रभु) दोनों ही नाशवान हैं अर्थात् तेरे तथा मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं, आगे भी होते रहेंगे (गीता अध्याय 4 श्लोक 5 तथा गीता अध्याय 2 श्लोक 12 व 17)। उस परमेश्वर के ज्ञान व भक्ति विधि के लिए किसी तत्वदर्शी संत की खोज करने को कहा है(गीता अध्याय 4 श्लोक 34)। अब सर्व से प्रार्थना है कि उस परमेश्वर पूर्णब्रह्म का ज्ञान मुझ दास के पास है, निःशुल्क प्राप्त करें।

यही प्रमाण यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 15 व 17 में भी है। उपरोक्त सद्ग्रन्थों अर्थात् प्रभु भक्ति के संविधान ने सिद्ध कर दिया कि एक ओ३म् नाम को छोड़ कर अन्य जो भी नाम हैं वे शास्त्र विधि (प्रभु भक्ति के संविधान) के विरूद्ध मनमाना आचरण (पूजा) हैं जो हानिकारक है। इसलिए ओम् नमो शिवाय, ओम् नमो भगवते वासुदेवाय, हरिओम् आदि भी मंत्र शास्त्र विधि अनुसार नहीं हैं। जैसे मोटर साईकिल के पिस्टन से कोई अन्य नट आदि वैल्ड कर देना हानिकारक है, ऐसे ही ओम नाम के साथ अन्य कोई वाक्य या अक्षर लगाना शास्त्र विधि रहित है। इसलिए ब्रह्म तक की साधना केवल एक ओं (ॐ) 'ओ३म्' नाम के जाप से ही सफल होती है।

शंका - (ख) महर्षि बाल्मीक जी मरा-मरा जाप करके तिर गए।

उत्तर - यदि मरा-मरा नाम जाप करने से ही साधक पार हो जाए तो उपरोक्त पवित्र शास्त्रों का ज्ञान प्रभु नहीं देता। महर्षि वाल्मिक जी के उद्धार के विषय में आप ने दंत कथा सुनी है, जिस कारण ऐसी शंका उत्पन्न हुई है। इसीलिए तत्वज्ञान की आवश्यकता भक्त समाज को है, जिसके लिए मुझ दास द्वारा लिखी उपरोक्त पुस्तकें निःशुल्क केवल डाकखर्च पर प्राप्त करके पढ़ें।

महर्षि वाल्मिक जी को सप्त ऋषि मिले थे। ऋषि लोग केवल वेदों अनुसार एक 'ओम' (ॐ) मंत्र ही उच्चारण करके जाप करना साधक को बताते थे। जिसे महर्षि वाल्मिक जी ने सर्व विकार त्याग कर संसार से उल्ट कर अनन्य मन से जाप किया। यह ओम नाम उच्चारण (बोल-बोल) के करने से ही ब्रह्म साधना की सफलता कही है। इसलिए श्री वाल्मिक जी ने ओम-ओम का उच्चारण करके जाप किया। जो अन्य श्रोता को ओम-ओम-ओम के स्थान पर मओ-मओ-मओ उल्टा सुनता है। परन्तु साधक उसे हृदय से विधिवत् 'ओम' ही उच्चारण करता है।

महर्षि वाल्मिक जी के विषय में - 'उलटा नाम जपा जग जाना, वाल्मिक भए ब्रह्म समाना'

भावार्थ - महर्षि वाल्मिक जी ने संसार को असार जान कर संसार से विरक्त (उलट कर) होकर केवल ओं नाम जाप किया, जिससे ईश्वरीय गुणों से युक्त हो गए। दंत कथाओं के आधार पर मरा-मरा शब्द राम का उलटा कहा है, परन्तु 'राम' नाम के जाप का किसी शास्त्र में प्रमाण नहीं है। शंका उत्पन्न होती है कि फिर यह प्रचलित कैसे हुआ? इस विषय में वास्तविकता है कि ऋषिजन 'ओम्' नाम अपने शिष्य को जाप के लिए कहते हैं। केवल अधिकारी व्यक्ति (संत-गुरु) ही नाम दान कर सकता है, अन्य नहीं। गुरु जी सर्व अनुयाईयों को कहता है कि मंत्र का जाप काम करते-करते करो अर्थात् सांसारिक कार्यों के कारण भूल न पड़े। इसलिए सर्व साधकों को आदेश ऋषि करता था कि एक-दूसरे को नाम साधना की याद दिलाते रहना, कहीं भूल न पड़ जाए।

परन्तु यह नहीं कहना कि 'ओम्' नाम जाप करो। क्योंकि ऐसा कहने से आप का आदेश हो जाएगा। आप अधिकारी नहीं हो इसलिए दोषी हो जाओगे, आपका नाम खण्ड हो जायेगा। गुरु जी (ऋषि जी) कहते थे कि आप एक दूसरे से कहना राम-राम, जिससे सामने वाला उपदेशी सावधान हो जाएगा। वह यदि सांसारिक उलझन में नाम जाप नहीं कर रहा होगा तो करने लग जाएगा या कर रहा होगा तो अच्छी बात है। इसलिए एक साधक जब रास्ते में या कहीं और साधक से मिलता है तो कहता है कि राम-राम, जिसका भावार्थ है कि प्रभु (राम) की याद न भूलना, राम ही सब कुछ है। राम (प्रभु) की ही भक्ति सत है, शेष असत है। इसके उत्तर में दूसरा साधक कहता है वास्तव में यही है। इसलिए कहता है राम-राम अर्थात् कोई संशय नहीं है कि प्रभु भक्ति ही सर्व सुखदायक है। यदि सामने वाला 'ओम्' मंत्र का जाप कर रहा होता है तो भी मन-मन में कहता है राम-राम अर्थात् साधना कर रहा हूँ, भूल नहीं पड़ी है। यदि विचारों में उलझ कर नाम जाप भूल रहा होता है तो भी कहता है राम-राम मन-2 में कहता है भूल पड़ गई थी, अब फिर शुरु करता हूँ। इस प्रकार यह राम-राम शब्द प्रचलित हो गया। रामनाम के जाप को जपने के लिए वर्तमान के गुरु भी कहते हैं। उस विषय में वास्तविकता है कि कुछ एक पुण्यकर्मी प्राणी में पूर्व शास्त्र विधि अनुसार साधना की कमाई के कारण कुछ सिद्धि शेष रह जाती है, जिस कारण से कुछ चमत्कार हो जाते हैं। फिर बहुत से उसके अनुयाई बन जाते हैं। फिर उससे प्रभु भक्ति की विधि भी श्रद्धालु जानना चाहते हैं। वह पूर्व सिद्धि युक्त कथित ऋषि सुने-सुनाए ज्ञान (दंत कथा) के आधार से कह देता है राम-राम जाप करो। जिसे अनुयाई भक्ति मार्ग जान कर करते रहते हैं, परन्तु शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण होने से हानिकारक है, प्रमाण गीता अध्याय 16 मंत्र 23-24 ।

इसी प्रकार जो पुण्यकर्मी प्राणी शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण (पूजा) करते-करते शरीर त्याग जाते हैं वे पितर बन जाते हैं। फिर उसके अनुयाई ध्यान लगाते हैं, तो वही भूत(प्रेत) अंदर से आवाज देने लगता है, राम-राम रा......म। जिसे परमात्मा की आकाशवाणी जानकर श्रद्धालु उसी 'राम' नाम पर दृढ़ता से लग जाते थे तथा अनुयाईयों को भी 'राम' नाम दान करने लगे तथा कहते थे कि यह प्रभु का दिया मंत्र है।

विचारणीय विषय है कि 'राम' नाम के जाप करने वाला गुरु जी चमत्कार दिखाता था। परन्तु शिष्य बीस वर्ष की साधना के पश्चात् भी कुछ नहीं दिखा पाया। इससे सिद्ध हुआ कि जो पूर्व भक्ति संस्कार से सिद्धि युक्त उस गुरू जी की बैट्री पहले जन्म के चार्जर अर्थात् शास्त्र अनुकूल साधना से चार्ज थी। परन्तु इस जन्म में शास्त्र विधि रहित साधना करके स्वयं भी खाली हो कर गया तथा अनेकों अनुयाईयों को भी गलत मार्ग दर्शन करके दोषी हो गया। श्री रामचन्द्र जी ने भक्तमति शबरी(भिलनी) को नवधा भक्ति के विषय में बताते हुए कहा - (श्री तुलसीदास कृत रामायण)

'मंत्र जप मम दृढ़ विश्वासा, पंचम भजन जो वेद प्रकाशा' ।

भावार्थ है कि श्री रामचन्द्र जी गुरु रूप से अपनी शिष्या भक्तमति शबरी को पाँचवी विधि में कह रहे हैं कि मैं जो ज्ञान बता रहा हूँ इस मेरे ज्ञान पर दृढ़ विश्वास कर तथा मंत्र जाप (भजन) भी उसी मंत्र का करो जो वेद में वर्णित है अर्थात् ओ३म् नाम। इसी विषय में कविर्देव (कबीर परमेश्वर) ने कहा है -

कबीर, राम नाम जो जाप करत हैं, जान मुक्ति को काम। श्री राम ने वशिष्ठ गुरु किया, जिन्ह दीन्हा ओम् नाम।।

भावार्थ - जो साधक राम-राम नाम जाप मुक्ति का जान कर जाप करते हैं वे कृपया विचार

करें, जब श्री राम ने वशिष्ठ मुनि से आत्मकल्याण के लिए दीक्षा ली तब श्री वशिष्ठ ऋषि ने श्रीराम को भी 'ओ३म्' नाम ही जपने को कहा था। इसी आधार से श्री रामचन्द्र जी ने अपनी शिष्या भक्तमति शबरी को भी कहा है कि वेद ज्ञान अनुसार नाम जाप का मंत्र (ओम्) ही जाप (भजन) के लिए उत्तम है, क्योंकि यह मंत्र वेद में वर्णित है, अन्य कोई नाम ब्रह्म साधना का नहीं है।

इसलिए दास की प्रार्थना है कि आज सर्व समाज शिक्षित है, अपने-अपने सद्ग्रन्थों को कृपया पुनर् पढ़ें।

जैसे मुझ दास के अनुयाई 'सत साहेब' कहते हैं, जिसका भावार्थ है कि साहेब=प्रभु, सत= अविनाशी अर्थात् परमात्मा ही सत है, अन्य कोई वस्तु अपनी नहीं है। इसलिए गुरु मंत्र (जो अन्य जाप मंत्र होता है) जाप करते रहो। इसी को एक-दूसरा भक्त आपस में उच्चारण करता है, जिससे वास्तविक मंत्र जाप की भूल न पड़ जाए। अब वर्तमान में कई नकली गुरु जी 'सत साहेब' नाम जाप करने को ही बताने लग गए हैं। कई 'सतनाम' जाप करने को कहते हैं। जबकि सतनाम तो सच्चे मंत्र की तरफ संकेत है। जैसे कोई कहे 'दवाई खाले', उस दवाई का नाम कुछ और होता है। इसी प्रकार दास की प्रार्थना है कि तत्वज्ञान को समझें।

शंका - (ग) किसी की भावनाओं को ठेस नहीं पहुंचानी चाहिए।

उत्तर - यदि कोई अबोध बच्चा बिजली के नंगे तार को पकड़ने जा रहा हो, जिसमें से प्रकाश की आतिशबाजी सी चल रही हो (स्पार्किंग के कारण चमक निकल रही हो)। बच्चा उसे अच्छी वस्तु जानकर भावनावश पकड़ना चाहता है। यदि बड़ा व्यक्ति देख ले तो दौड़ कर बच्चे को उठाएगा या उस बिजली की तार को उस बच्चे की पहुंच से दूर कर देगा। भले ही बच्चे की भावना को ठेस लगने के कारण बच्चा रोता रहे, परन्तु उस समय उसकी भावना को ठेस लगाना अति आवश्यक है।

ठीक यही प्रयत्न मुझ दास का है कि अपने सर्व शास्त्र आज भी साक्षी हैं। परन्तु शास्त्र विधि त्यागकर मनमाना आचरण (पूजा) करके साधक अनमोल मनुष्य जीवन को नष्ट कर रहा है। शास्त्र अनुकूल साधना का ज्ञान कराना अति आवश्यक है। भले ही प्रथम बार किसी को कष्ट भी हो, परन्तु उद्देश्य गलत नहीं है।

शंका - (घ) किसी रेखा को काटने की बजाए नई लगाना ही ठीक है।

उत्तर - पुरानी रेखा के साथ ही तो नई रेखा लगाई जा रही है। वर्तमान संतों की साधना को लिख कर फिर शास्त्र अनुकूल साधना से ही तुलना की जा रही है।

प्रश्न : शंका - (ड़) समाज सुधारकों के विरुद्ध मोर्चा खोल देना कहाँ तक न्याय संगत है ?

उत्तर - जिन समाज सुधारकों ने अपने विचारों से रची पुस्तकों में समाज बिगाड़ का विवरण लिखा है, उसे पढ़कर या लिख कर दिखाना न्याय संगत ही है। जैसे एक समाज सुधारक महर्षि दयानन्द जी द्वारा रची 'सतार्थ प्रकाश' नामक पुस्तक समुल्लास 4 में लिखा है कि -

1. जिस कुल में किसी के बवासीर, मिर्गी, अक्षय, दमा, खांसी आदि रोग हैं, तथा किसी के शरीर पर बड़े-बड़े बाल हैं उस पूरे कुल की लड़की व लड़के से विवाह नहीं करना चाहिए।

2. पिता का एक गोत्र तथा माता की छः पीढ़ियों के गोत्र छोड़ कर विवाह करना उत्तम है।

3. जिस लड़की का नाम गंगा, जमुना, सरस्वती आदि नदियों पर है तथा काली नाम तथा भूरे नेत्र वाली हों उससे विवाह न करना चाहिए।

4. तथा 24 वर्ष की स्त्री से 48 वर्ष के पुरुष का विवाह उत्तम है। महर्षि दयानन्द जी का भावार्थ है कि 24 वर्ष की स्त्री तथा 48 वर्ष के पुरुष का विवाह होना चाहिए। यदि उपरोक्त

नियमों के अनुसार विवाह नहीं किया जाता वह देश खुशहाल नहीं हो सकता। (पृष्ठ 70-71)

5. शुद्र के अतिरिक्त अन्य तीन वर्णों में जिसकी पत्नी की मृत्यु हो जाए उस पुरुष तथा विधवा का पुनर् विवाह नहीं होना चाहिए। वे केवल नियोग कर सकते हैं। उनके लिए कहा कि वंश चलाने के लिए किसी अपने कुल का लड़का गोद लेकर वंश चलाऐं या नियोग करें।

पुनर्विवाह तथा नियोग की भिन्नता बताते हुए सतार्थ प्रकाश समुल्लास 4 में लिखा है कि विवाह में तो पति-पत्नी सदा इकट्ठे रहते हैं तथा दोनों मिल कर बच्चों का पालन करते हैं। आपस में झगड़ा भी करते रहते हैं।

परन्तु नियोग में स्त्री पुरुष केवल मिलन समय मिलते हैं, फिर अपने-अपने घर में अलग-अलग रहते हैं। जो संतान उत्पन्न होती है वह न तो वीर्यदाता का पुत्र कहलाता है तथा गोत्र भी वीर्यदाता वाला नहीं होता, मृत पति वाला ही माना जायेगा। बच्चों की परवरिश अकेली स्त्री ही करती है। महर्षि दयानन्द जी का कहने का भावार्थ है कि विधवा का पुनर् विवाह ठीक नहीं, नियोग (पशु तुल्य कर्म) ग्यारह व्यक्तियों तक करना दोष नहीं है। (पृष्ठ 96-97,101)

विचार करें - यह नियोग तो पशुओं तुल्य हुआ जैसे नर पशु मादा पशु से नियोग करके चला जाता है, फिर कुतियां बच्चों के समूह को लिए फिरती है।

एक विधवा स्त्री ग्यारह व्यक्तियों तक नियोग (पशु तुल्य घिनौना कर्म) कर सकती है। इसी प्रकार पुरुष भी ग्यारह स्त्री तक नियोग कर सकता है। समुल्लास 4 पृष्ठ 101 यह भी लिखा दिखाया कि पुनर्विवाह करने से तो स्त्री का पतिव्रत्य अर्थात् पतिव्रता धर्म नष्ट हो जाता है, समुल्लास 4 पृष्ठ 97 परन्तु नियोग जैसे पशु तुल्य कर्म से चाहे ग्यारह पुरुष संभोग करलें उनसे पतिव्रता धर्म नष्ट नहीं होता? (यह महर्षि द्वारा सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 4 पृष्ठ 96 से 101 तक लिखा है।)

सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 4 पृष्ठ 102 पर यह भी लिखा है कि जिस स्त्री का पति जीवित है वह दूर देश में रोजगार के लिए गया हो तो उसकी स्त्री तीन वर्ष तक बाट देखकर किसी अन्य पुरुष से संतान उत्पत्ति नियोग कुकर्म से करले, जब पति घर आवे तो नियोग किए पति को त्याग दे। जो गैर पुरुष से संतान उत्पन्न की है, वह विवाहित पति की ही मानी जायेगी।

सत्यार्थ प्रकाश में समाज सुधार की कलम तोड़ व्याख्या एक और देखने को मिली कि जिस पुरुष की पत्नी अप्रिय बोलने वाली हो तो उस पुरुष को चाहिए कि किसी अन्य स्त्री से केवल नियोग करके संतान उत्पत्ति करले तथा रहे अपनी पत्नी के साथ ही। इसी प्रकार जो पुरुष अत्यन्त दुःखदायक हो तो उसकी स्त्री भी दूसरे पुरुष से नियोग से संतान उत्पत्ति करके उसी विवाहित पति के दायभागी संतान कर लेवे।

भावार्थ है कि स्त्री किसी परपुरुष के पास जाकर कुकर्म करके संतान उत्पन्न करके अपने पति के घर में ही रहे तथा जो गैर संतान उत्पन्न हो वह विवाहित पति की सम्पति की हिस्सेदार (वारिस) होगी। यह लिखा है कि नियोगी पुरुष का गोत्र नहीं माना जाएगा, उस गैर संतान का गोत्र भी विवाहित पति वाला ही माना जाएगा। महर्षि दयानन्द जी ने लिखा है कि इस प्रकार पूर्वोक्त विवाह नियमों तथा नियोग से अपने-अपने कुल की उन्नति करें। उपरोक्त विचार महर्षि दयानन्द जी के समाज सुधार के विषय में हैं। {विचारणीय बात है कि जिस पति की पत्नी उसकी आँखों के सामने अन्य पुरुष के पास जाए तो क्या वह परिवार उन्नति कर सकता है ? वह तो कुरुक्षेत्र का मैदान हो जायेगा। 24 वर्ष की स्त्री 48 वर्ष के वृद्ध से विवाह करे जो

पिता की आयु के समान होता है, क्या कोई यह उपरोक्त नियम पालन करके सुखी हो सकता है अर्थात् नहीं। ऐसे निराधार शास्त्रों की पोल संत ही खोलते हैं, ताकि समाज सावधान होकर सतमार्ग अपनाए।} उपरोक्त विवरण सत्यार्थ प्रकाश से निष्कर्ष रूप में समुल्लास 4 पृष्ठ 70-71 तथा 96 से 102 पर से लिया गया है।

भक्ति मार्ग के विषय में महर्षि दयानन्द जी के विचार पूर्ण रूप से वेदज्ञान विरुद्ध हैं।

1. महर्षि दयानन्द जी ने लिखा है कि प्रभु की भक्ति, स्तुति आदि करने से पाप नाश(क्षमा) नहीं होते, अन्य लाभ होता है जैसे उपासना से परब्रह्म से मेल तथा उसका साक्षात्कार होना। फिर अपने ही करकमल से यजुर्वेद अध्याय 8 मंत्र 13 के अनुवाद में लिखा है कि परमात्मा अधर्म के अधर्म अर्थात् घोर पाप को भी नाश (क्षमा) कर देता है। इससे सिद्ध हुआ कि महर्षि दयानन्द जी को वेदज्ञान शुन्य था। वे प्रभु को निराकार कहते हैं तथा दूसरा प्रभु नहीं मानते। फिर स्वयं कह रहे हैं कि पापी आत्मा (जिसका पाप नाश नहीं हुआ वह पापी हुआ) ब्रह्म से भी दूसरे परब्रह्म से साक्षात्कार कर सकती है। साक्षात्कार तो साकार से होता है, निराकार से नहीं। यदि पापी व्यक्ति भी प्रभु प्राप्ति कर सकता है तो प्रभु भक्ति की रूचि ही समाप्त हो जाती है। जैसे दादा से दूसरा दादा (दादा का पिता) परदादा होता है।

यदि कोई रोगी वैद्य के पास रोग मुक्त होने के लिए जाए तथा वैद्य कहे कि औषधी से रोग समाप्त तो होगा नहीं, परन्तु पहलवान हो जाएगा। क्या वह व्यक्ति वैद्य हो सकता है ? यदि कोई साबुन विक्रेता कहे कि साबुन कपड़े का मैल तो छुड़वाता नहीं, परन्तु कपड़े को मजबूत कर देता है, क्या वह व्यक्ति साबुन से परिचित है ? वह तो पत्थर के टुकड़े साबुन रूप में विक्रय करने वाला ठग हो सकता है। ऐसी-ऐसी सैकड़ों त्रुटियां सत्यार्थ प्रकाश में हैं जो स्वामी दयानन्द जी द्वारा अपनी समझ से लिखा है, जो वेद ज्ञान के पूर्ण रूप से विपरीत है।

उपरोक्त विवरण सत्यार्थ प्रकाश से निष्कर्ष रूप में समुल्लास 4 पृष्ठ 70-71 तथा 96 से 102 पर से लिया गया है। यदि कोई शंका उठे तो कृपया सतलोक आश्रम करौंथा से ''गहरी नजर गीता में'' तथा ''सत्यार्थ प्रकाश'' दोनों पुस्तक मुफ्त प्राप्त करें। केवल फोन करें, पुस्तक आपके पास पहुंच जायेगी, केवल डाकखर्च आप का होगा। दूरभाष है - 9812026821, 9812142324

शंका - (च) भगवान शंकर के उपासक रावण को 'कुत्ते की मौत मरा' कहना तो अर्थ हुआ कि शंकर की उपासना व्यर्थ है।

उत्तर - दास अपनी तरफ से कुछ नहीं कहता, केवल अपने सद्ग्रन्थ जो कहते हैं वही सर्व के समक्ष रखता हूँ। पवित्र श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 23 तक कृपया स्वयं पढ़ें।

''तीनों गुण क्या हैं ? प्रमाण सहित''

''तीनों गुण=रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी हैं। इसलिए त्रिगुण माया भी इन्हीं को कहा जाता है। ब्रह्म(काल) तथा प्रकृति (दुर्गा) से उत्पन्न हुए हैं तथा तीनों प्रभु नाशवान हैं''

प्रमाण :- गीताप्रैस गोरखपुर से प्रकाशित श्री शिव महापुराण जिसके सम्पादक हैं श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार पृष्ठ सं. 110 अध्याय 9 रूद्र संहिता ''इस प्रकार ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव तीनों देवताओं में गुण हैं, परन्तु शिव (ब्रह्म-काल) गुणातीत कहा गया है।

दूसरा प्रमाण :- गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित श्रीमद् देवीभागवत पुराण जिसके सम्पादक हैं श्री हनुमान प्रसाद पौद्दार चिमन लाल गोस्वामी, तीसरा स्कंद, अध्याय 5 पृष्ठ 123 :- भगवान विष्णु ने दुर्गा की स्तुति की : कहा कि मैं (विष्णु), ब्रह्मा तथा शंकर तुम्हारी कृपा से विद्यमान हैं। हमारा तो आविर्भाव (जन्म) तथा तिरोभाव(मृत्यु) होती है। हम नित्य (अविनाशी) नहीं हैं। तुम ही नित्य हो, जगत् जननी हो, प्रकृति और सनातनी देवी हो। भगवान शंकर ने कहा : यदि भगवान ब्रह्मा तथा भगवान विष्णु तुम्हीं से उत्पन्न हुए हैं तो उनके बाद उत्पन्न होने वाला मैं तमोगुणी लीला करने वाला शंकर क्या तुम्हारी संतान नहीं हुआ अर्थात् मुझे भी उत्पन्न करने वाली तुम ही हों। इस संसार की सृष्टि-स्थिति-संहार में तुम्हारे गुण सदा सर्वदा हैं। इन्हीं तीनों गुणों से उत्पन्न हम, ब्रह्मा-विष्णु तथा शंकर नियमानुसार कार्य में तत्पर रहते हैं।

उपरोक्त यह विवरण केवल हिन्दी में अनुवादित श्री देवीमहापुराण से है, जिसमें कुछ तथ्यों को छुपाया गया है। इसलिए यही प्रमाण देखें श्री मद्देवीभागवत महापुराण सभाषटिकम् समहात्यम्, खेमराज श्री कृष्ण दास प्रकाश मुम्बई, इसमें संस्कृत सहित हिन्दी अनुवाद किया है। तीसरा स्कंद अध्याय 4 पृष्ठ 10, श्लोक 42 :-

ब्रह्मा – अहम् महेश्वरः फिल ते प्रभावात्सर्वे वयं जनि युता न यदा तू नित्याः, के अन्ये सुराः शतमख प्रमुखाः च नित्या नित्या त्वमेव जननी प्रकृतिः पुराणा(42)।

हिन्दी अनुवाद :- विष्णु जी बोले हे मातः ! ब्रह्मा, मैं तथा शिव तुम्हारे ही प्रभाव से जन्मवान हैं, नित्य नही हैं अर्थात् हम अविनाशी नहीं हैं, फिर अन्य इन्द्रादि दूसरे देवता किस प्रकार नित्य हो सकते हैं। तुम ही अविनाशी हो, प्रकृति तथा सनातनी देवी हो।(42)

पृष्ठ 11-12, तीसरा स्कंद अध्याय 5, श्लोक 8 :- यदि दयार्द्रमना न सदांबिके कथमहं विहितः च तमोगुणः कमलजश्च रजोगुणसंभवः सुविहितः किमु सत्वगुणों हरिः ।(8)

अनुवाद :- भगवान शंकर बोले :-हे मात! यदि हमारे ऊपर आप दयायुक्त हो तो मुझे तमोगुण क्यों बनाया, कमल से उत्पन्न ब्रह्मा को रजोगुण किस लिए बनाया तथा विष्णु को सतगुण क्यों बनाया? अर्थात् जीवों के मृत्यु रूपी दुष्कर्म में क्यों लगाया?

श्लोक 12 :- रमयसे स्वपतिं पुरुषं सदा तव गतिं न हि विह विद्म शिवे (12)

हिन्दी - अपने पति पुरुष अर्थात् काल भगवान के साथ सदा भोग-विलास करती रहती हो। आपकी गति कोई नहीं जानता।

विशेष - उपरोक्त विवरण से सिद्ध हुआ कि रजगुण श्री ब्रह्मा जी, सतगुण श्री विष्णु जी, तमगुण श्री शंकर जी हैं तथा ये तीनों नाशवान हैं। यह भी प्रमाणित हुआ कि दुर्गा अपने पति ब्रह्म के साथ भोग विलास करती है।

''तीनों गुण (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी) अर्थात् त्रिगुण माया की पूजा व्यर्थ''

गीता अध्याय 7 श्लोक 12 : तीनों गुणों से जो कुछ हो रहा है वह मुझ से ही हुआ जान। जैसे रजगुण(ब्रह्मा) से उत्पत्ति, सतगुण(विष्णु) से पालन-पोषण स्थिति तथा तमगुण(शिव) से प्रलय(संहार) का कारण काल भगवान ही है। फिर कहा है कि मैं इन में नहीं हूँ। क्योंकि काल बहुत दूर(इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में निज लोक में रहता है) है परंतु मन रूप में मौज काल ही मनाता है तथा

रिमोट से सर्व प्राणियों तथा ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शिव जी को यन्त्र की तरह चलाता है। पवित्र गीता जी के अ. 7 में ब्रह्म (ज्योति निरंजन - काल) कह रहा है कि हे अर्जुन! अब तुझे वह ज्ञान सुनाऊँगा जिसके जानने के बाद और कुछ जानना बाकी नहीं रह जाता। गीता बोलने वाला ब्रह्म कह रहा है कि मेरे इक्कीस ब्रह्मण्ड़ों के प्राणियों के लिए मेरी पूजा से ही शास्त्र अनुकूल साधना प्रारम्भ होती है, जो वेदों में वर्णित है। मेरे अन्तर्गत जितने प्राणी हैं उनकी बुद्धि मेरे हाथ में है। मैं केवल इक्कीस ब्रह्मण्ड़ों में ही मालिक हूँ। इसलिए (गीता अ. 7 श्लोक 12 से 15 तक) जो भी तीनों गुणों से (रजगुण-ब्रह्मा से जीवों की उत्पत्ति, सतगुण-विष्णु जी से स्थिति तथा तमगुण-शिव जी से संहार) जो कुछ भी हो रहा है उसका मुख्य कारण मैं (ब्रह्म-काल) ही हूँ। (क्योंकि काल को शाप लगा है कि एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों के शरीर को मार कर मैल को खाने का) जो साधक मेरी (ब्रह्म की) साधना न करके त्रिगुणमयी माया (रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी) की साधना करके क्षणिक लाभ प्राप्त करते हैं, जिससे ज्यादा कष्ट उठाते रहते हैं, साथ में संकेत किया है कि इनसे ज्यादा लाभ मैं (ब्रह्म-काल) दे सकता हूँ, परन्तु ये मूर्ख साधक तत्वज्ञान के अभाव से इन्हीं तीनों गुणों (रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी) तक की साधना करते रहते हैं। इनकी बुद्धि इन्हीं तीनों प्रभुओं तक सीमित है। त्रिगुण माया अर्थात् ब्रह्मा(रजगुण), विष्णु(सतगुण) तथा शिव (तमगुण) से मिलने वाले क्षणिक लाभ के द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है। भावार्थ है कि वे फिर अन्य प्रभु की भक्ति नहीं करते। यदि कोई समझाने का प्रयत्न करता है तो उसी के दुश्मन बन जाते हैं। इसलिए गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 में कहा है कि तीनों प्रभुओं (त्रिगुणमाया) के पूजारी राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए, मनुष्यों में नीच, शास्त्र विरूद्ध साधना रूपी दुष्कर्म करनेवाले, मूर्ख मुझे(ब्रह्म को)नहीं भजते। यही प्रमाण गीता अध्याय 16 श्लोक 4 से 20 व 23, 24 तक अध्याय 17 श्लोक 2 से 14 तथा 19 व 20 में भी है।

विचार करें :- रावण ने भगवान शिव जी को मृत्युंजय, अजर-अमर, सर्वेश्वर मान कर भक्ति की, दस बार शीश काट कर समर्पित कर दिया, जिसके बदले में युद्ध के दौरान दस शीश रावण को प्राप्त हुए, परन्तु मुक्ति नहीं हुई, राक्षस कहलाया। यह दोष रावण के गुरुदेव का है जिस नादान (नीम-हकीम) ने वेदों को ठीक से न समझ कर अपनी सोच से तमोगुण युक्त भगवान शिव को ही पूर्ण परमात्मा बताया तथा भोली आत्मा रावण ने झूठे गुरुदेव पर विश्वास करके जीवन व अपने कुल का नाश किया।

एक भस्मागिरी नाम का साधक था, जिसने शिव जी (तमोगुण) को ही ईष्ट मान कर शीर्षासन(ऊपर को पैर नीचे को शीश) करके 12 वर्ष तक साधना की, वचन बद्ध करके भस्मकण्डा ले लिया। भगवान शिव जी को ही मारने लगा। उद्देश्य यह था कि भस्मकण्डा प्राप्त करके भगवान शिव जी को मार कर पार्वती जी को पत्नी बनाऊँगा। भगवान श्री शिव जी डर के मारे भाग गए, फिर श्री विष्णु जी ने उस भस्मासुर को गंडहथ नाच नचा कर उसी भस्मकण्डे से भस्म किया। वह भस्मागिरी जो शंकर जी (तमोगुण) का साधक था भस्मासुर अर्थात् राक्षस कहलाया। हरिण्यकशिपु ने भगवान ब्रह्मा जी (रजोगुण) की साधना की तथा राक्षस कहलाया।

एक समय आज से लगभग 325 वर्ष पूर्व हरिद्वार में हर की पैड़ियों पर (शास्त्र विधि रहित साधना करने वालों के) कुम्भ पर्व की प्रभी का संयोग हुआ। वहाँ पर सर्व (त्रिगुण उपासक) महात्मा जन स्नानार्थ पहुँचे। गिरी, पुरी, नाथ, नागा आदि भगवान श्री शंकर जी (तमोगुण) के उपासक तथा वैष्णों भगवान श्री विष्णु जी(सतोगुण) के उपासक हैं। प्रथम स्नान करने के कारण नागा तथा

वैष्णों साधुओं में घोर युद्ध हो गया। लगभग 25000 (पच्चीस हजार) त्रिगुण उपासक मत्यु को प्राप्त हुए। जो व्यक्ति जरा-सी बात पर कत्ले आम कर देता है वह साधु है या राक्षस स्वयं विचार करें। आम व्यक्ति भी कहीं स्नान कर रहे हों और कोई व्यक्ति आ कर कहे कि मुझे भी कुछ स्थान स्नान के लिए देने की कपा करें। शिष्टाचार के नाते कहते हैं कि आओ आप भी स्नान कर लो। इधर-उधर हो कर आने वाले को स्थान दे देते हैं। इसलिए पवित्र गीता जी अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 में कहा है कि जिनका मेरी त्रिगुणमई माया (रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी) की पूजा के द्वारा ज्ञान हरा जा चुका है, वे केवल मान बड़ाई के भूखे राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए, मनुष्यों में नीच अर्थात् आम व्यक्ति से भी पतित स्वभाव वाले, दुष्कर्म करने वाले मूर्ख मेरी भक्ति भी नहीं करते।

यही भूमिका वर्तमान में श्री सुधांशु जी महाराज तथा श्री आसाराम जी महाराज कर रहे हैं जो सर्व नाम जाप के मंत्र शास्त्र विधि के विरुद्ध भक्त समाज को प्रदान कर रहे हैं तथा श्री शंकर जी तथा श्री विष्णु जी आदि की पूजा पर भक्त समाज को आधारित किए हुए हैं। इसलिए गलत मार्ग पर जा रहे हैं। पथिक को सही मार्ग बताना निंदा नहीं हित होता है। फिर भी किसी पर कोई दबाव नहीं, केवल प्रार्थना है कि शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण (पूजा - साधना) मानव जीवन के लिए अति हानिकारक है। शास्त्र विधि अनुसार साधना मुझ दास के पास उपलब्ध है, निःशुल्क प्राप्त करें।

मुझ दास की प्रार्थना है कि मानव जीवन दुर्लभ है, इसे नादान सन्तों, महन्तों व आचार्यों, महर्षियों तथा पंथों के पीछे लग कर नष्ट नहीं करना चाहिये। पूर्ण संत की खोज करके उपदेश प्राप्त करके आत्म कल्याण करवाना ही श्रेयकर है। सर्व पवित्र सद्ग्रन्थों के अनुसार अर्थात् शास्त्र अनुकूल यथार्थ भक्ति मार्ग मुझ दास (रामपाल दास) के पास उपलब्ध है। कपया निःशुल्क प्राप्त करें। सर्व पवित्र धर्मों की पवित्रात्माऐं तत्वज्ञान से अपरिचित हैं। जिस कारण नकली गुरुओं, संतों, महन्तों तथा ऋषियों तथा पंथों का दाव लगा हुआ है। जिस समय पवित्र भक्त समाज आध्यात्मिक तत्वज्ञान से परिचित हो जाएगा उस समय इन नकली सन्तों, गुरुओं व आचार्यों को छुपने का स्थान नहीं मिलेगा। कुछ श्रद्धालुओं को शंका है कि गुरु जी बदलना पाप है। उनसे प्रार्थना है कि पूरे गुरुदेव की प्राप्ति होने पर अधूरे गुरु को त्याग देना समझदारी होती है। जैसे एक वैद्य से रोग ठीक नहीं होता तो दूसरे डॉक्टर के पास जाना हितकर होता है। इसी प्रकार गुरु बदलना पाप नहीं पुण्य है। इसके बारे में कबीर साहेब कहते हैं कि - 'झूठे गुरु को तजते, तनिक न कीजै वार।' आध्यात्मिक ज्ञान को समझने के लिए कपया सतलोक आश्रम करौंथा से निम्न सम्पर्क सूत्र से सम्पर्क करें।

जीव हमारी जाति है, मानव धर्म हमारा। हिन्दु मुस्लिम सिख ईसाई, धर्म नहीं कोई न्यारा।।
हिन्दु मुस्लिम सिख ईसाई, आपस में सब भाई–भाई। आर्य जैनी और बिश्नोई, एक प्रभु के बच्चे सोई।।
कबीरा खड़ा बाजार में, सबकी मांगे खैर। ना काहूँ से दोस्ती ना काहूँ से बैर।।

संत रामपाल दास

❑❑❑